Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
15.
K17
V.2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

STOCK VERIFY
G.K.V. Library

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३७. सु० र० सं०, ३०.३.
३८. ब्रह्माण्ड पु० १.४.१५.
३९. ऋग्वेद, १०.७१.७.
४०. सु०र०सं०, ३१.१४.
४१. हितोपदेश, १६.
४२. नीतिशतक, १६.
४३. अत्रि स्मृति, १.४०.४१.
४४. अथर्ववेद, ११.३.१५.
४५. रश्मिमाला, १०.२.
४६. छा०उ०, ४.१०१.
४७. मनु०, २.६९.
४८. अमृतमन्थन, १५.४.
४९. छां०उ०, ३.१७.४.
५०. उपरिवत्, २.२३.१.
५१. मनु०, २.११८.
५२. महाभारत, अनुशासन पर्व, १२.३२१.७८.
५३. अथर्ववेद, ११.५.२४.
५४. उपरिवत्, ११.५.४.
५५. उपरिवत्, ११.५.१७.
५६. भा०गृ०सू०, १.५.
५७. आश्वा०गृ०सू०,१.२०.६.
५८. गीता, ६.१७.
५९. तै०उ०, १.११.
६०. श०ब्रा०, १.५.५.
६१. अथर्ववेद, १५.१.
६२. निरुक्त, १.१९.७३.६.
६३. महाभाष्य, १.१.६९.
६४. ऐ०ब्रा०, २.१५, तै०सं०, ६.४.३.७.
६५. विष्णु पु०, ३.१५.१.
६६. इपि० ई०, १, पृ० ४१.

121086

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६७. महाभाष्य, २.४.३.
६८. वही, १.१.१.
६९. महाभाष्य, १.१.१.
७०. ऋग्वेद, १०.७१.५, निरुक्त, १.१८.
७१. मेधातिथि, मनु०, ३.१, याज्ञ०, १.५७, अपरार्क, पृ० ७४-७५, मेधातिथि मनु० ३.२.
७२. कृत्य कल्पतरु, गृहस्थ काण्ड, पृ० २५२.
७३. ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ० १७०.
७४. कृत्य कल्पतरु, दान काण्ड, पृ० २०७, २१३.
७५. ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ० १७०-१७१.
७६. मनु० २.२४५.
७७. वही, २.२४२.
७८. हारित स्मृति, ३.१३.१४.
७९. पाणिनि, ४.३.१३०, दण्ड माणवान्ते वासिषु।
८०. आश्व० गृ०सू० ३.८.११-१४.
८१. बील, पृ० १०५-६.
८२. हारित स्मृति, ३.१५.
८३. निरुक्त, २.४.
८४. महाभारत, उद्योगपर्व, ४.४.६-२०.
८५. मनु०, २.११४-१५
८६. वही, २.१६९-७०.
८७. प्र०उ०, ६-८.
८८. बृ०उ०, ४.२.४.
८९. छा०उ०, ३.११.५-६.
९०. जातक सं०, ३०५-३६७.
९१. अष्टाध्यायी, ४.४.६२.
९२. रघुवंश, ३.२९.
९३. दशकुमार चरित, पृ० २१-२२.
९४. वृतान्त, पृ० ११७-२०.
९५. वही, पृ० १०५-१०६.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९६. कृत्य कल्पतरु, ब्रह्मचारी काण्ड, १९९-२०१, २१०-२२७, २४०-४३, ऋग्वेद, १०.७१.९.
९७. अथर्ववेद, ११.५.८४.
९८. वही, ११.५.१७.
९९. छा०उ०, २.१.
१००. वही, ४.३.५, श०ब्रा० ३.६.२.१५.
१०१. श०ब्रा०, ११.५.४.५.
१०२. अथर्ववेद, ६.१०८.२, १३३.३, मनु० २.१९२-२०१.
१०३. वही, ११.३.१५.
१०४. मनु०, २.२.१८.
१०५. बृ०उ० ९.२.४.
१०६. वही, ३.७.१, छा०उ०, ६.१२.
१०७. कृत्य कल्पतरु, ब्रह्मचारी काण्ड, पृ० २४०.
१०८. ग्यारहवीं सदी का भारत।
१०९. कृत्य कल्पतरु, ब्रह्मचारी काण्ड, पृ० २५७-५९.
११०. हर्षचरित, पृ० ६६.
१११. विष्णु पु०, ३.१०.१२.
११२. छां०उ०, ६.१०.१.३.
११३. वही, २.२३.१.
११४. विष्णु पु०, ३.१०.१२.
११५. मत्स्य पु०, २६.१.
११६. रामायण, ६.१२३.५१, २.५५.९-११.
११७. महाभारत, ३.२७१.४८, १.७०.१८.
११८. मनु०, २.६९.
११९. महाभारत, ५.४४.६.
१२०. तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षा वल्ली।
१२१. कल्याण, शिक्षांक, पृ० ८-९.
१२२. वही, पृ० ९-१०..
१२३. वही, पृ० १०-११.
१२४. ऋग्वेद, ९.११२.१-३.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२५. वही, १०.१४२.४, १.६१.४, ७.३२.२०.
१२६. अथर्ववेद, ३.५.६, ३.५.७.
१२७. ऋग्वेद, ३.५३.५, अथर्ववेद, ७.८३.१, ऐ०ब्रा०, २.३१, वाजसनेयी संहिता, २.३२.
१२८. वही, ३.६१.२, ४.२.८.
१२९. वही, १.३८.१२, अथर्ववेद, ६.१३७.२, वाजसनेयी संहिता, ३४.६.
१३०. ऋग्वेद, ९.११२.१, अथर्ववेद, १०.६.३.
१३१. अथर्ववेद, १२.३.३३.
१३२. वही, ६.१३.८.५.
१३३. वही।
१३४. ऋग्वेद, १०.१३६.२.
१३५. वही, १०.२६.६.
१३६. वही, २.३.६, १०.१०६.१.
१३७. वही, ६.९.२, ३, अथर्ववेद, १४.२.५.
१३८. वही, १०.२६.६.
१३९. रामायण, ७.१०१.१०.१६०.
१४०. म०भा०, १.३, २०.
१४१. फिलॉस्ट्रेटस लिखित त्याना के अपोद्योनयस के इतिहास से ज्ञात होता है कि तक्षशिला के भारतीय और यवन एक दूसरे के दर्शनों से परिचित थे तथा गांधार की राजधानी के आसपास के ग्रामीण यूनानी भाषा समझ और बोल सकते थे। इस चित्र में कुछ अतिरंजन हो सकती है किन्तु फिलॉस्ट्रेटस के कतिपय भौगोलिक ब्यौरों की पुष्टि तक्षशिला की हाल की खुदाई से हो गयी है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि फिलॉस्ट्रेटस के इस कथन में कि भारतीय यूनानी भाषा और दर्शनों से परिचित थे कुछ न कुछ सत्य का अंश अवश्य है। अतः यवन शासनकाल में तक्षशिला के पाठ्यक्रम में यवन-शिक्षा भी अवश्य रही होगी।
१४२. ए०इ०, जिल्द ५, पृ० ४०५.
१४३. जातक, ४५६.
१४४. तिलमुत्ति जातक, २५१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४५. जातक सं० ३०८.

१४६. वही, ४८९.

१४७. वही, ३३६.

१४८. म०व० आठवीं।

१४९. ४९८.

१५०. लेग कृत फाहियान, पृ० ३२, वैटर्स, ६, पृ० २४०-२४५.

१५१. इस खंड के मौलिक रूपों के लिए देखिए अल्तेकर कृत बनारस पास्ट एण्ड प्रिजेंट, १९४८.

१५२. काशी के राजा धृतराष्ट्र ने वैदिक धर्म का परित्याग कर दिया क्योंकि उनके अश्वमेघ के घोड़े के भरतों के राजा शतानीक हरण कर ले गये थे। श०ब्रा० १३.५.४.१९.

१५३. तक्कसिलं गत्वा सव्व सिप्पाणि उग्गहिकणात्वा वाराणसिंग दिसापा मोक्खो: आचारियों हुतवा पंचमाणवकसतसनि सिपपं वाचेति।। संख्या १५० तथा देखिए ८० भी।

१५४. बैटर्स, भाग २, पृ०४८.

१५५. हिन्दू राजा गोबिंदचन्द्र की बौद्ध पत्नी कुमारदेवी ने १२वीं शती के उत्तरार्ध में सारनाथ में एक बौद्ध विहार को दान दिया था। यह विहार १२००० ई० तक था। इसका पता खुदाईयों से मिला है।

१५६. भविष्यपुराण, ब्राह्म खण्ड अध्याय ५१.२.३.

१५७. ११वीं शताब्दी में पंजाब से विद्वानों के विस्थापन से काशी और काश्मीर के विद्वानों की संख्या बढ़ गयी थी।

१५८. भारत में यात्रा, पृ० ३४१.

१५९. लेख का महत्त्वपूर्ण अंश यह है :

नारायणोडभिधानेन नारायण इवापर।।
प्रधान: कृव्याराजस्य मंत्री सन्सन्धि विग्रहे।।
तेनेय कारिता शाला श्री विशाला मनोरमा।
भत्र विद्यार्थिन: संति नानाजनमदोद्रवा।।
शालाविद्यार्थिसंघाय दत्तवानन्भूमिमुत्तमाम्।।
निवत्र्तनानि दीपार्थ मान्यानि द्वादशैव च
पंच पुष्पाणि देवानि विवाहे सति तज्जनै:।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देयं तथोपनयने विवाहे यत्पुरोदितम्।।
केनचित्कारणोनेह कत्त्रब्ये विप्रभोजने।
भोययेतु यथाशक्ति परिपतपरिषज्जनम्।। –ए०इ०, त्रि० ४, पृ० ६०.

१६०. सा०इ०ए०रि०, १९१८, पृ० १४५; लेख संख्या ३३३ सन् १९१७.
१६१. ए०इ०, जिल्द सं० १२०.
१६२. सा०इ०ए०रि०, सन् १९१२, १९२१ की २०१.
१६३. वही, सं ११०, १९१२ ई०।
१६४. सा०इ०ए०रि०, १९१७, पृ० १२२–२४.
१६५. ए०इ० जिल्द ४, पृ० ३५५.
१६६. हैदरा०आके०स०सं० ८, पृ०७.
१६७. इ०ऐ०, भाग १०, पृ० १२९–३१.
१६८. ए०इ०, जिल्द ५, पृ०२२.
१६९. ए०क० १, सं ४५.
१७०. सा०इ०ए०रि०, १९१३ ई०, पृ० १०९–१०.
१७१. रिपोर्ट ऑफ मावरस कमिटी। एजुकेशन कमीशन १८८२, पृ० १ पाद टिप्पणी।
१७२. ए०इ०, जिल्द १३, पृ० ३१७.
१७३. ए०क०, पाँचवाँ भाग, पृ० १४४.
१७४. एतेषु किलाग्रहारेपु केचिज्ञपन्ति। अपरे पाठ्यन्ति। केचिपठनित।
१७५. ए०इ०, भाग १६, पृ० १४.
१७६. बंगला प्रान्तीय समिति की रिपोर्ट, शिक्षा कमीशन १८८२.
१७७. वही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय : पंचम

वैदिक ऋषि एवं उनका योगदान

महर्षि भारद्वाज एवं भृगु

(क) परिचय

भरद्वाज, उन्नीसवें व्यास-विक्रम से ७५४० वर्ष पूर्व अथवा युधिष्ठर से ४४०० वर्ष पूर्व उन्नीसवां त्रेतायुग या परिवर्त चल रहा था। इसी समय भरद्वाज ऋषि ने वेदों का सम्पादन किया। ये उन्तीसवें व्यास बृहस्पतिपुत्र आदित भरद्वाज के वंशज थे। यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि प्राचीनकाल में गोत्र नाम से ही ऋषि की अधिक प्रसिद्धि होती थी। भरद्वाज के वंश में उत्पन्न प्रत्येक ऋषि भरद्वाज या भारद्वाज कहलाता था। जैसा कि आज भी कहलाता है। पण्डित भगवद्दत्त सभी भरद्वाजों को एक मानते हैं। यह अनुचित एवं इतिहास-विपरीत मत है। आदि बार्हस्पत्य भरद्वाज वशिष्ठ विश्वामित्र आदि के समकालीन थे और इन्द्र के शिष्य थे, वे सप्तर्षियों में से एक थे। वह निश्चय ही दीर्घजीवी थे, जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लिखित है—परन्तु महाभारतकालीन द्रोणाचार्य के पिता भरद्वाज (भारद्वाज) और इन्द्रशिष्य बार्हस्पत्य भरद्वाज एक नहीं हो सकते। इनमें ८००० वर्षों का अन्तर था। भले ही ऋषियों का दीर्घ जीवन कितना ही लम्बा क्यों न हो, एक सहस्र वर्ष से अधिक आयु का होना प्रायः असम्भव है। इन्द्रशिष्य भरद्वाज बार्हस्पत्य ३०० वर्ष की आयु में ही अत्यन्त जीर्ण शरीर हो गए थे—

'भरद्वाजो ह त्रिभिरायुर्भिब्रह्मचर्यमुवास तं ह जीर्णि स्थविरं शयानम् इन्द्र उपव्रज्योवाय।' —तै० ब्रा० ३.१.११.४५

यह आद्य भरद्वाज तीन सौ वर्ष की आयु में ही बूढ़ा हो गया था फिर यही भरद्वाज द्रोणाचार्य का पिता था तो ८००० वर्ष कि आयु में इतना कामुक और समर्थ कैसे हो गया कि अप्सरा से संभोग करने के लिए लालायित हो गया। साधारणः मनुष्य की सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति ४० वर्ष तक ही होती है, पुनः ८००० वर्ष की आयु का ऋषि सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा करें, यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धिगम्यता से सर्वथा परे हैं। इस बात को कविराज सूरमचन्द्रजी जैसे वैद्यवाचस्पति न समझें तो यदि बुद्धि की महती विडम्बना है।[१] इस सम्बन्ध में पं० युधिष्ठिर मीमांसक[२] का मत सत्य के निकट है, जिसके अनुसार भरद्वाज की आयु लगभग एक सहस्र वर्ष थी।

अतः मूल भरद्वाज एक ही था और उसके सहस्रोवंशज भी भरद्वाज या भारद्वाज कहलाते थे। अतः भरद्वाज (भारद्वाज) अनेक हुए। द्रोणपिता भरद्वाज का बार्हस्पत्य भरद्वाज से दूर का सम्बन्ध भी नही था। उन्नीसवें व्यास भरद्वाज (भारद्वाज) भी आदि भरद्वाज (बार्हस्पत्यं) नहीं थे। इन दोनों में भी अनेक सहस्र वर्षों का अन्तर था। पुराणों के अनुसार भरद्वाज व्यास के शिष्य हिरण्यनाम कौसल्य कुथुमि इत्यादि थे। सामवेद की कौथमीयशाखा के प्रवर्तक ये ही कुथुमि ऋषि थे। हिरण्यानाम कौसल्य आदि पाराशर्य व्यास से लगभग १००० वर्ष पूर्व वेदप्रवचन और शाखाप्रवचन कर चुके थे। पुराणों में भ्रम से कौसल्य व्यासशिष्य जैमिनि की शिष्य परम्परा में सम्मिलित किया गया है कौथुमीय आदि शाखाओं के मूल प्रवर्तक भरद्वाज व्यास ही थे। अतः वे उन्नीसवें व्यास माने गए।

भृगु :

(वारुणि भृगु) वरुण के प्रथम और ज्येष्ठपुत्र अथर्वा या भृगु थे। ये ही इस वेद के प्रवर्तक थे, अतः उसके छन्दोवेद, अथर्ववेद, भृगुवेद, भृण्वाङ्गिरसवेद या ब्रह्मवेद इत्यादि नाम हैं। भृगु को विद्वान् होने के कारण 'कवि' भी कहा जाता था, इसीलिए इनके प्रधानपुत्र शुक्राचार्य को 'उशनाकाटय' कहते थे। वरुण और भृगु के वंशज ईरान, इराक, अरब देशों एवं योरोप में बस गये। असुरों के पुरोहित प्रायेण भार्गव ब्राह्मण होते थे।

भृगु, मरीचि आदि आठ आदिम ऋषि द्वितीय जन्म में वरुण के मानस पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुये–

देवसय महतो यज्ञे वारुणीं विभ्रतस्तनुम्।
ब्राह्मणो जुह्वतः शक्रुमग्नौ पूर्वं प्रजेप्सया।
ऋषयो जज्ञिरे पूर्वं द्वितीयमिति नः श्रुतम्।।
भृगुरङ्गिरा मरीचिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
अत्रिश्च वसिष्ठश्चाष्ठौ ते ब्रह्मणः सुताः।।

--वायुपुराण, ४७.२१.२२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भृगु के सम्बन्ध म्रें महाभारत में लिखा है-

भृगुर्महर्षिर्भगवान् ब्राह्मणे वैः स्वयम्भुवा।
वरुणस्य क्रतौ जातः पावकौदिति नः श्रुतम्॥ –म॰ १.५.७

भृगु मरीचि आदि को वरुण आदित्य के पुत्र मानना एक जटिल ऐतिहासिक समस्या है। महाभारतकालीन इतिहासविदों को भी यह समस्या स्पष्ट नहीं थी। इसीलिए उन्होंने लिखा है–'नः श्रुतम्', हमने सुना है। उनको भी वास्तविकता का ज्ञान नहीं था, क्योंकि भृगु, मरीचि, दक्षादि दश प्रचेताओं के दश पुत्र (दश विश्वस्रज्=प्रजापति) थे। मरीचि के पुत्र थे कश्यप और कश्यप के पुत्र थे वरुण। अतः वरुण के पितामह मरीचि तथा भृगु , वरुण के पुत्र कैसे हो गये, यह एक जटिल समस्या है। वरुण को 'प्रचेता' भी कहते हैं। इस नामसाम्य के कारण भी भ्रम उत्पन्न हो सकता है, क्योंकि नामसाम्य इतिहास में भ्रम का प्रधान कारण होता है भार्गव ब्राह्मण अपने को 'प्राचेतस' भी कहते थे, क्योंकि उनके मूलवंश प्रवर्तक 'प्रचेता' ही थे। भार्गव वाल्मीकि स्वयं अपने को 'प्राचेतस' कहते हैं।

'प्राचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।' –वा॰ रा॰ ७.९६.१९

अतः भृगु, वरुण और प्रचेता की जटिल समस्या पर विस्मृत विवेचन अन्यत्र किया जायेगा। परन्तु इतना तो स्पष्ट है, जैसा कि पुराणों में भी लिखा है कि भृगु द्वितीय या दूसरे जन्म में ही वरुण के पुत्र थे।[३] आद्य भृगु, आदि वरुण शतियों पूर्व हो चुके थे।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि भृगु अथर्ववेद एवं पौरोहित्य कर्म के प्रवर्तक प्रधान आचार्य थे। इसीलिए गीता में लिखा है–

महर्षीणां भृगुरहम्। (१०, २५)

वेदों एवं पुराणों के निर्माण में भृग्वाङ्गिरस ऋषियों का प्रधानयोग–

'ते वा एते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपन्।'

–छान्दोग्य॰ ३.४.१.२

'ते वा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतदिहासपुराणमभ्यवदन्।'

–न्यायभाष्य ४.१.६२

भृगु, अंगिरा और अथर्वा के परस्पर सम्बन्ध के विषय में मत्स्यपुराण में लिखा है–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भृगोः प्राजायताटार्वा
अङ्गिराथर्वणः स्मृत।'

भृगु से अथर्वा उत्पन्न हुये और अङ्गिरा अथर्वा के पुत्र थे।'

अथर्वा देव–बृहदारण्यकोषनिषद् (२.६.३) में अथर्वा को 'देव' का पुत्र बताया गया है अतः 'देव' का पुत्र होने से उनका विशेषण हुआ 'अथर्वादैव'। वायुपुराण के निम्न वाक्य में वरुण की संज्ञा 'महान् देव' है–

देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम्।

वरुण को ब्रह्म भी कहते थे, इन दोनों शब्दों का अर्थ है। 'बड़ा' या 'वरिष्ठ' कश्यप के द्वादश आदित्य पुत्रों में 'वरुण सबसे 'बड़े' (ज्येष्ठ) पुत्र थे, और देवों में प्रथम थे। मुण्डकोपनिषद् में भी यही बात कही गई है–

ब्रह्म देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥ –मु॰ १.१

वरुण ब्रह्म जल और भूमि दोनों का अधिपति था। बाइबिल में भी इसे 'देव' (Diety देवता) कहा गया है–(The next act of the Diety was to make a division. This operation devided the water into two parts as well as into two states)—(Genesis).

बाइबिल के कथन की पुष्टि भारतीय साहित्य से भी होती है। पुराणों में 'वरुण' द्वादश देवों में 'प्रथम' है तथा वेद और अवेस्ता में उसे 'अहुरमजदा' 'असुर महान्' कहा गया है 'असुर और देव' शब्द पूर्वकाल में पर्यायवाची थे और असुरों को 'पूर्वदेव' कहा भी जाता था। 'वरुण कश्यप का प्रथम पुत्र था जिसे 'देव' और 'असुर' दोनों ही कहा गया, अतः 'अथर्वादैव' का अर्थ हुआ कि अथर्वा 'वरुण' (देव) के पुत्र (ज्येष्ठपुत्र) थे। ये ही अथर्वा 'छान्दोवेद' के मूल प्रवर्तक थे, जिससे उसकी संज्ञा हुई 'अथर्ववेद। परन्तु 'अथर्वा' ऋषि का स्पष्ट इतिहास अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है। परन्तु यह स्पष्ट है कि 'अथर्वा' ऋषि वेद के प्रवर्तक एवं प्राचीनतम वेदाचार्य थे।

महर्षि भरद्वाज एवं भगवान भृगु

जगत् की उत्पत्ति और पञ्चमहाभूत :

एक समय कैलाश पर्वत के शिखर पर अपने तेज से दीप्तिमान् सुखासीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मा पुत्र भगवान भृगु को देखकर महर्षि भरद्वाज ने उनसे प्रश्न किया 'प्रभो! समुद्र, आकाश, पर्वत, मेघ, भूमि, अग्नि और वायु की सृष्टि किसने की है? प्रणियों की सृष्टि किस प्रकार हुई? वर्ण विभाग किस प्रकार किया गया? शौच और अशौच का निर्णय कैसे हुआ और उन प्रजाओं में धर्म आरै अधर्म का विधान किस प्रकार किया गया? जीवात्मा का स्वरूप कया है? मृत प्राणी कहाँ जाता है? इस लोक और परलोक का स्वरूप क्या है? तब ब्रह्मर्षि भगवान भुगु ने कहा–'ब्राह्मण! भगवान नारायण ही सम्पूर्ण जगत् के स्वरूप, अन्तरात्मा और सनातन पुरुष हैं। वे ही कूटस्थ, अक्षर, अव्यक्त, निर्लेप, व्यापक, प्रभु, प्रकृति से परे और इन्द्रियातीत परमात्मा है। उन भगवान नारायण के हृदय में जब सृष्टि का संकल्प उत्पन्न हुआ तो उन्होंने अपने हजारवें अंश से एक पुरुष को उत्पन्न किया। वह पुरुष 'मानस' नाम से विख्यात हुआ। वह मानसदेव आदि से रहित, अभेद्य, अजर और अमर है।[४] वही मानस पुरुष अव्यक्त नाम से ही विख्यात है। वह शाश्वत, अक्षर और अविनाशी है। अस अव्यक्त से उत्पन्न सभी प्राणी जन्म और मृत्यु के वशीभूत हैं। उस स्वयंभू देव (प्रकृति, योगमाया, आदि शक्ति) ने सर्वप्रथम महत्तत्त्व अर्थात् समष्टि बुद्धि की रचना की। फिर उस महत्तत्त्व रूप भगवान ने समष्टिरूप अहंकार को उत्पन्न किया। सम्पूर्ण प्राणियों के आधार भगवान् अहंकार ने शब्दतन्मात्रा-स्वरूप आकाश को उत्पन्न किया। आकाश से जल और जल से अग्नि एवं वायु की उत्पत्ति हुई। अग्नि और वायु के संयोग से इस पृथ्वी का प्रादुर्भाव हुआ।[५] उसके बाद उस स्वयंभू एवं सनातन मानसदेव ने एक तेजामेय दिव्य कमल की सृष्टि की। उसी दिव्य कमल से वेदनिधि भगवान ब्रह्मा उत्पन्न हुए। सम्पूर्ण भूतों की आत्मा और सम्पूर्ण प्राणियों के स्त्रष्टा वे भगवान ब्रह्मा 'अहंकार' नाम से भी विख्यात है। पंचमहाभूतों के रूप में वे भगवान, पद्मासन ब्रह्मा ही प्रकट हुए हैं। पर्वत उन ब्रह्माजी की अस्थियां, पृथ्वी, भेद और मज्जा, समुद्र उनका रुधिर और आकाश उदर है। वायु निःश्वास अग्नि तेज और नदियाँ उनकी शिरायें हैं। सूर्य और चन्द्र उनके नेत्र हैं। आकाश का ऊर्ध्वभाग उन कमलासन का सिर, पृथ्वी पैर और दिशायें ही भुजायें हैं। इसके कोई सन्देह नहीं है कि वे अचिन्त्य स्वरूप भगवान ब्रह्मा सिद्ध पुरुषों के लिए भी दुर्ज्ञेय हैं। वे मानस पुरुष भगवान स्वयंभू ही भगवान विष्णु हैं। जिनकी प्रसिद्धि अनन्त नाम से है और जो सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा में अन्तर्यामी रूप में विद्यमान हैं। वे भगवान् कमल नयन श्रीहरि अपवित्र और असंयमी पुरुषों के लिए दुर्ज्ञेय हैं। तब महामुनि भारद्वाज ने प्रश्न किया 'प्रभो! कृपाकर बताइये कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश, दिशा, पृथ्वी और वायु का परिमाण कितना-कितना है? 'तब भगवान ब्रह्मर्षि ने कहा-महर्षे! यह आकाश अनन्त है, इसमें शतशः सहस्रशः देवता और सिद्ध निवास करते हैं। इस आकाश में असंख्य लोक स्थित है जो अतिरमणीय हैं। ऊपर तथा नीचे जहाँ सूर्य और चन्द्रमा नहीं दिखाई देते, उन लोगों में सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी देवता स्वयं अपने प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं। ब्रह्मण! किन्तु वे तेजस्वी नक्षत्र स्वरूप देवता भी आकाश का अप्त नहीं देख पाते। ऊपर प्रज्वलि स्वंय प्रकाश देवताओं से यह अप्रमेय आकाश आकीर्ण सा प्रतीत होता है महामुने! पृथ्वी के अप्त में समुद्र है, समुद्र के अन्त में प्रगाढ़ अन्धकार है, अन्धकार के अन्त में पुनः जल है और जल में अग्नि है। रसातल के अन्त में जल है, जल के अन्त में नागराज शेष अनन्त है, उनके अन्त में पुनः आकाश और आकाश के अन्त में पुनः जल है।[६] इस प्रकार भगवान् का, आकाश का, जल, वायु तथा अग्नि का भी अन्त और परिमाण जानना देवताओं के लिए भी अत्यन्त कठिन है। अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी इनके रंग-रूप आकाश से ही गृहीत होते हैं। अतः ये आकाश से भिन्न नहीं है। तत्त्व ज्ञान न होने के कारण ही उनमें भेद ही प्रतीत होती है। महामुने! जो परमात्मा दृष्टि से परे हैं और जो इन्द्रियों की पहुंच से भी बाहर हैं, उस परमात्मा का परिमाण कोई कैसे बतायेगा? इन सिद्धों और देवों का भी ज्ञान तो परिमिति ही है। अतः परमातमा मानसदेव (श्रीहरि) अपने नाम के अनुरूप ही अनन्त और असीम है। उन परमात्मा मानसदेव का दिव्य रूप उनकी माया से कभी अतिलघु और कभी महान् हो जाता है, तब फिर बल, बुद्धि और विद्या में उनके समान कौन है जो उस परमात्मा के यथार्थ परिमाण को जान सके। ब्रह्मन्! तदन्तर उपर्युक्त कमल से सर्वज्ञ मूर्तिमान्, प्रभावशाली परम उत्तम तथा प्रथम प्रजापति, धर्मस्वरूप, वेदमूर्ति भगवान् ब्रह्मा उत्पन्न हुये। तब पुनः ब्रह्माजी मुनि भगवान् भरद्वाज ने ब्रह्मपुत्र भृगु से प्रश्न किया-भगवान यदि ब्रह्माजी कमल से उत्पन्न हुए हैं, तब तो कमल ही ज्येष्ठ प्रतीत होता है, किन्तु आपने ब्रह्माजी की पूर्वज बताया है, अतएव इस विषय में मुझे सन्देह उत्पन्न हो गया है तब भृगुमुनि ने कहा मुने! मैंने मानस देव का जो स्वरूप बताया है वही ब्रह्मारूप में प्रकट हैं उन्हीं को लोकगुरु पितामह के आसन के निमित्त इस पृथ्वी को ही पद्मसंज्ञा दी गई है। इस पृथ्वी रूपी कमल की कर्णिका सुमेरु पर्वत है। उसी पर्वत के मध्यभाग में स्थित होकर ब्रह्मा सम्पूर्ण लोकों की सृष्टि करते हैं। 'तब पुनः महर्षि भरद्धाज ने प्रश्न किया-प्रभो! जल, वायु अग्नि और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वी की सृष्टि कैसे हुई? इस विषय में मुझे सन्देह है।' ब्रह्मर्षि भृगु ने कहा 'महामुने! पूर्वसमय में जब ब्रह्मकल्प चल रहा था, उस समय ब्रह्मर्षियों के समागम में यह बात उठी थी। वे ब्रह्मर्षि भोजन छोड़कर, वायु पीकर रहते हुए सो दिव्य वर्षों तक ध्यानमग्न होकर, मौन धारण किये हुए निश्चलभाव से बैठे रह गए। ध्यानावस्था में ही उनके कानों में ब्रह्ममयी वाणी सुनाई दी। उस समय आकाश से दिव्य सरस्वती प्रकट हुई। 'पूर्वकाल में अनन्त आकाश पर्वत के समान निश्चल था। उसमें चन्द्रमा, सूर्य अथवा वायु किसी की भी सत्ता नहीं थी। वह अनन्त आकाश सा मालूम पड़ता था। तदनन्तर आकाश से जल उत्पन्न हुआ। मानों अन्धकार में ही दूसरा अन्धकार उत्पन्न हुआ हो। उस जल प्रवाह से वायु उत्पन्न हुआ। जैसे कोई छिद्ररहित पात्र निःशब्द सा लक्षित होता है, परन्तु जब उसमें छिद्र करके जल भरा जाता है, तब वायु उसमें आवाज उत्पन्न कर देती है। इसी प्रकार सम्पूर्ण आकाश जल से अवरुद्ध हो गया, कि उसमें थोड़ा सा भी अवकाश नहीं था। उस समय उस एकार्णव के तल प्रदेश का भेदन करके बड़ी भारी आवाज के साथ वायु का प्रकाट्य हुआ। इस प्रकार एकार्णव के जलसमूह से प्रकट हुई यह वायु सर्वत्र विचरण करने लगी और आकाश के किसी भी स्थान में पहुँच कर वह शान्त नहीं हुई। वायु और जल के उस भयंकर संघर्ष से अत्यन्त तेजस्वी महाबली अग्निदेव का प्रकाट्य हुआ। उन ऊर्ध्वरेता महाबली अग्निदेव की लपटें ऊपर की ओर उठ रही थीं। वह अग्नि आकाश के सारे अन्धकार को नष्ट कर प्रज्वलित हुई थी। वायु का संयोग प्राप्त कर अग्नि जल को आकाश में उछालने लगीं। फिर वही जल, अग्नि और वायु के संयोग से धनीभूत हो गया। उसका जो गीलापन आकाश में गिरा वही धनीभूत होकर पृथ्वी के रूप में परिणत हो गया। महर्ष! यह पृथ्वी सम्पूर्ण रसों, गन्धों, स्नेहों तथा प्राणियों की जननी है। इस पृथ्वी से ही सब कुछ उत्पन्न होता है।[८]

पञ्चमहाभूतों के गुणों का वर्णन :

पुनः महर्षि भरद्वाज ने प्रश्न किया–'भगवान! ब्रह्माजी ने प्राचीनकाल में जिन पाँच महाभूतों की सृष्टि है, इनमें ही सम्पूर्ण चराचर व्याप्त है। किन्तु प्रभो! लोकपितामह ने जब अन्य हजारों भूतों की सृष्टि कि है, तब इन पाँच को ही 'भूत' कहना कहां तब उपर्युक्त है? तब भगवान भृगु ने कहा–मुने! ये आकाश, वायु अग्नि, जल ओर पृथ्वी नामक पंचमहाभूत ही असीम है। इन्हीं से सम्पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूतों की उत्पत्ति हुई है। इसीलिए इन्हें महाभूत कहते हैं। प्राणियों का शरीर इन पंचमहाभूतों का ही संघाते हैं। इस शरीर में जो चेष्टा या गति हे, वह वायु का भाग है। जो अवकाश है, वह आकाश का अंश है। इस शरीर में जो ऊष्मा है वह अग्नि का और रुधिर आदि तरल पदार्थ जल का तथा हड्डी, मांस अदि ठोस पदार्थ पृथ्वी का अंश है।[८] सम्पूर्ण चराचर विश्व इन्हीं पाँच भूतों से व्याप्त है। इन्हीं के सूक्ष्म अंश श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वचा और नेत्र–इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। मुनि भरद्वाज ने पुनः प्रश्न किया–प्रभो! आपको मतानुसार यदि सम्पूर्ण चराचर जगत् इन पंच महाभूतों से ही व्याप्त है, तो स्थावर पदार्थ में तो ये पञ्चमहाभूत नहीं दिखाई देते हैं। जैसे वृक्षों के शरीर में न तो गर्मी है, न कोई चेष्टा है और न ही तरलत्व है। अतः 'उनके शरीर में पञ्चमहाभूतों की उपलब्धि कैसे हो सकती है? ये वृक्ष न तो सुनते हैं। न देखते हैं, और न उन्हें गन्ध और रस का अनुभव ही होता है वे स्पर्शज्ञान से भी रहति है, फिर वे पाँचभौतिक कैसे हो सकते हैं? वृक्षों में न तो द्रवत्व है, न अग्नि का अंश, न पृथ्वी और न वायु का ही अंश उपलब्ध होता है आकाश तो अप्रमेय है, उसकी सत्ता वृक्षों में कैसे हो सकती है? इससे सिद्ध होता है कि वृक्ष पञ्चभौतिक नहीं है।

तब ब्रह्मर्षि भृगु ने उसके सन्देह का निवारण करते हुए कहा महामुने! यद्यपि वृक्ष ठोस होते हैं। फिर भी उनमें आकाश नहीं है, ऐसी बात नहीं। वृक्षों में जो नित्य प्रति फल-फूलों की वृद्धि होती है, वह उनके भीतर विद्यमान आकाश को सूचित करता है वृक्षों के भीतर जो ऊष्मा होती है, उसके प्रभाव से उनके पत्ते, छाल, फल कुम्हलाते और सूखकर झड़ जाते हैं। इससे उनमें स्पर्श का होना भी सिद्ध होता है। मुने! आपने देखा होगा कि वायु, अग्नि के प्रभाव से अथवा बिजली की कड़क या भीषण शब्द होने पर वृक्षों के फल–फूल झड़कर गिर जाते हैं। शब्द का ग्रहण तो मात्र श्रवणेन्द्रिय से ही होता है इससे उपरी शिखर तक चढ़ जाती है। बिना देखे किसी को अपना मार्ग नहीं मिल सकता। इससे सिद्ध होता है कि वृक्ष देखते भी हैं। पवित्र और अपवित्र गन्ध से, नाना प्रकार के धूपों की गन्ध से, वृक्ष निरोग होकर फलने–फूलने लगते हैं। इससे सिद्ध होता है कि वृक्ष सूंघते भी है।[९] वृक्ष जड़ से जल पीते हैं इसीलिए उनको 'पादप' कहते हैं वृक्षों में रोग देखे जाते हैं और जड़ में औषधि डालकर उनका उपचार भी किया जाता है इससे सिद्ध होता है कि वृक्षों में रसेन्द्रिय भी है।[१०] जैसे मनुष्य कमलनाल मुंह में लगाकर उसके द्वारा ऊपर को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल खींचता है, उसी प्रकार वायु की सहायता से वृक्ष अपनी ओर जड़ों द्वारा ऊपर को पानी खींचता है। वृक्ष कट जाने पर उसमें नया अंकुर पैदा होता है और वृक्ष सुख दुःख का ग्रहण भी करते हैं।[११] इससे सिद्ध होता है कि वे अचेतन नहीं है, उनमें जीव है।[१२] वृक्ष अपनी जड़ से जो जल खींचता है, उसे उसके अन्दर रहने वाली वायु और अग्नि पचाते हैं। आहार का परिपाक होने पर वृक्ष में स्निग्धता आती है और वे शीघ्रता से बढ़ते हैं।[१३] इसके साथ ही समस्त जंगमों के शरीर में भी ये पंचमहाभूत विद्यमान होते हैं, यद्यपि प्रत्येक शरीर में उनका स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है इन पाँच महाभूतों के सहयोग से ही प्राणियों का शरीर चेष्टाशील होता है त्वचा, मांस, अस्थि, मज्जा और स्नायु–यह पाँच वस्तुयें शरीर में पृथ्वी का अंश होती है। शरीर में तेज, क्रोध, नेत्र, ऊष्मा, और जठरानल ये पाँच वस्तुयें अग्नि का अंश है। श्रोत्र, घ्राण, मुख, हृदय और उदर ये पाँच धातुएं मनुष्य के शरीर में आकाश का अंश हैं। कफ, पित्त, स्वेद, चर्बी, और रुधिर से पाँच गीली वस्तुयें जलरूप हैं। प्राणियों के शरीर में निम्न पाँच प्रकार की वायु (पवन) का अंश है। प्राणवायु से प्राणी चलने फिरने का काम करता है व्यान वायु से प्राणी यथासाध्य उद्योग करता है। अपान वायु ऊपर से नीचे की ओर जाती है। समान वायु, हृदय में स्थित होती है। उदान से प्राणी उच्चारण करता है। जीव भूमि सम्बन्धी घ्राणेन्द्रिय द्वारा गन्ध गुण का अनुभव करता है, जल सम्बन्धी रसेन्द्रिय त्रास वह रस का आस्वादन करता है, तेजोमय नेत्र के द्वारा रूप का तथा वायु सम्बन्धी त्वक् इन्द्रिय द्वारा प्राणी में निवास करते हैं। इनमें से पृथ्वी का प्रधान गुण गन्ध ही है। अनुकूल प्रतिकूल, मधुर कटु, निर्हारी, तेज, स्निग्ध और विशद–ये गन्ध के नौ भेद होते हैं। मनुष्य दोनों नेत्रों से रूप को देखता है, त्वगिन्द्रिय से स्पर्श का अनुभव करता है, शब्द स्पर्श रूप और रस–ये जल के गुण माने गए हैं। इनमें जल का प्रधान गुण रस है। उदारमना महर्षियों ने रस के अनेक भेद बताये हैं–मधुर, लवण, तिक्त, कषाय, अम्ल और कटु। शब्द स्पर्श और रूप–ये तीन गुण अग्नि के हैं। ज्योतिर्मय नेत्र रूप को देखते हैं। अग्नि का प्रधान गुणरूप भी अनेक प्रकार का है। ज्योतिर्मय रूप नामक गुण सोलह भेदों में विभाजित हैं–ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चौकोर, वर्तुलाकार, सफेद, काला, लाल, पीला, नीला, कठिन, चिकना, अल्प, पिच्छिल, मृदु और दारुण। वायु के दो गुण हैं–शब्द और स्पर्श। वायु को प्रमुख गुण स्पर्श ही है। स्पर्शगुण के निम्न भेद हैं–उष्ण, शीत, सुख, दुःख, स्निग्ध, विशद, स्वर, मृदु, रूक्ष, लघु और गुरुतर। आकाश का एकमात्र गुण है–शब्द। शब्दगुण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक भेद ऋषियों ने बताये हैं-षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत तथा निषाद–शब्दगुण के ये सात भेद हैं। अपने व्यापक रूप तो शब्द सर्वत्र है किन्तु पटह आदि में इसकी विशेष रूप से अभिव्यक्ति होती है। मृदंग, भेरी, शंख, तथा रथ की घर्घराहट आदि में जो कुछ शब्द सुना जाता है और जड़ या चेतन का जो भी शब्द श्रवणगोचर होता है वह सब इन सात भेदों के ही अन्तर्गत आता है। इस प्रकार आकाशज शब्द के उनेक भेद होते हैं। विद्वानों का कथन है कि वायु सम्बन्धी गुणों के साथ ही आकाशज शब्द होता है जब वायु सम्बन्धित गुण अकार्षित होकर शब्द के साथ रहता है, तब मनुष्य शब्द को सुनता और समझता है। किन्तु जब वायु सम्बन्धी गुण दीवार अथवा प्रतिकूल वायु से बाधित होकर विषमित हो जाते हैं। तो शब्द का ग्रहण नहीं होता है वे शब्द आदि के उत्पादक धातु (इन्द्रिय गोलक) धातुओं (पंचभूतों) द्वारा ही पोषित होते हैं। ब्रह्मन्! जल अग्नि और वायु ये तीन तत्त्व सदा देहधाारियों में जाग्रत रहते हैं। ये तीन महाभूत ही शरीर के आधार है और प्राणों में ओत-प्रोत होकर शरीर को व्याप्त किये रहते हैं।

जीव की सत्ता तथा नित्यता :

पुनः महर्षि भरद्वाज ने शंका उपस्थित की–प्रभो! यदि वायु ही प्राणी को जीवन प्रदान करती है, वायु ही शरीर को चेष्टाशील बनाती है वायु ही श्वास लेती और बोलती भी है, तब तो इसस शरीर में जीव की सत्ता ही निरर्थक है। यदि शरीर में अन्तर्भूत ऊष्मा अग्नि का अंश है, यदि जठरानल ही पाये हुए अन्न का परिपाक करता है, यदि अग्नि ही सब कुछ जीर्ण करती है, तब जीव की सत्ता निरर्थक ही है। जब किसी प्राणी की मृत्यु होती है, तब वहाँ जीव की उपलब्धि नहीं होती। प्राणवायु ही इस प्राणी का परित्याग करती है और शरीर की गर्मी नष्ट हो जाती है। यदि वायु के साथ जीव का दृढ़ संयोग है और उस दृढ़ संयोग के कारण ही वह वायु के साथ नष्ट हो जाता है, तब तो जैसे जलपात्र में पत्थर भरकर उसे कोई समुद्र में डाल दे और वह डूब जाय, उसी प्रकार वायु के सम्पर्क से ही जीव का विनाश मानना पड़ेगा। उस दशा में जैसे प्रस्तर से पृथक् जलपात्र की उपलब्धि होती है, उसी प्रकार प्राणवायु से पृथक् जीव उपलब्धि होनी चाहिए। जैसे कुएं में जल गिराया जाय या प्रज्वलित अग्नि में जला हुआ दीपक डाल दिया जाय उसी प्रकार तो वे उसमें प्रविष्ट होकर पृथक् अस्तित्व खो बैठते हैं। उसी प्रकार इस पञ्चभौतिक शरीर का नाश होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर जीवन भी महाभूतों में विलीन होकर अपने पृथक् अस्तित्व से अलग हो जाना चाहिए। ऐसा मान लेने पर इस पञ्चभौतिक शरीर में जीव की सत्ता कैसे हो सकती है? अत: यह सिद्ध हुआ कि पञ्चभौतिक संघात से भिन्न जीव नहीं है। पंचमहाभूतों में किसी एक का भी अभाव होने पर शेष चारों का भी अभाव हो जाता है इसमें संशय नहीं है। जल का पूर्णरूपेण त्याग कर देने पर शरीर के जलीय अंश नाश हो जाता है श्वास रुक जाने से वायु का नाश होता है उदर का भेदन होने से आकाश तत्त्व नष्ट होता है और भोजन बन्द कर देने से अग्नितत्त्व का नाश हो जाता है ज्वर आदि रोग, घाव तथा अन्य प्रकार के क्लेशों से शरीर का पृथ्वी तत्त्व बिखर जाता है इन पञ्चमहाभूतों में से एक तत्त्व को भी यदि हानि पहुँची तो इनका सम्पूर्ण संघात ही विनाश को प्राप्त हो जाता है पञ्चभौतिक शरीर के नष्ट हो जाने पर यदि जीव है तो वह किसके पीछे दौड़ता है? क्या अनुभव करता, क्या सुनता और क्या बोलता है? मृत्यु के समय लोग इस आशा से गोदान करते हैं कि वह परलोक में मृतक को तार देगा। परन्तु जीव तो गोदान करके मर जाते हैं। फिर वह गो किसको तारेगी? गो, गोदान करने वाला मनुष्य और गोदन लेने वाला ब्राह्मण–जब ये तीनों यहीं मर जाते हैं, तब परलोक में उसका कैसे समागम होता है? इनमें से जो मरता है, उसे या तो पक्षी खा लेते हैं, अथवा वह पर्वत के शिखर से गिर कर चूर–चूर हो जाता है अथवा अग्नि उसे जलाकर भस्म कर देती है। ऐसी दशा में उनका पुनर्जीवन कैसे संभव है? यदि जड़ से कटे हुए वृक्ष का मूल फिर अंकुरति नहीं होता है, केवल उसके बीज ही जमते हैं। तो मरा हुआ मनुष्य फिर कहाँ से आ जायेगा? पूर्वकाल में बीजमात्र की सृष्टि हुई थी, उसी बीज से यह संसार उत्पन्न हुआ है। जो लोग मर जाते हैं। वे नष्ट हो जाते हैं और बीज से बीज पैदा होता रहता है। महर्षि भरद्वाज के इस प्रकार शंका उपस्थित करने पर भगवान भृगु ने कहा–ब्रह्मण! इस संसार में जीव उसके दिये हुए दान का और किये हुए कर्म का कभी नाश नहीं होता। जीव तो दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता है, केवल उसका परित्यक्त शरीर ही नष्ट होता है।[१४] यद्यपि जीव शरीर के आश्रय से ही जीवन धारण करता है, किन्तु शरीर के नष्ट होने से जीव नष्ट नहीं होता। जैसे समिधाओं के जल जाने पर भी उनके आश्रित हुई आग देखी देखी जाती है, उस प्रकार जीव की सत्ता का भी प्रत्यक्ष अनुभव होता है तब महर्षि भरद्वाज ने पुन: शंका उपस्थित की–भगवान आपका कथन है कि अग्नि के समान जीव का नाश नहीं होता किन्तु ईंधन के जल जाने पर उसकी भी तो सत्ता समाप्त हो जाती है अर्थात् अग्नि भी तो बुझ जाती है। अत: ईंधन रहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुझी हुई अग्नि को मैं नष्ट हुई ही समझता हूँ क्योंकि जिसकी गति, प्रमाण अथवा स्थिति नहीं है उसका नाश ही मानना पड़ता है, यही स्थिति जीव की भी है। तब महर्षि भृगु ने कहा–मुने! ईंधन के जल जाने पर भी अग्नि का नाश नहीं होता। वह आकाश में अव्यक्त रूप से स्थित हो जाती है। इसीलिए उसकी उपलब्धि नहीं होती। बिना किसी आश्रय के वस्तु का ग्रहण होना अत्यन्त कठिन है। इसी प्रकार जीव शरीर को त्याग देने पर आकाशवत् स्थित हो जाता है। अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण बुझी हुई आग के समान वह अनुभव में नहीं आता।[५५] ब्रह्मन्! अग्नि प्राणों को धारण करती है। अग्नि के समान यह जीव भी ज्योतिस्वरूप है। इस शरीर के भीतर वायु धारण करती है। श्वास रुक जाने पर वायु के साथ-साथ अग्नि भी नष्ट हो जाती है। उस शरीरवर्ती अग्नि कि नष्ट होने पर मृत शरीर पृथ्वी पर गिरकर पार्थिव भाव को प्राप्त हो जाता है पृथ्वी ही मृत शरीर का आधार है। सम्पूर्ण चराचर की प्राणवायु आकाश को प्राप्त होती है और अग्नि भी उस वायु का अनुसरण करती है। इस प्रकार आकाश, वायु और अग्नि ये तीन तत्त्व एकत्र हो जाते हैं तथा जल और पृथ्वी ये दो तत्त्व भूमि पर ही रह जाते हैं। मुने! जहाँ आकाश होता है, वहीं वायु की स्थिति होती है, और जहाँ वायु होती है वहीं अग्नि की स्थिति होती है। यद्यपि ये तीनों महाभूत निराकार हैं तथापि देहधारियों के शरीर में स्थित होकर मूर्तिमान समझे जाते हैं। पुनः भरद्वाज मुनि ने पूछा-प्रभो! यदि शरीरधारियों के शरीरों में केवल अग्नि, वायु, भूमि, आकाश तथा जल तत्त्व ही विद्यमान हैं तो उनमें रहने वाले जीव के क्या-क्या लक्षण हैं? प्राणियों का शरीर पञ्चभौतिक है। पाँच विषयों में इसकी रति है। इस शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियों और चित्त उपलब्ध होते हैं। प्रभो! इसमें रहने वाले जीव का स्वरूप कैसा है? मुझे इस विषय में प्रबल जिज्ञासा है। रक्त और मांस के समूह, चर्बी, नाड़ी और हड्डियों के संचय रूप इस शरीर को चीरने-फाड़ने पर इसके भीतर कोई जीव उपलब्ध नहीं होता। यदि इस पञ्चभूत समन्वित शरीर को जीव रहित मान लिया जाय, तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि शारीरिक और मानसिक पीड़ा होने पर उस दुःख का अनुभव कौन करता है? भगवन्! जीव दूसरों की कही हुई बातों को दोनों कानों से सुनता है किन्तु उसका मन यदि किसी कारण से व्यग्र है अथवा अन्यमन्यस्क है तो वह जीव सुनकर भी नहीं सुनता । इसलिए मन के अतिरिक्त किसी जीव की सत्ता स्वीकार करना व्यर्थ है। इस संसार में प्राणी दृश्य पदार्थों को तभी देख पाता है जब उसकी दृष्टि का संयोग मन से हो। मन के व्यग्र रहने पर मनुष्य देखकर भी नहीं देखता। निद्रा के वशीभूत मनुष्य सम्पूर्ण इन्द्रियों के होते हुए भी न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखता है, न सुनता है, न सूंघता है, न बोलता है और न स्पर्श और रस का ही अनुभव करता है अतः यह जिज्ञासा होती है कि इस शरीर के भीतर कौन क्रोध करता है? कौन हर्षित होता है? कौन शोकयुक्त और उदिग्न होता है? अभिलाषा, ध्यान, द्वेष और वार्तालाप कौन करता है?

तब भगवान ब्रह्मनन्दन भृगु ने कहा–महाभाग! यह मन नामक एकादश इन्द्रिय भी पञ्चभौतिक ही है। अतः वह पञ्चभूतों से भिन्न कोई विशेष तत्त्व नहीं है। एक मात्र अन्तरात्मा ही इस शरीर को धारण करता है वही अन्तरात्मा (जीव) रूप रस, गन्ध स्पर्श शब्द का और दूसरे भी गुणों का अनुभव करता है वह अन्तरात्मा ज्ञानेन्द्रियों और मन का भी द्रष्टा है और वही अन्तरात्मा इस पञ्चभौतिक शरीर के सम्पूर्ण अवयवों में व्याप्त होकर सुख का अनुभव करता है जब जीव (अन्तरात्मा) का शरीर के साथ सम्बन्ध छूट जाता है, तब इस शरीर को दुःख या पीड़ा का भान नहीं होता। अतएव मन के अतिरिक्त उसके साक्षी आत्मा की सत्ता स्वतः सिद्ध हो जाती है। ब्रह्मर्षे! जब इस पञ्चभौतिक शरीर में रूप रस और ऊष्मा का भान नहीं होता, उस अवस्था में जब शरीराग्नि शान्त हो जाती है, तब जीवात्मा इस शरीर को त्याग कर भी नष्ट नहीं होती। मुने! यह सम्पूर्ण प्रपञ्च जलमय है। प्राणियों का शरीर भी प्रायः जलमय है। उसमें मन में निवाश करने वाली आत्मा विद्यमान है। वही सम्पूर्ण भूतों में लोक-सृष्टा ब्रह्मा के नाम से विख्यात है। समस्त जीवों के संघात का नाम ही ब्रह्मा है। आत्मा जब प्रकृतिजन्य गुणों से युक्त होता है, तब उसे क्षेत्रज्ञ (जीव) कहते हैं और प्रकृति के गुणों से जब मुक्त हो जाता है तब वही आत्मा परमात्मा कहलाता है।[१६] तुम क्षेत्रज्ञ को ही आत्मा जानो जो सर्वलोक हितकारी है। इस शरीर में रहकर भी वह आत्मा कमलपत्र पर पड़े हुए जलबिन्दु की तरह वास्तव में शरीर से पृथक् है।[१७] देह का नाश होने पर भी जीव का नाश नहीं होता है जो जीव को मरणधर्मा बताते हैं वे अज्ञानी हैं और उनका यह कथन मिथ्या है। मृत शरीर का त्यागकर जीव देहान्तर को धारण करता है शरीर स्थित पञ्चभूतों का बिखर जाना ही शरीर का नाश है।[१८] इस प्रकार यह जीवात्मा सम्पूर्ण प्राणियों की हृदय गुफा में गूढ़ भाव से निवास करता है तत्त्वदर्शी पुरुष उस आत्मा का सूक्ष्म बुद्धि द्वारा साक्षात्कार करते हैं। जो मिताहारी विद्वान् रात्रि के प्रथम और पिछले प्रहर में सदा ध्यान योग का अभ्यास करता है, वह अन्तःकरण निर्मल हो जाने पर वह शुभ अशुभ कर्मों से अपना सम्बन्ध हटाकर, प्रसन्नचित्त से आत्मस्वरूप में स्थित हो जाता है और अनन्त आनन्द का अनुभव करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य की महिमा तथा सुख-दुःख का विवेचन :

भगवान भृग ने पुनः कहा-- महाभाग सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही तन है, सत्य के बल से ही प्रजा की सुष्टि होती है। सत्य ही सम्पूर्ण लोकों को धारण किये हुए है और सत्य के बल से ही मानव स्वर्गलोक को जाता है। महामुने! असत्य अन्धकार स्वरूप है वह मनुष्य का पतन करता है असत्य (अज्ञान) के अन्धकार से आवृत्त मनुष्य तमोगुण से ग्रस्त होकर ज्ञान के प्रकाश को नहीं देख पाते हैं। स्वर्ग प्रकाशमय और नरक अन्धकारमय है–ऐसा मनीषियों का कथन है। सत्य से युक्त जो मानव योनि है, वह ज्ञान और अज्ञान दोनों के सम्मिश्रण से जगत् के जीवों को प्राप्त होती है। महामुने! इस संसार में जो सत्य है, वहीं धर्म और प्रकाश है तथा जो असत्य है, वहीं अधर्म तथा अन्धकार है। तात्पर्य यह है कि जो सत्य वहीं धर्म है, जो धर्म है वही प्रकाश है और जो ज्ञान का प्रकाश है वही सुख है। इसी प्रकार जो असत्य ह वही अधर्म है, जो वही अन्धकार है ओर जो अज्ञान रूपी अन्धकार है वही दुःख है। महर्षे! यह सांसारिक सृष्टि शारीरिक और मानसिक क्लेशों से युक्त है। यहाँ जिस सुख की अनुभूति होती है वह सुख भी अन्त में दुःख में ही रूपान्तरित होने वाला है। ऐसी ज्ञानमयी दृष्टि रखने वाले कभी मोह में नहीं पड़ते। अतः विवेकी पुरुष का कर्तव्य है कि वह सदा जागतिक दुःख से छुटने का प्रयत्न करे। इहलोक और परलोक दोनों स्थानों में प्राप्त होने वाला सुख अनित्य है। जैसे राहुग्रसित चन्द्रमा की चांदनी अपना सौन्दर्य नहीं बिखेरती, उसी प्रकार अज्ञानरूपी अन्धकार में भटकते हुए जीवों का सुख नष्ट हो जाता है। महामुने! सुख भी दो प्रकार का होता है–शारीरिक और मानसिक। इस लोक और परलोक में भी मनुष्य वस्तुओं की प्राप्ति के लिए जो प्रयत्न करता है, वह प्रवृत्ति भी सुख के लिए ही होती है।

यही लौकिक और पारलौकिक सुख ही धर्म अर्थ और काम–इस त्रिवर्ग का एक मात्र आत्यन्तिक फल है। यह सुख ही प्राणी का एकमात्र अभिलषणीय गुणविशेष है। मुने! सुख की उत्पत्ति में उद्योग ही हेतु है। अतः इस संसार में एकमात्र सुख के लिए ही कर्मों में प्रवृत्ति होती है।

तब भगवान भरद्वाज ने पुनः प्रश्न किया–प्रभो! आपने जो सुख को त्रिवर्ग का अत्यन्तिक फल बताया है, उससे हृदय को सन्तुष्टि नहीं हुई। क्योंकि कठोर तपस्या में निरत जो महषिगण हैं, उन्हें यद्यपि यह गुणविशेष सुख सरलता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त है, फिर भी वे इस सुख की कामना नहीं करते। सुना जाता है कि त्रिलोक स्रष्टा भगवान् ब्रह्मा अकेले ही निवास करते हैं, सदा ब्रह्मचर्य में निरत है और कभी काम सुख की इच्छा नहीं करते। उमावल्लभ भगवान शिव भी सदा समाधिलीन रहते हैं, और कामदेव को भस्म कर उन्होंने उसे अनंग बना दिया। महात्मा पुरुषों ने भी कभी इस सुख नामक गुणविशेष को प्रश्रय नहीं दिया। उन महात्मा ऋषि-मुनियों के लिए यह सांसारिक सुख नहीं है, किन्तु आपकी बातों से ऐसी प्रतीति नहीं होती। आपका तो कथन है कि यह सांसारिक सुख आत्यन्तिक फल है। लोकानुसार फल दो प्रकार का है—पुण्य कर्मों का फल सुख और पाप कर्मों का फल दुःख। तब ब्रह्मर्षि भृगु ने कहा—महाभाग! असत्य से अज्ञान उत्पन्न हुआ है, अतः अज्ञानतम से ग्रस्त मनुष्य अधर्म का ही अनुसरण करते हैं, धर्म में उनकी कदापि श्रद्धा नहीं होती है। मुने! जो मनुष्य क्रोध, लोभ, हिंसा तथा अज्ञान से आवृत्त है वे न तो इस लोक में सुखी होते हैं, न परलोक में। वे नाना प्रकार के रोगों और व्याधियों से ग्रस्त रहते हैं। वध और बन्धन आदि के क्लेशों तथा भूख, प्यास, थकावट आदि की मर्मान्तक पीड़ा से व्यथित रहते हैं। बन्धु-बान्धवों की मृत्यु, धन नाश, प्रियवियोग की व्यथा भी उन्हें झेलनी पड़ती है। बुढ़ापा और मृत्यु के क्लेशों से भी व्याकुल रहते हैं। मुने! जो मनुष्य इन शारीरिक एवं मानसिक दुःखों के सम्बन्ध से रहित हैं, उन्हें ही सुख का अनुभव होता है। स्वर्गलोक में ये पूर्वोक्त दुःख रूप दोष नहीं होते हैं। स्वर्ग में अति सुखदायिनी हवा चलती है। मोहक सुगन्ध छायी रहती है। भूख, प्यास, परिश्रम, बुढ़ापा और पाप के फल को यहाँ कभी नहीं भोगना पड़ता। स्वर्ग में सदैव सुख ही होता है, पृथ्वी पर सुख और दुःख दोनों होते हैं तथा नरक में केवल दुःख ही दुःख होता है। वास्तविक सुख तो वह परमब्रह्म परमात्मा ही है। पृथ्वी सम्पूर्ण प्राणियों की जननी है। संसार की स्त्रियाँ भी पृथ्वी के समान ही सम्पूर्ण ही संसार की जननी हैं। पुरुष ही इस लोक में प्रजापति तुल्य है। यहाँ सम्पूर्ण प्रजा अपने-अपने कर्मों से आवृत्त होकर सुख दुःख का अनुभव करती है।[१९]

शुनः शेष आख्यान :

शुनः शेष की कथा ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण में मिलती है जिससे उस समय में प्रचलित नर-बलि का संकेत मिलता है। यथा राजा हरिश्चन्द्र वरुण को प्रसन्न कर सशर्त रोहित नामक एक पुत्र प्राप्त करते हैं। शर्त यह थी कि वरुणदेव जब चाहेंगे तब अपने पुत्र रोहित को राजा हरिश्चन्द्र से वापस ले लेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुत्र रोहित के युवा होने पर वरुण ने उसे मांगा। स्वयं राजा रोहित की बलि देना चाहता है। इसी समय रोहित जंगल में भाग जाता है रोहित के भाग जाने से राजा हरिश्चन्द्र को वरुण को दण्डदान देना पड़ता है। राजा को जलोदर रोग हो जाता है राजा को जलोदर रोग से ग्रसित होने का समाचार सुनकर रोहित राजा के पास लौटना चाहता है, किन्तु ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र भ्रमण का महत्त्व बताकर रोहित को राजा के पास लौटने से वंचित कर देता है। पाँच वर्षों तक रोहित जंगल में ही भ्रमण करता है छठे वर्ष में भ्रमण करते हुए रोहित की भेंट एक भूखे-प्यासे, पथ भ्रष्ट अजीगर्त नामक ऋषि से, जो भूखी-प्यासी, पत्नी तथा शुनः पुच्छ, शुनः शेष और शुनः लांगूल नामक तीन बुभूक्षित पुत्रों के साथ था, होती है। रोहित एक पुत्र के बदले सौ स्वस्थ गायों को देने के लिए अजीगर्त को कहता है। ज्येष्ठ पुत्र अजीगर्त को तब कनिष्ठ पुत्र उसकी पत्नी को प्रिय थे, इसलिए वे दोनों उन दोनों ज्येष्ठ तथा कनिष्ठ पुत्रों को सौ गायों के बदले रोहित को देना नहीं चाहते थे। अतः मध्यम पुत्र शुनः शेष माता-पिता द्वारा रोहित के हवाले कर दिया जाता है वरुण क्षत्रिय रोहित के बदले ब्राह्मण पुत्र शुनः शेष को बलि के लिए अच्छा समझ कर स्वीकार कर लेता है।

शुनः शेष को राजसूय यज्ञ में पशु की जगह बलि देने का आयोजन होता है इसी समय एक समस्या खड़ी हो जाती है, वह यह कि ब्राह्मण शुनः शेष के बलि देने पर ब्राह्महत्या का महापातक कौन अपने ऊपर ले। अजीगर्त सौ गायों को यज्ञ स्तम्भ में बांधने तथा उनकी बलि दिए जाने के बदले बलिस्वरूप पुत्र हत्या कर पाप लेने को तैयार हो जाता है। यह सब व्यवस्था देखकर शुनः शेष वेद की शरण में जाता है। तीन पवमान ऋचाओं से ऊषा रूप में भगवान की स्तुति करते ही उसका बन्धन ढीला होकर खुल जाता है और वह बलि स्तंभ से मुक्त हो जाता है। यह अपूर्व घटना देखकर पुरोहितवर्ग यज्ञ महोत्सव में शुनः शेष का बहुत श्रदा के साथ स्वागत करता है। इस यज्ञ में हरिश्चन्द्र होता बनते हैं, जलोदर मुक्त हरिश्चन्द्र यज्ञ की समाप्ति पर अपने सौ पुत्रों की उपेक्षा कर शुनः शेष को पुत्र के रूप के स्वीकार कर उसे अपना उत्तराधिकारी होने की घोषणा कर देते हैं।

शुनः शेष की कथा इस प्रकार है

इक्ष्वाकु वंश में हरिश्चन्द्र नाम के प्रतापी राजा हो चुके हैं। उनके सत्यव्रत की महत्ता आज भी भारतवर्ष में गूँजती रहती है। पुण्यसलिला भगवती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागीरथी आज भी वाराणसी में हरिश्चन्द्र घाट पर कल-कलरवों से उन सत्यव्रत राजर्षि का गुण गाया करती है। उस राजर्षि ने सत्यव्रत के पालन में अपने शरीर तक की उपेक्षा कर दी।

हरिश्चन्द्र की राजधानी में सारी समृद्धियां पुञ्जीभूत होकर विराजती हैं। राज्यलक्ष्मी, जयलक्ष्मी, धनलक्ष्मी इत्यादि जितने प्रकार की समृद्धियां हैं। सभी वहां एकत्र हैं। हरिश्चन्द्र के राज्य में तपस्वी ब्राह्मणों की सदा पूजा होती है, गृह में यज्ञाग्नि कभी शान्त नहीं होती है। याचकों का याचकत्व छूट गया है कहीं न तो अकालमृत्यु है न कहीं चोरभय। सारी प्रजा सुख समृद्धि से पूर्ण होकर चैन की सांस ले रही है।

संसार ऐसा है जिसमें कोई पूर्ण नहीं रह सकता। किसी भी व्यक्ति में पूर्णता नजर आ ही नहीं सकती। यहाँ पूर्णकाम तो केवल बीतराग महात्मा ही रह सकते हैं। औरों को तो हमेशा आशा के लाल डोरे नचाया करते हैं। किसी को धन की इच्छा तो किसी को जन की इच्छा। इसके अलावे कुछ भाग्यशाली परलोक की भी चिन्ता किया करते हैं। और सामान्यजनों की तो बात ही क्या- उन्हें तो नमक मशाले से लेकर मरने तक की चिन्ता है।

महाराज हरिश्चन्द्र पूर्णतः समृद्ध है। उन्हें किसी बात की कमी नहीं। तीनों लोक अधीन हैं। इन्द्र भी आज्ञाकारी है। महाराज ने जीवन के तीन चौथाई हिस्से तो आनन्द में बिता दिये। चौथेपन में उन्हें एक ही दुःख रह गया । उनको आज तक पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। महाराज का मन चिन्ता से व्याकुल हो उठा है। देवऋण को तो उन्होंने यजन-याजन से पूरा कर दिया, ऋषि ऋण को भी अध्ययन द्वारा उन्होंने चुका दिया। पर पितृ ऋण को? इसे तो आज तक उन्होंने पूरा नहीं किया। इसके लिए तो वे सदा सचेष्ट रहे पर यदि पुत्र उत्पन्न ही नहीं हुआ तो इसमें उनका क्या दोष! महाराज हरिश्चन्द्र की चिन्ता बढ़ने लगी। वे मन ही मन सोचने लगे में बड़ा अभागा हूँ। मुझ जैसा पापी और कोई नहीं है। आज मेरे पितर वंश समाप्ति के भय से आतंकित हो गए हैं। मेरे द्वारा प्रदत्त जल को वे आंसू गिराकर पीते हैं।

हरिश्चन्द्र के दुःख का अन्त नहीं दिख पड़ता था। चारों ओर से निराश हो जाने पर राजा वरुण देवता की शरण में गए। राजा ने वरुण की प्रार्थना करते हुए कहा-वरुण देव! आप संसार के निरीक्षक तथा नियामक है। आप पापियों को दण्ड देते तथा भक्त जनों की रक्षा करते हैं। मैं पुत्र न होने से बहुत दुःखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ आप मुझे पुत्र देकर मेरे दुःख को दूर कीजिए। इस पुत्र को मैं आपको भेंट चढ़ा दूँगा।

राजा की प्रार्थना को वरुण देव ने स्वीकार कर लिया। राजा की धर्म पत्नी ने गर्भ धारण किया। महाराज की आशा जागरूक हो उठी। समय आने पर महारानी ने पुत्र रत्न को जन्म दिया। राजधानी में आनन्द उत्सव का साम्राज्य छा गया। प्रजावर्ग आनन्द में विभोर हो उठा। राजा ने ब्राह्मणों तथा याचकों को अतुल सम्पत्ति दी। ठीक इसी उत्सव में वरुण देव भी पधारे। साक्षात् शरीरधारी राजा सामने उपस्थित हो गए।

'राजन्! तुमने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि तुझे पुत्र पैदा होगा तो मुझे अर्पित कर दोगे तुम्हारी मनोकामना पूरी हुई है। अतः अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करो।' वरुण ने राजा को पूर्व प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाते हुए कहा।

'भगवन्! अभी तो यह बालक सूतिकागृह में है। अभी तो यह अशुद्ध होने से अमेध्य है। कृपया इसके सूतिकागृह से बाहर निकलने पर आप ग्रहण कीजिए।' राजा ने उत्तर दिया। राजा की ममत्व बुद्धि पुत्र को देने में हिचकिचा रही थी। वरुण देव ने राजा की बात मान ली और वे चले गए।

'राजन्! यह बालक अब सूतिका गृह से बाहर आ गया है इसे देकर अब अपने वचन को पूरा करो।' वरुण ने फिर बारहवें दिन उपस्थित होकर हरिश्चन्द्र से उनके लड़के की याचना की। वरुण की बात सुनकर राजा का हृदय कांप उठा। पर वे तो वचनबद्ध थे। कर ही क्या सकते थे?

'प्रभो! अभी तो इस बालक को दूध के दाँत नहीं आये हैं। अतः यह अमेध्य है। जब दूध के दाँत आ जाय तो इसे ग्रहण कीजिएगा।' हरिश्चन्द्र ने फिर वरुण से कहा वरुण ने हरिश्चन्द्र की बात मान ली। वे चले गए।

वरुण देवता समय-समय पर राजा से उनके पुत्र को मांगने आते थे पर राजा कोई न कोई बहाना बनाकर उन्हें वापस लौटा देते थे। राजा की ममता दिनोंदिन पुत्र के प्रति बढ़ती जाती थी। जिस पुत्र के लिए वे इतने दिनों तक परेशान थे, जिसके लिए उन्होंने नाना उपचार किये कैसे वे वरुण को बलि दे दें? उनका वंश नष्ट होने का संकट तो फिर जैसे का तैसा बना रहेगा। इस पुत्र के उत्पन्न होने से उन्हें क्या लाभ हुआ? इससे तो केवल कष्ट ही हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिश्चन्द्र के पूर्वजों की पुत्र को बलि दे देने पर फिर पिण्डोदक क्रिया लुप्त हो जायेगी। इन चिन्ताओं ने हरिश्चन्द्र को जर्जर बना दिया। उनका दुःख कम होने के बजाय बढ़ने लगा। उन्होंने वरुण को पुत्र देने का वायदा करके भयंकर भूल की।

वरुण समय-समय पर उनके पुत्र को मांगने आते और राजा 'अभी छोटा है, अभी नामकरण नहीं हुआ है, अभी उपनयन नहीं हुआ हैं, इत्यादि नाना प्रकार का बहाना बनाकर उन्हें लौटा देते थे। वरुण भी चुपचाप लौट जाते थे, क्योंकि उनके शासन से बचाकर वे लड़के को ले ही कहां जा सकते हैं?

समय बीतने लगा। बड़े-बूढ़ों ने बालक का नाम रोहित रखा। रोहित बड़ा हो गया और वह अब पूर्व रूप से सुसंस्कृत हो गया। वरुण ने फिर याचना की। हरिश्चन्द्र के लिए अब कोई उपाय नहीं छूटा था। उन्होंने कलेजे पर पत्थर रखकर कहा–'प्रभो! मैं अब आपको पुत्र की बलि दे दूंगा। कृपया कुछ दिन और धैर्य रखिये।' वरुण फिर भी स्वीकार कर चले गए।

अब राजा ने अपने प्रस्ताव को पुत्र रोहित के सामने रखा–'बेटा! तेरी उत्पत्ति वरुणदेव की कृपा से हुई है और अब तुझे वे ही वरुण देव मांग रहे हैं, अतः अपने बलिदान के लिए प्रस्तुत हो जाओ।'

हरिश्चन्द्र की बातें रोहित को बड़ी बुरी लगीं। समर्थ होकर भी वह वरुण की बलि चढ़े यह बात उसे बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं हुई। सारा संसार अपने अपने स्वार्थ में संलग्न है। अणु-अणु स्वार्थ की कहानी कह रहा है परमार्थ का कहीं नाम निशान नहीं। रोहित ने अपने पिता की बातें चुपचाप सुन लीं और वहाँ से उठकर चल दिया। दूसरे दिन सुबह ही उसने जंगल की राह ली। न रहे बांस न बाजे बांसुरी। वह घर पर रहेगा ही नहीं तो बलि कैसे दी जायेगी। रोहित ने राजमहल और राजसुख का त्याग कर दिया।

रोहित राजा हरिश्चन्द्र की नगरी को छोड़कर जंगल में चले गए। उन्होंने पुरुषार्थ का आश्रय लिया। जंगल में कन्दमूल-फल खाकर जीवन बिताते और स्वच्छन्दता से घूमा करते थे। उन्हें कहीं भी किसी प्रकार की रुकावट न थी। इधर वरुण देवता फिर हरिश्चन्द्र के पास आए। इस बार आने पर उन्होंने दूसरा ही रंग देखा। रोहित बाहर भाग गया है हरिश्चन्द्र ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं की। वरुण देव ने सोचा–'इसमें रोहित का तो अपराध नहीं । कौन व्यक्ति इस तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरंना चाहेगा? सारा अपराध तो हरिश्चन्द्र का है। इन्होंने ही तो आज लालच में पड़कर पुत्र को मृत्यु से बचाया। अब भाग जाने पर पश्चात्ताप कर रहे हैं।'

वरुण देव क्रोध अब जाग उठा। उनकी भौहें तन गईं और आँख लाल हो गईं। हरिश्चन्द्र को मजा चखाने का उन्होंने निश्चय किया। बस अब क्या था? हरिश्चन्द्र पर विपत्ति का सागर टूट पड़ा। जल के अधिपति वरुण ने हरिश्चन्द्र के शरीर में जल की वृद्धि की। हरिश्चन्द्र को जलोदर हो गया। शरीर पीला पड़ने लगा और पेट निकल आया। कुछ दिन तक तो हरिश्चन्द्र घूमते फिरते रहे पर अन्त में अशक्त होकर शय्या की शरण ली। विधाता ने अपने क्रूर विधान को फिर दिखाया। जागत्पति हरिश्चन्द्र असमर्थ होकर तकलीफ उठायें इससे बड़ी विडम्बना ही क्या हो सकती है? वैद्य चिकित्सकों, तान्त्रिकों, मांत्रिकों तथा पण्डित-पुरोहितों ने अथक प्रयास किया, पर हरिश्चन्द्र को इस रोग से अच्छा न कर सके। उनकी पीड़ा जरा भी कम न हुई।

एक दिन हरिश्चन्द्र की दुःख-कहानी रोहित को भी किसी प्रकार मालूम हो गयी। पिता की तकलीफ सुनकर उनका हृदय द्रवित हो गया। पिता उसी के कारण कष्ट पायें और रोहित जंगल-जंगल घूमा करे यह संभव नहीं। यह उसके कुल की मर्यादा तथा उसके शौर्य के विरुद्ध है। पिता की इस हालत में उपेक्षा करना ठीक नहीं। रोहित घर चलने का निश्चय कर चल दिया।

'रोहित! तुम कहाँ व्यग्र होकर चले जा रहे हो।' रास्ते में एक व्यक्ति ने पूछा।

'मेरे पिताजी ने मुझे वरुण को बलि देने को कहा था। मेरे जंगल में भाग आने से वरुण उन पर क्रुद्ध हो गए हैं और मेरे पिता जी को जलोदर हो गया है उन्हें महान कष्ट हो रहा है मैं उन्हीं वरुण देव को सन्तुष्ट करने घर जा रहा हूँ।' रोहित ने उत्तर दिया।

रोहित की बातों को सुनकर इन्द्र को आश्चर्य हुआ, उन्होंने कहना प्रारंभ किया-'रोहित! तुम कैसी मूर्खों सी बात कर रहे हो। निश्चेष्ट होकर पशु की तरह मरने जा रहे हो? देवता लोग कभी निष्क्रिय व्यक्ति की सहायता नहीं करते। क्रियाहीन व्यक्ति को लक्ष्मी कभी वरुण नहीं करती और वह व्यक्ति सदा तुच्छ समझा जाता है संचारण में ही सुख है। तू सदा घूमा कर। घूमने से तीर्थों का दर्शन होता है जिससे सभी पातक दूर हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र की चिकनी-चुपड़ी बातें रोहित को पसन्द आ गई। वह लौट गया जगंल में और फिर उसी भांति सञ्चारण में तल्लीन हो गया। किन्तु उसकी विवेक बुद्धि रह-रहकर जाग उठती। उसका हृदय पिता के दुःख की कल्पना से भर उठता। उससे रहा न गया। वह फिर घर की ओर उन्मुख हुआ। रास्ते में पुनः इन्द्र देव मिले। उसी प्रकार के तर्क रखे। रोहित लौट पड़ा। घूमने में व्यस्त हो गया।

पर कभी न कभी तो मनुष्य को विवेक बुद्धि प्रेरित करती है। रोहित को अब घूमना असह्य मालूम पड़ने लगा। पिता के दुःख की कल्पना उनके रोंगटे खड़े कर देती थी। जिस पिता ने इतने लाड़ प्यार से पालन किया उसके दुःख का ध्यान न रखना महान् पाप है। हरिश्चन्द्र के सारे प्रयास रोहित को सुखी रखने के लिए ही तो थे। रोहित कांप उठे। घर की राह ली। इन्द्र ने फिर टोका पर उनकी सुनता कौन है? रोहित चल दिया।

मार्ग में रोहित को एक बात सूझी। वह सोचने लगा—मेरे बदले यदि कोई दूसरा व्यक्ति वरुण को बलि दे दिया जाता तो क्या ही अच्छा होता। मैं उस व्यक्ति को खरीद लेता। इस प्रकार के निष्कृति दान की भी तो व्यवस्था है ही। रोहित इस प्रकार सोचना आगे बढ़ ही रहा था कि ब्राह्मण की एक कुटिया मिली। उसमें कुल पाँच प्राणी थे—पिता, माता और तीन पुत्र। पिता का नाम अजीगर्त सौयवसि और तीनों पुत्रों का नाम हैं : शुनः पुच्छ, शुनः शेष और शुनो लाङ्गूल। पांचों व्यक्ति भूखे तड़प रहे हैं। वे परस्पर अपने को बेचकर भी किसी प्रकार उदर भरने की बात कह रहे हैं। रोहित ने उन लोगों का अभिप्राय समझ लिया।

'मुझे एक व्यक्ति का प्रतिनिधि बनाकर वरुण को बलि देना है। उसके बदले में मैं १०० गायें दूंगा। यदि आप लोगों को पसन्द हो तो किसी को ले चलूं। रोहित ने उनसे पूछा।

रोहित की बात को जब उन लोगों ने स्वीकार कर लिया तो उसने बड़े लड़के को अपने साथ चलने को कहा। इस पर पिता ने कहा—'यही मेरे पिण्डदान का अधिकारी है। इसे मैं नहीं दे सकता। आप मुझे ही ले लें।' रोहित ने छोटे पुत्र से कहा। उसकी बात सुनकर माता ने वही बातें दुहराईं जो पिता कह चुका था। अब रोहित मध्यम पुत्र को साथ लेकर चला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोहित का लौटना सुनकर हरिश्चन्द्र आनन्द से भर उठे। उन्होंने बार-बार पुत्र को मुंह सूंघा। वरुण से जब निष्कृति वाली बात कही गई तो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर ली। क्षत्रिय के बदले ब्राह्मण तो उत्तम ही है। राजसूय की व्यवस्था होने लगी। नगर का साज शृंगार होने लगा। होता विश्वामित्र, अध्वर्यु जमदग्नि, ब्रह्मा, वशिष्ठ तथा उद्‌गाता के पद अयास्य नियुक्त हुए। यज्ञ-क्रिया प्रारंभ हो गयी।

अब शुनः शेष को यूप में बांधने की बारी आयी। जमदग्नि के कोमल हृदय ने बालक को बांधने से इन्कार कर दिया। हलबली मच गयी। वशिष्ठ ने फिर अजीगर्त से ही इस दुष्कर काम के लिए कहा। १०० गायें लेकर उसने पुत्र को आलम्भन यूप में बांध दिया। पिता के इस कुकृत्य से निर्लज्जता भी लज्जित होने लगी। सारे दर्शक क्रोध से चिल्ला उठे। पर अजीगर्त के पाषाण हृदय पर इसका कुछ असर नहीं पड़ा।

अब आलम्भन की बारी आयी। जब अन्य ब्राह्मणों ने बांधने से इन्कार कर दिया तो इस ब्राह्मण बालक की वे बलि देंगे यह तो सोचना ही मूर्खता है। बड़ा विकट प्रश्न है। पिता से पूछा गया। १०० गायें लेकर पुनः प्रस्तुत। कटार रेतने लगा। कठोरता की सीमा नहीं होती। एक से एक प्राणी पड़े हैं। सभी अजीगर्त के इस नीचे कर्म को देख आँखों भींच ली।

अब तक शुनः शेष को यह आशा थी कि लोग उसे छोड़ देंगे पर पिता के इस कलुषित प्रयास को देखकर उसकी आशा पर पानी फिर गया। उसके पिता ऐसा कर्म करेंगे इसकी उसे आशा भी नहीं थी। संसार के प्रति वह निराश हो गया। वह देवताओं की शरण में गया। इस विपत्ति से अब देवता ही रक्षा कर सकते हैं। विश्वामित्र ने देवताओं की शरण में जाने की प्रेरणा दी। शुनः शेष के करुणापूत हृदय में दिव्यवाणी का सञ्चार हुआ। वे अग्नि, सविता, वरुण आदि देवताओं की स्तुति करने लगे।

अग्नि देव! आप देवताओं में प्रथम हैं। हम आपकी स्तुति करते हैं। आप मेरी रक्षा करें। वरुण देव! शुनः शेष तीन स्थानों पर बांधा गया है वह भयभीत होकर आपको पुकार रहा है विद्वान् राजा वरुण इसे जानते हुए छुड़ावें और मेरे बन्धनों को काटें । हे वरुण देव! आप ऊपरी पाश को, नीचे के बन्धन को और बीच के बन्धन को ढीला करें। हम पापहीन हैं अतः आप मेरी रक्षा करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुनः शेष की प्रार्थना से वरुण प्रसन्न हो गए। हरिश्चन्द्र का रोग अच्छा हो गया और शुनः शेष के सभी बन्धन टूट कर गिर पड़े। सभी लोगों ने आश्चर्य के साथ इस कौतुक को देखा और वरुण की दयालुता की प्रशंसा की। यज्ञ की समाप्ति हो गयी। राजा ने सभी को दान से सन्तुष्ट कर दिया।

शुनः शेष का हृदय पिता के कठोर कृत्यों से दुःखित हो गया था और अजीगर्त सौयवसि को पिता मानने से इन्कार कर रहा था। उसने विश्वामित्र को अपना पिता बनाया। इस पर अजीगर्त पुत्र को समझाया पर शुनः शेष ने उसकी एक न सुनी। विश्वामित्र ने शुनः शेष को अपना पोष्यपुत्र बना लिया। पर, विश्वामित्र के पचास पुत्रों ने इसकी स्वीकृति न दी। इस पर क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने उन्हें शाप दे दिया वे शबर आदि होकर म्लेच्छ देशों में चले गए।

—ऐतरेय ब्राह्मण ७.१३-१८, ऋ० १०.२४.२७

महर्षि दुर्वासा और मृद्गल मुनि

तप की श्रेष्ठता :

काम्यक वन में निवास करते हुए पाण्डवों ने अपने वनवास के बारहवें वर्ष में प्रवेश लिया। एक दिन स्वेच्छा से महायोगी सत्यवतीनन्दन व्यास अपने पुत्रों का हाल जानने के लिए काम्यक वन में पधारे। पाण्डवों ने उन महातपस्वी महर्षि का पूजन किया और जब व्यासजी सुखासन पर बैठे गए तब पाण्डवों ने उनकी चरणवन्दना कर उन्हें सन्तुष्ट किया। वन में कन्द-मूल खाकर तपस्या में निरत अपने पौत्रों को कृश देखकर महामुनि के नेत्रों में अश्रु छलक आये, वात्सल्य के कारण उनका गला भर गया। कुछ देर शान्त रहकर उन्होंने कहा–'धर्मात्माओं में श्रेष्ठ महाराज कुन्तीनन्दन! बिना तपस्या के इस संसार में महासुख की प्राप्ति नहीं होती। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में सुख और दुःख दोनों का अवसर आता है। नरशार्दूल! इस संसार में अनन्त सुखों का प्राप्ति किसी भी प्राणी को नहीं होती। सात्त्विक बुद्धि से युक्त तत्त्व ज्ञानी पुरुष इस संसार की सृष्टि, स्थिताति तथा लय के अधिष्ठान पर बह्म परमात्मा को जानकर न तो हर्षित होता है और शोक करता है अतः वत्स! समत्वबुद्धियुक्त पुरुष को उचित है कि वह सुख अथवा दुःख जो भी भाग्यानुसार प्राप्त हो उसका वहन करे। जैसे किसान खेत में बीज बोकर, फसल पकने पर जो कुछ कम ज्यादा धान्य की प्राप्ति होती है, उसे सन्तोषपूर्वक ग्रहण करता है, उसी प्रकार इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार के प्राणी भी, प्रारब्धवश जो कुछ दुःख प्राप्त हो, उसे ग्रहण करें। राजन् आप इस बात को भली-भांति जान लें कि इस जगत् से बढ़कर कुछ भी दुर्लभ नहीं है। बड़ी से बड़ी सिद्धि तप के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। तप के द्वारा कुछ भी दुर्लभ नहीं है। कुन्तीनन्दन! सत्य, सरलता, क्रोध का अभाव, देवता और अतिथियों को देकर अन्न ग्रहण करना, दम शान्त, द्वेष का अभाव, अहिंसा, भीतर-बाहर की पवित्रता, इन्द्रिय, संयम, निर्लोभता-ये सभी गुण पुण्यशाली महात्माओं को पवित्र करने वाले हैं।[२०] जो मूढ़ जन अधर्म में रुचि रखने वाले हैं। वे मृत्यु के बाद पशु-पक्षियों की योनि में जन्म ग्रहण करते हैं। इन कष्टदायक योनियों में सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है? राजन् इस लोक में जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल उसे परलोक में भोगना पड़ता है। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह अपने शरीर को तपस्या और व्रत पालन में लगावे। महाराज! समय पर यदि कोई अतिथि आ आए तो प्रसन्नचित होकर शाक्ति के अनुसार उसे दान दे अथवा भोजन करावे तथा उसका विधिवत् पूजन कर उसे प्रणाम करे। सत्यवादी दीर्घ आयु अनायास सुख तथा सरलता नहीं देखता है। जिसके हृदय में क्रोध आविर्भाव नहीं होता और जो दूसरों के दोष नहीं देखता वह परम शान्ति को प्राप्त करता है मन और इन्द्रियों की वंश में रखने वाला व्यक्ति कभी क्लेश प्राप्त नहीं करता। जितेन्द्रिय व्यक्ति पराई मनुष्य आरोग्यशाली होता है पूजनीय व्यक्तियों कि पूजा करने वाला मनुष्य महान कुल में जन्म पाता है। जितेन्द्रिय व्यक्ति कभी व्यसनों में नहीं फंसता। वह इस लोक में भी परमानन्द की प्राप्ति करता है राजन् जिस मनुष्य की बुद्धि शुभ कर्मों में निरत होती है वह मृत्यु के पश्चात् दूसरे जन्म में कल्याण बुद्धि से युक्त होकर ही जन्म ग्रहण करता है राजन्! इस संसार में दानधर्म अति दुष्कर है। धन के प्रति मनुष्य का लोभ बहुत अधिक होता है और धन प्राप्त भी होता है बड़े क्लेश से। नरेश्वर! कितने ही वीर और साहसी मनुष्य रत्नों के लिए प्राणों का मोह छोड़कर समुद्र में गौता लगाते हैं और धन के लिए वन-वन भटकते हैं। अतएव दुःख से उपार्जित धन का दान अत्यन्त कष्टकर होता है। दान से बढ़कर दूसरा कोई कठिन कार्य नहीं है, इसलिए मेरे मत में दान ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। दानधर्म की एक विशेषता यह है कि न्यायपूर्वक कमाए गए धन को उत्तम देश, काल और पात्र का विचार करके प्रदान करें।[२१] अन्याय से उपार्जित धन का दान मनुष्य की, महान भय से रक्षा न कर सकता।[२२] महाराज कुन्तीनन्दन! उत्तम देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और काम का विचार करके यदि पवित्र मन से उत्तम पात्र को थोड़ा भी धन दान में दिया जाय तो वह परलोक में अनन्त फल देने वाला माना गया है।[२३]

सात्त्विक दान की प्रशंसा :

विद्वान् लोग इस विषय में एक प्राचीन इतिहास का उदाहरण देते हैं कि किस प्रकार महर्षि मुद्गल ने एक द्रोण धान का दान करके महान् फल प्राप्त किया था। राजन! कुरुक्षेत्र में मुद्गल नामक एक महर्षि रहते थे। वे धर्मात्मा और जितेन्द्रिय थे और उन्छ वृति से वे अपनी जीविका चलाते थे। वे सदा सत्य बोलते थे और कभी किसी की निन्दा नहीं करते थे। वे सदा अतिथियों का सत्कार करते थे। वे अग्निहोत्र आदि सत्कर्मों में निरत रहकर कापोती वृत्ति से जीवन निर्वाह करते हुए थोड़े से ही अन्न का संग्रह करते थे। स्त्री और पुत्र के साथ रहते हुए, पन्द्रह दिन में कबूतर जितना दाना चुगता है, उतना ही चुनकर एक द्रोण धान का संग्रह कर पाते थे। उस अन्न से वे इष्टीकृति यज्ञ का अनुष्ठान करते थे। इस प्रकार देवता और अतिथियों का भाग अर्पित कर शेष अन्न के द्वारा जीवन यापन करते थे। प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमा को देवेश इन्द्र देवताओं सहित उनके यज्ञ में पधार कर अपना भाग ग्रहण करते थे। मुनिवृत्ति से जीवन यापन करते हुए महामुनि मुद्गल दर्श और पौर्णमास यज्ञ करके प्रसन्नचित्त से अतिथियों को भोजन कराते थे। ईर्ष्या द्वेश से सर्वथा रहित महात्मा मुद्गल एक द्रोण धान से तैयार किए हुए अन्न से जब-जब दान करते थे, तब-तब वह शेष अन्न दूसरे अतिथियों के दर्शन से बढ़ जाता था। उन महामुनि के निवास में सैकड़ों ब्राह्मण भोजन करते थे किन्तु महामुनि मुद्गल के त्याग और तपस्या के प्रभाव से वह अन्न बढ़ता ही जाता था, कभी समाप्त नहीं होता था। धर्मात्मा और तपस्वी महर्षि मुद्गल की कीर्ति महर्षि दुर्वासा ने भी सुनी। वे एक दिन दिगम्बर वेश में उनके यहाँ आ धमके। पाण्डुनन्दन! दुर्वासा मुनि उन्मत से मालूम पड़ते थे। उनकी वेश-भूषा बड़ी अटपटी थी। उनका सिर मुड़ा हुआ था और वे कटु वचन बोल रहे थे। महर्षि दुर्वासा ने आते ही कहा—मुनिश्रेष्ठ! मैं भोजन की अभिलाषा से आपके आश्रय में आया हूँ। तब महामुनि मुद्गल ने कहा—ब्रह्मर्षे? आपका स्वागत है। इतना कहकर मुनि मुद्गल ने उन्हें पाद्य, आचमनीय और अर्घ्य प्रदान किया। पुनः अतिथिव्रती महर्षि मुद्गल ने क्षुधित तपस्वी दुर्वासा को अन्न प्रदान किया। व्रतधारी महात्मा मुद्गल के हृदय में दुर्वासा जैसे सुपात्र के लिए परम श्रद्धा थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूख से व्याकुल महर्षि दुर्वासा ने मुद्गल मुनि द्वारा दिए स्वादिष्ट अन्न को खा लिया, तब महामुनि ने उन्हें पुनः पुनः भोजन परोसा। भोजन करने के बाद दुर्वासा मुनि ने थाली में बचे हुए जूठन से अपने सारे शरीर पर लेप कर लिया और फिर जैसे आये थे, वैसे ही चले गए। इसी प्रकार दूसरा पर्वकाल आने पर महामुनि दुर्वासा से आकर शिलोपजीवी मनीषी मुद्गल मुनि के सम्पूर्ण अन्न को खा लिया। निराहार रहकर उन महामनीषी मुद्गल मुनि ने पुनः अन्न के दाने बीनना प्रारंभ किया। भूख की पीड़ा उनके मन में विकार उत्पन्न नहीं कर सकी। उनके हृदय में न क्रोध था, न ईर्ष्या थी, न अपमान का भाव और न किसी प्रकार की चिन्ता थी, वे शान्तचित्त से पत्नी, पुत्र सहित उञ्छवृत्ति के पालन में निरत हो गये।[२४] इस प्रकार उनका धैर्य छुड़ाने के लिए कृतसंकल्प दुर्वासा मुनि उनके आश्रम में छः बार आये, किन्तु महर्षि दुर्वासा ने उनके हृदय को विकार युक्त नहीं पाया। पवित्र अन्तःकरण वाले महात्मा मुद्गल के हृदय को उन्होंने सदैव निर्मल पाया। तब मुद्गल मुनि पर प्रसन्न होकर महर्षि ने कहा–'मुने तुमसे बढ़कर ईर्ष्या रहित दानी इस संसार में दूसरा कोई नहीं है। भूख बड़े-बड़े धर्मज्ञानियों के ज्ञान को लुप्त कर देती है, धैर्य हर लेती है तथा रसों का स्वाद जानने वाली यह रसना मनुष्य के हृदय को रसों के प्रति खींचती रहती है।[२५] भोजन से ही प्राणों की रक्षा होती है। इस चंचल मन को रोक पाना अत्यन्त कठिन है। मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही निश्चित रूप से तप है। परिश्रम से उपार्जित धन का शुद्ध हृदय से दान करना अत्यन्त कठिन है। किन्तु श्रेष्ठ पुरुष आपने यह सब कर दिखलाया है। तुमसे मिलकर मेरा हृदय अत्यन्त प्रसन्न और कृतज्ञ है। इन्द्रियों पर विजय धैर्य, संविभाग, दम, शम, दया, सत्य और धर्म- यह सब तुमसे प्रतिष्ठित हैं। महामुने! तुमसे बढ़कर पवित्रात्मा दूसरा कोई नहीं है। तुमने अपने विशुद्ध कर्मों द्वारा सम्पूर्ण लोक को जीत लिया है, तुमने परमगति को प्राप्त कर लिया है। अहो। महर्षि! देखो, तुम्हारे इस महान दान की घोषणा स्वर्गवासी देवताओं द्वारा की जा रही है। महान व्रतधारी मुनिवर! तुम इसी शरीर से स्वर्ग जाओगे। महर्षि दुर्वासा जब इस प्रकार मुद्गल मुनि की प्रशंसा कर रहे थे, ठीक उसी समय देवदूत विमान के सहित उपस्थित हो गया। उस सुन्दर एवं दिव्य विमान में हंस और सारस पक्षी जुते हुए थे। वह दिव्य विमान किंकिनीमालाओं से सुशोभित था, उसकी कारीगरी विचित्र थी, वह इच्छानुसार चलने वाला था और उससे दिव्य सुगन्धि भी निकल रही थी। देवदूत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने कहा–महर्षि! तुमने अपनी कठिन तपस्या से इस विमान को जीत लिया है आप इस विमान पर बैठिए। परमगति प्राप्त कर ली है। इस प्रकार मुनी की प्रशंसा करने वाले देवदूत से महामुनि मुद्गल ने कहा–देवदूत! मैं आपसे स्वर्ग निवासियों के गुण सुनना चाहता हूँ। स्वर्ग में क्या सुख है? और स्वर्ग में दोष कौन-कौन से हैं? स्वर्ग में जो कुछ सत्य और हितकारी है, उसे आप स्पष्ट रूप से बता दें। विभो! आपके कथनानुसार मैं निर्णय करूंगा कि मुझे स्वर्ग जाना है अथवा नहीं। तब देवदूत ने कहा–महर्षि! अवश्य आपकी बुद्धि अति उत्तम है। आपको अति उत्तम स्वर्गीय सुख प्राप्त हुआ है किन्तु आप नासमझ की तरह इसके गुण–दोषों की समीक्षा कर रहे हो।

स्वर्गलोक के गुण-दोषों का विवेचन :

महामुने! जिसे स्वर्गलोक कहते हैं, वह यहाँ से बहुत दूर ऊपर की ओर है। वहाँ पहुँचने के लिए मार्ग सीधे ऊपर को आता है। वह मार्ग बहुत उत्तम है। स्वर्गीय जन सदा विमानों में विचरण करते हैं। महर्षि मुद्गल। जिन्होंने उत्तम कोटी की तपस्या नहीं की है, जिन्होंने महायज्ञ का आयोजन नहीं किया है, जो नास्तिक और असत्यवादी हैं, उन पुरुषों का स्वर्ग में प्रवेश दुर्लभ है। ब्रह्मन्! धर्मात्मा, मन और इन्द्रियों को वश में रखने वाले शांत, दान्त, ईर्ष्याद्वेष से रहित, दानधर्म में रत, युद्ध में प्राण विसर्जित करने वाले शूरवीर, सत्पुरुषों द्वारा सेवित पुण्यलोकों की प्राप्ती करते हैं। महामुने! स्वर्गलोक के ही अन्तर्गत देवता, साध्य, विश्वदेव, महर्षिगण, याम, धार्म, गन्धर्व तथा अप्सरा इन सम्पूर्ण देवताओं के अलग-अलग अनेक प्रकाशमान लोक हैं। ये सम्पूर्ण लोक इच्छानुसार प्राप्त होने वाले भोगी से सम्पन्न, तेजोमय तथा मंगलकारी हैं। महर्षि मुद्गल! स्वर्ग में तैतीस हजार योजन का एक सुवर्णमय पर्वत है, जो मेरुगिरी के नाम से विख्यात हैं। स्वर्ग में नन्दन आदि सैकड़ों उद्यान तथा पुण्यात्माओं के विहार स्थल हैं। स्वर्ग में भूख-प्यास, ग्लानि, शीत, उष्णता, भय, तथा शोक आदि विकारों के लिए कोई स्थान नहीं है। वीभत्स तथा अशुभ जैसी यहाँ कोई वस्तु दिखाई नहीं देती। अति सुन्दर शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु सदा प्रवाहमान रहती है। चारों दिशाओं में अत्यन्त मधुर तथा कर्णप्रिय ध्वनि गुंजरित होती है। स्वर्ग में त्रिविध शोक वृद्धावस्था, थकावट अथवा रुदन का सर्वथा अभाव है। मुनीवर! वह स्वर्गलोक ऐसा ही है जो मनुष्य को अपने पुण्यकर्मों के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं, माता-पिता से उत्पन्न नहीं होते। महर्षे! देवताओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन तेजस् शरीरों में से कभी पसीना नहीं निकलता, दुर्गन्ध नहीं आती, मलमूत्र का अभाव होता है, तथा उनके दिव्यवस्त्रों में कभी मैल नहीं बैठती। स्वर्गवासी जो माला गले में धारण करते हैं, वह दिव्य पुष्पों से निर्मित होती है, उनकी दिव्य सुगन्धि अत्यन्त मनोरम और लुभावनी होती है, वे कभी मलीन नहीं होती। भगवन्! जो महात्मा पुरुष अपने सत्कर्मों से स्वर्ग पर विजय पा चुके हैं, वे वहाँ बड़े सुख से निवास करते हैं। उनका अन्तःकरण ईर्ष्या-द्वेष, शोक और ग्लानि से सदा मुक्त होता है। स्वर्ग के अन्तर्गत विभिन्न देवताओं के जो विभिन्न लोक हैं, उन लोकों से ऊपर अन्य शतशः सहस्त्रशः लोक है जो क्रमशः अधिक दिव्य और गुण सम्पन्न हैं। सबसे ऊपर ब्रह्माजी के ब्रह्मलोक हैं जो अत्यन्त तेजोमय और मंगलकारी है। भगवन्! वहाँ अपने शुभ कर्मों से शान्तात्मा ऋषि मुनि जाते हैं। उन्हीं ब्रह्माजी के लोकों में ऋभुसंज्ञक देवगण रहते हैं, जो स्वर्गीय देवताओं के भी आराध्य हैं, देवलोक से उनका स्थान उत्कृष्ट है, देवगण यज्ञों द्वारा उनका यजन करते हैं। उन ऋभु देवताओं के उत्तम लोक स्वयं प्रकाश तेजोमय तथा सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं। उनके हृदय में कभी स्त्री विषयक सन्ताप नहीं होता। विभिन्न लोकों के ऐश्वर्य के लिए उनके मन में ईर्ष्या नहीं होती। वे देवताओं के सदृश आहुतिजीवी नहीं होते। उन्हें अमृत पीने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके शरीर दिव्य एवं ज्योतिर्मय होते हैं। यद्यपि वे ऋभुगण सम्पूर्ण सुखों के अधिष्ठान होते हैं फिर भी कभी सुख की कामना नहीं करते। वे देवाधिदेव और सनातन ईश्वर होते हैं। कल्प का अन्त होने पर भी कभी उनका अन्त नहीं होता। महामुने! उनमें जरा मृत्यु की संभावना नहीं होते। हर्ष, प्रीति सुख–आदि विकारों से उनका अन्तःकरण सर्वथा शून्य होता है ऐसी स्थिति में उनके हृदय में सुख-दुःख, राग-द्वेष कैसे हो सकता है? स्वर्ग के देवता भी सदा उन ऋभुगणों की परमगति की कामना करते हैं। वह परमसिद्धि की अवस्था है, परम दुर्लभ है, विषय भोगों में आसक्त जीव कभी उस सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकते। ये जो तैतीस देवता हैं, इन्हीं के दिव्य लोकों को मनीषी पुरुष उत्तम व्रत अथवा उत्तम दान के द्वारा प्राप्त करते हैं। भगवन् आपने दान के प्रभाव से यह उत्तम स्वर्गलोक प्राप्त किया है। तपस्या के धनी मुद्गल मुनि। आप अपने पुण्यों से उपार्जित इस दिव्य सुख का उपभोग करें।

विप्रवर ! इस प्रकार मैंने स्वर्ग के नाना प्रकार के दिव्य सुख, लोक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणों का वर्णन आपके सामने प्रस्तुत किया है। अब आप स्वर्ग के दोषों को भी सुनिए। प्रभो! स्वर्ग में, अपने द्वारा किये गये उत्तम कर्मों का फल भोगा जाता है वहाँ कोई नया कर्म नहीं किया जाता। अपना पुण्यरूपी मूल धन खोने से ही स्वर्ग के भोग प्राप्त होते हैं।[२६] स्वर्ग का सबसे बड़ा दोष यह है कि पुण्यकर्मों का भोग समाप्त हो जाने पर पुनः वहाँ से नीचे पृथ्वी लोक में आना पड़ता है। स्वर्ग के सुख भोगों में जिनका चित्त आसक्त हो जाता है, उन्हें सहसा उनका त्याग कितना दुःखदायी स्वर्ग में भी जो पुण्यकर्मा नीचे के स्थानों में अवस्थित हैं, उन्हें अपने से ऊपर स्थित देवताओं की समुज्जवल लक्ष्मी को देखकर जो सन्ताप और असन्तोष होता है, उसका वर्णन करना अत्यंत कठिन है।[२७] मुने! पुण्यक्षीण होने पर स्वर्ग से नीचे गिरने वालों की चेतना लुप्त हो जाती है। रजोगुण के प्रभाव से उनकी बुद्धि दूषित हो जाती है। पतन के पहले उनके गले की मालायें कुम्हला जाती हैं, अतएव भावी पतन के भय से उनका हृदय कम्पित हो जाता है महामुने! ब्रह्मलोक पर्यन्त जितने लोक हैं, उन सबमें ये भयंकर दोष देखे जाते हैं। किन्तु उपर्युक्त विभिन्न लोकों से भ्रष्ट हुये जीवों में एक विशेष गुण यह देखा जाता है कि पतन के बावजूद वे अपने शुभ कर्मों के संस्कारों से मनुष्य योनि में ही जन्म ग्रहण करते हैं। महात्मन्! वे स्वर्ग से भ्रष्ट हुए जीव अपने बचे-खुचे पुण्य के कारण मानव सुखों के साधनों से सम्पन्न होकर ही जन्म ग्रहण करते हैं। किन्तु यदि मनुष्य योनि को प्राप्त कर वह मानव शुभ कर्मों में प्रवृत्त नहीं होता तो अवश्य ही अधमयोनि में जन्म ग्रहण करता है। मुनि श्रेष्ठ! मनुष्य जो भी इस लोक में कर्म करता है, उसका फल परलोक में भोगता है। यह भूलोक कर्मभूमि है तथा स्वर्गलोक फलभूमि है।[२८]

दोष रहित विष्णुलोक की महिमा :

तब महर्षि मुद्गल ने कहा—'देवदूत! तुमने अभी-अभी स्वर्ग के बड़े-बड़े दोषों का उल्लेख किया है, क्या कोई ऐसा लोक नहीं हैं जो दोष रहित हो? तब देवदूत ने कहा—ब्रह्मन्! ब्रह्माजी के लोक के ऊपर भगवान विष्णु का परम लोक (बैकुण्ठ लोक) है। यह परमधाम शुद्ध सनातन तक ज्योतिर्मय लोक हैं। इस लोक का नाम परमब्रह्म भी है। उस विष्णुलोक में विषय भोगों में आसक्त जीव, दम्भी, लोभी महाक्रोधी, मोहमाया से आच्छन्न तथा द्रोही व्यक्तियों की वहां पहुँच नहीं हैं। जो महापुरुष सांसारिक सम्बन्धों के प्रति निर्मम, आसक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहित, अहंकार रहित, सुख-दुःख आदि द्रन्द्वों से परे, तथा जितेन्द्रिय हैं, ध्यान योग में सदा तत्पर रहने वाले हैं वे उस परमब्रह्म के लोक को प्राप्त होते हैं। महामुने ! आपने जो मुझसे जो पूछा है, वह मैंने सब कुछ बतला दिया है। अब आप मुझ पर दया कीजिए और स्वर्गलोक के लिए शीघ्रता कीजिए।

तब भगवान् व्यास ने पुनः महाराज युधिष्ठिर से कहा-राजन्। देवदूत की बात सुनकर महर्षि मुद्गल कुछ क्षण विचार करते रह गये फिर उन्होंने कहा-महाभाग देवदूत! आपको नमस्कार है। तात् तुम सुखपूर्वक लौट जाओ। बड़े-बड़े दोषों वाले स्वर्गलोक के सुख से मुझे कुछ भी मतलब नहीं है। ओह! स्वर्ग के दिव्य सुख को भोगने के बाद जब स्वर्गवासी व्यक्ति का वहाँ से पतन होता है, तब उसे कैसा महान दुःख और अनुताप होता है तथा वह देवता से पुनः मनुष्य बन जाता है अतएव मेरे हृदय में स्वर्ग की इच्छा नहीं है। अब तो मैं केवल उसी मार्ग का अनुसंधान करूंगा जहां न तो शोक है, न पीड़ा है, न पतन का डर है। महामुनि मुद्गल ने इस प्रकार कहकर देवदूत को विसर्जित कर दिया। पुनः शिलोञ्छवृत्ति का पालन करते हुए वे धर्मात्मा ऋषि और अधिक शम-दम के पालन में जुट गये। समत्वबुद्धि का आश्रय लेकर वे महात्मा निन्दा और स्तुति में समान हो गये। उनकी दृष्टि में सोने, पत्थर और मिट्टी के ढेले में कोई अन्तर नहीं रहा। वे महामुनि नित्य ज्ञानयोग का आश्रय लेकर भगवत्-ध्यान में लीन रहने लगे। ध्यान योग के निरन्तर अभ्यास से उन महर्षि ने परम वैराग्य का बल पाकर तथा उत्तम बुद्धि का आश्रय लेकर उन्होंने मोक्षरूपा परमसिद्धि प्राप्त कर ली। इसीलिए महाराज। आपको भी शोक का पूर्ण त्याग कर देना चाहिए। विशाल साम्राज्य से परिभ्रष्ट किये जाने पर भी तुम अपनी तपस्या के बल से सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को प्राप्त कर लोगे। राजन्। सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख-यह क्रम मनुष्य के जीवन में अनवरत चलता रहता है। जैसे चक्के की नेमि के अरे ऊपर नीचे होते रहते हैं, उसी प्रकार सुख-दुःख पर्याय से मनुष्य को प्राप्त होते हैं।[२९]

ब्राह्मण की महिमा :

एक बार महाराज कुन्तीनन्दन ने भगवान देवकी नन्दन से प्रश्न किया-प्रभो! ब्राह्मण की पूजा करने से क्या फल मिलता है? आप मुझसे ब्राह्मणों के माहात्म्य का वर्णन कीजिए तब भगवान वासुदेव ने कहा-कुरुकुलश्रेष्ठ! एक दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मणों के विषय में प्रद्युम्न ने मुझसे प्रश्न किया–'मधुसूदन! ब्राह्मणों की पूजा का क्या फल है? इहलोक और परमलोक में वे क्यों पूज्य हैं? उनकी महिमा ईश्वरतुल्य क्यों मानी जाती है? तात् इस विषय में मेरे मन में सन्देह उठ खड़ा हुआ है, कृपा कर आप उसका निवारण करें । तब मैंने प्रद्युम्न से कहा–पुत्र! ब्राह्मणपूजा विषयक जो रहस्य हैं, मैं उसे स्पष्ट करता हूँ, तुम ध्यान से सुनो–चन्द्र देव इन ब्राह्मणों के राजा हैं (सोमोऽस्माकानां ब्राह्मणानां राजा) अतएव ये ब्राह्मण सुख-दुःख देने में समर्थ हैं। ब्राह्मणों में शान्तिभाव की प्रधानता होती है, इस विषय में मुझे कोई सन्देह नहीं है। ब्राह्मणों की पूजा से सदा आयु, कीर्ति और बल की प्राप्ति होती है सम्पूर्ण लोक और लोकेश्वर ब्राह्मणों के पूजक हैं। वत्स! धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के लिए, यश लक्ष्मी तथा आरोग्य की प्राप्ति के लिए एवं देवताओं तथा पितरों की पूजा के समय ब्राह्मणों को पूर्ण संतुष्ट करना चाहिए। ब्राह्मण इहलोक तथा परलोक दोनों स्थानों में पूज्य हैं, महान हैं। वे क्रोध में भरकर सम्पूर्ण लोकों को भस्म कर सकते हैं। ब्राह्मण चाहें तो अपनी शक्ति से दूसरे-दूसरे लोकों और लोकेश्वरों की सृष्टि कर सकते हैं। अतएव तेजस्वी पुरुष ब्राह्मणों के इस महत्त्व को जानकर भी ब्राह्मणों के प्रति सद्वर्ताव क्यों न करेंगे? वत्स! पूर्व समय की बात है, मेरे घर में एक हरितपिङ्गल वर्ण के महात्मा ने निवास किया था। वे चिथड़े पहनते थे और बिल्बदण्ड हाथ में रखते थे। उनकी दाढ़ी-मूछें बढ़ी हुई थीं और उनका शरीर अत्यन्त कृश था। यथार्थ में वे महर्षि दुर्वासा थे जो अपने स्वरूप को गुप्त रखे हुए थे। वे निम्न गाथा को गाकर द्वारिकापुरी के चौराहों और सभागृहों में घोषणा करते थे कि कौन व्यक्ति मुझ दुर्वासा मुनि को अपने निवास में सत्कारपूर्वक ठहरा सकता है? यदि मेरा थोड़ा भी अपकार हो जाय तो मैं सम्पूर्ण प्राणियों पर अत्यन्त कुपित हो उठता हूँ। मेरी इस शर्त को सुनकर भला कौन मुझे निवास देने की हिम्मत करेगा? जो मुझे अपने घर में ठहराये, वह मुझे क्रोधित न करे। रौक्मिणेय! जब कोई पुरवासी उन्हें ठहराने की हिम्मत न जुटा सका तो मैंने उन्हें अपने घर में आवास दिया। वे दुर्वासा मुनि कभी तो हजारों व्यक्तियों का भोजन अकेले ही कर जाते थे और कभी अत्यल्प भोजन करते थे। भोजन कर वे निकल जाते और फिर उस दिन लौटकर नहीं आते थे। वे सहसा जोर-जोर से हँस पड़ते और कभी उच्च स्वर में विलाप करने लगते। एक दिन उन्होंने अपने निवास स्थान में जाकर शय्याओं, चादरों और वस्त्रलंकारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अलंकृत कन्याओं को जलाकर भस्म कर दिया और एक ओर चल दिया। महातपस्वी उस मुनि ने एक दिन मुझसे कहा–'श्रीकृष्ण! मुझे आज खीर खाने की इच्छा है, तुम शीघ्र ले आओ। मैं उनके चित्त को समझता था अतएव शीघ्र ही पहले से ही तैयार गरम-गरम खीर का मैंने उन्हें पारस करवाया। उन्होंने शीघ्र ही खीर खा ली, और मुझे आज्ञा दी इस बची हुई खीर से तुम अपने सम्पूर्ण अंगों में लेप करो। मैंने बिना सोचे-विचारे उस खीर को अपने सारे अंगों में पोत लिया। रुक्मिणीनन्दन! इतने में उन्होंने तुम्हारी माता को सम्मुख पाया और उन महामुनि ने बिना किसी संकोच के वह खीर उनके शरीर में पोत दी। खीर लिपटे हुए वस्त्रों वाली तुम्हारी माता को उन महामुनि ने शीघ्र ही रथ में जोत दिया और उसी रथ पर बैठकर बाहर निकले। वे महामुनीषी ऋषि दुर्वासा अग्नितुल्य प्रज्ज्वलित हो रहे थे। उन्होंने रथ में जुते हुए घोड़ों के समान तुम्हारी माता पर चाबुक बरसाना प्रारंभ किया। यह सब मैं अपनी आँखों से देख रहा था। उस समय मेरे हृदय में ईर्ष्याजनित तनिक भी रोष उत्पन्न नहीं हुआ। फिर वे दुर्वासा मुनि महान् राजमार्ग से बाहर निकल पड़े। वृष्टिवंशियों को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। साथ ही वे कुपित होकर परस्पर एक-दूसरे को सम्बोधित कर कहने लगे। भाइयो! अच्छा तो यही होता कि इस संसार में केवल ब्राह्मण ही पैदा होते। भला दूसरा कोई वर्ण यह अकार्य करके जीवित रह सकता था? कहा जाता है कि जहरीले सांप का विष बड़ा तीक्ष्ण होता है किन्तु ब्राह्मण उससे भी तीक्ष्ण होता है जो व्यक्ति ब्राह्मण रूपी सर्प से डसा गया हो उसके लिए इस संसार में कोई चिकित्सक नहीं हैं।[३०] राजपथ पर चलते हुए रथ में जुती हुई कोमलाङ्गी रूक्मिणी लड़खड़ा कर गिर पड़ी। इस बात को महर्षि सहन न कर सके। उन्होंने चाबुक का प्रहार करना प्रारंभ कर दिया। जब महारानी रूक्मिणी बार-बार लड़खड़ाने लगीं, तब महर्षि और अधिक कुपित हो उठे। वे रथ से कूदकर दक्षिण दिशा की ओर पैदल ही भागने लगे। वत्स! इस प्रकार भागते हुये महर्षि के पीछे मैं भी भाग चला। मेरे शरीर में खीर लिपटी हुई थी। उनके पास पहुंच कर मैंने हाथ जोड़कर कहा–'भगवन् प्रसन्न होइये।' तब मेरी ओर देखकर उन महातेजस्वी ब्राह्मण ने कहा–"महावीर श्रीकृष्ण! तुमने सम्पूर्ण रूप से क्रोध को जीत लिया है। मेरी सेवा में मैंने तुम्हारा तनिक भी अपराध नहीं देखा है। गोविन्द! मैं तुम पर प्रसन्न हूं, तुम मुझसे इच्छानुसार वर माँगों। तात! मेरे प्रसन्न होने का जो भावी फल है उसे सुनो–जब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवताओं और मनुष्यों का अन्न में प्रेम रहेगा, तब तक उनका वही भाव या आकर्षण तुम्हारे प्रति होगा। तब तक तीनों लोकों में तुम्हारी पुण्य कीर्ति रहेगी, तब तक सम्पूर्ण लोकों में तुम्हारा वैशिष्ट्य बना रहेगा। जनार्दन! तुम सम्पूर्ण प्रजा के परमप्रिय रहोगे। मधुसूदन! मेरे द्वारा तुम्हारी जो-जो वस्तु तोड़ी गई है जलाई या नष्ट की गई है, वह सब तुम्हें उससे भी अच्छी अवस्था में प्राप्त होगी। माधव अपने शरीर में जो तुमने खीर लपेटी है, इससे तुम्हारा सम्पूर्ण अक्षय होगा, उसमें मृत्यु का भय नहीं रहेगा। वत्स! किन्तु यह खीर तुमने अपने पैर के तलवे में नहीं लगाई है, तुमने ऐसा क्यों किया? तुम्हारा यह कार्य मुझे अच्छा नहीं लगा। महातेजस्वी दुर्वासा मुनि के इस प्रकार कहने पर मैंने अपने को अद्भुत कान्ति से युक्त पाया। फिर उन्होंने तुम्हारी माता रुक्मिणी से कहा–'शोभने! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। संसार की सम्पूर्ण स्त्रियों से बढ़कर तुम्हें यश तथा कीर्ति की प्राप्ति होगी। पतिव्रते! तुम्हें कभी भी बुढ़ापा, रोग अथवा कान्तिहीनता से अक्रान्त होना नहीं पड़ेगा। तुम्हारे शरीर में सदैव पुण्यगन्ध निकलती रहेगी और तुम अपने प्रियतम कृष्ण की सदा सेवा करती रहोगी। प्रद्युम्न! तुम्हारी माता से ऐसा कहकर प्रज्ज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी वे महर्षि उसी स्थान पर अन्तर्ध्यान हो गये। उनके चले जाने पर मैंने मन ही मन निश्चय किया–आज से कोई ब्राह्मण मुझसे जो कुछ भी माँगेगा, मैं प्राणार्पण से उसे पूरा करूंगा। वत्स! प्रिय वाणी और दान के द्वारा तुम भी सदा ब्राह्मणों की सेवा में जुट जाओ। महाभाग । इस संसार में यदि ब्राह्मण प्रसन्न हों तो, कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

महामुनि विश्वामित्र

भगवान विश्वामित्र का तपोबल :

सम्पूर्ण संसार के स्वामी भगवान राम के गुरु महर्षि विश्वामित्र घोर तपस्या में लीन थे। उन्होंने अपनी तपस्या से देवेश्वर इन्द्र को अत्यधिक सन्तप्त कर दिया। 'ये मुझे अपनी उग्र तपस्या से अवश्य ही इन्द्रपद से च्युत कर देंगे।' इस प्रकार अत्यन्त भयभीत होकर देवराज ने मेनका से कहा–'कल्याणी! अप्सराओं के सम्पूर्ण गुण तुममें विद्यमान हैं अतएव मैं तुम पर एक बहुत बड़े कार्य का उत्तरदायित्व सौंपता हूँ। सुन्दरी! सूर्य के समान तेजस्वी महातपस्वी विश्वामित्र इस समय अपनी उग्र तपस्या से मेरे हृदय को कल्पित कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे भय है कि वे अपनी घोर तपस्या से मुझे इन्द्रपद से गिरा देंगे। अतएव तुम जाकर उन महामुनि को अपने सौन्दर्य जाल में बांधकर उन्हें तपस्या से विरत कर मेरे हृदय को भयमुक्त करके मेरे देवराज पद को निर्विघ्न कर दो। 'तब सुन्दरी मेनका ने कहा–महाभाग! भगवान् विश्वामित्र महातेजस्वी और अमित पराक्रमी हैं। वे महान क्रोधी भी हैं। जिनके तप, तेज और क्रोध से आप भी उद्विग्न रहते हैं, भला मैं उनके सामने कौन सी हस्ती हूँ? जिन्होंने भगवान वशिष्ठ को अपने प्रिय पुत्रों से वियुक्त कर दिया। क्षत्रियकुल में जन्म लेकर भी जिन्होंने अपनी तपस्या के बल से अपने को ब्राह्मण बना लिया। अपने स्थान की सुविधा के लिए जिन महर्षि गाधिनन्दन ने अत्यन्त दुर्गम, पवित्र और अगाध जल वाली नदी का निर्माण किया जिसे सम्पूर्ण जगत् कौशिकी (कोसी) के रूप में जानता है। जो कौशिक महानद आज भी अपने तटवासी जनों के हृदय को प्रकम्पित किये रहता है। स्वपत्नीरक्षारूप उपकार से प्रसन्न होकर जिन्होंने स्वयं पुरोहित बनकर मतंग मुनि का यज्ञ कराया था, जिस यज्ञ में आप भी सोमपान के लिए पधारे थे। जिन भगवान् विश्वामित्र ने देवताओं पर कुपित होकर नूतन सृष्टि प्रारंभ की थी और गुरुशापग्रस्त त्रिशंक को भी शरण प्रदान की थी, ऐसे अद्भुत कर्म वाले वे महर्षि गाधितनय मुझे क्रोधित होकर भस्म न कर दें इसका भी आप कोई उपाय अवश्य करें। वे महामुनि विश्वामित्र अपने तेज से सम्पूर्ण लोकों को भस्म कर सकते हैं, अपने चरण प्रहार से पृथ्वी को प्रकम्पित कर सकते हैं, महापर्वत सुमेरु को भी लघु बना सकते हैं और सम्पूर्ण दिशाओं में भी उलटफेर कर सकते हैं–

तेजसा निर्दहेल्लोकान् कम्पयेद धरणीं पदा।
संक्षिपेच्च महामेरुं तूर्णमावर्तयेद दिशः॥ महा० आदि पर्व, अ० ६२/३६

ऐसे प्रज्वलित अग्नि के सामने तेजस्वी, महान तपस्वी तथा जितेन्द्रिय मुनि का स्पर्श मुझ जैसी नारी कैसी कर सकती है? देवेश! अग्नि जिनका प्रज्ज्वलित मुख है, सूर्य और चन्द्रमा जिनकी आँखों के तारे हैं, महाकाल जिनकी जिह्वा है, ऐसे महर्षि का स्पर्श मैं एक सामान्य स्त्री कैसे कर सकती हूँ?

हुताशनमुखं दीप्तं सूर्यचन्द्राक्षितारकम्।
कालजिह्वं सुरश्रेष्ठ कथमस्मद्विधा स्पृशेत्॥

–महा०, आदिपर्व, अ० ६२/३८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमराज, चन्द्रमा, महर्षिगण, साध्यगण, विश्वदेव तथा सम्पूर्ण साठ लाख बालखिल्य ऋषि–ये सभी जिनकी तपस्या के प्रभाव से उद्विग्न रहते हैं, उन महान् ऋषि विश्वामित्र का स्पर्श मुझ जैसी अबला कैसे कर सकती है? अतएव सुरेश! उनके सम्मुख जाने से पहले आप मेरी रक्षा का प्रबन्ध अवश्य करें।

भगवान कौशिक की अपूर्व निष्ठा और त्याग :

एक समय की बात है। महर्षि विश्वामित्र सुखपूर्वक अपने आश्रम में निवास कर रहे थे। अनके प्रिय शिष्य गालव मुनि पूर्ण निष्ठा से अपने गुरु की सेवा में संलग्न थे। उसी समय धर्मराज यम भगवान वशिष्ठ मुनि का वेश धारण कर महामुनि गाधितनय की परीक्षा लेने के व्याज से उनके आश्रम पर पहुँचे। उस समय वे भोजन की इच्छा से आये थे। वे महात्मा धर्मराज भूख से व्याकुल हो रहे थे। महान् अतिथि भगवान् वशिष्ठ को अपने आश्रम में आया देखकर महर्षि विश्वामित्र बड़े आनन्दित हुये। बड़े उतावली से महामुनि ने विशिष्ठ अतिथि के सत्कार के लिए उत्तम अन्न परोसने की इच्छा से चरूपाक बनाना आरंभ किया। किन्तु अतिथि देवता इतनी देर तक प्रतीक्षा न कर सके। भगवान धर्म ने तब तक अन्य तपस्वियों द्वारा परोसा गया भोजन पा लिया। कुछ समय पश्चात् कौशिक मुनि भी गरम-गरम खीर लेकर अतिथि देवता की सेवा में उपस्थित हुये। उस समय भगवान धर्म ने 'मैंने भोजन पा लिया है, तुम रहने दो, ऐसा कहकर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। किन्तु महामुनि कौशिक वहाँ पर उसी अवस्था में खड़े रह गये। उन्होंने दोनों हाथों से भोजन पात्र को अपने सिर पर रख लिया और वे तपस्वी ऋषि केवल वायु का आहार करते हुए आश्रम के समीप ही ठूंठें वृक्ष की भाँति निश्चेष्ट खड़े रहे। उस समय भगवान् विश्वामित्र की सेवा में उनके प्रिय शिष्य गालवमुनि जुटे हुये थे। महामुनि कौशिक इसी रूप में निश्चेष्ट सौ वर्षो तक खड़े रहे। तब पुनः धर्मराज वशिष्ठ मुनि का वेश धारण कर विश्वामित्र के आश्रम में भोजन की इच्छा से पहुँचे। धर्मराज ने देखा कि महात्मा विश्वामित्र केवल वायु पीकर, सौ वर्षों से, भोजन पात्र को सिर पर उठाये हुये उनकी प्रतीक्षा में निश्चेष्ट खड़े हैं। तब धर्म ने अत्यन्त प्रसन्न हृदय से उस भोजन को ग्रहण कर लिया। वह भोजन तुरन्त तैयार की गई रसोई की भाँति गरम था। भोजन करके धर्मराज ने कहा–ब्रह्मर्षे! मैं तुम पर अति प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारी कीर्ति दिगदिगन्त में व्याप्त होगी। ऐसा कह कर धर्मराज चले गये और महर्षि भी अपने दैनन्दिन कार्यों में जुट गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् विश्वामित्र की कठिन तपस्या :

उशिकवंशी राजा गाधि महान् योगी और महातपस्वी थे। उन्होंने अपने पुत्र विश्वामित्र को राज्य पर अभिषिक्त कर अपने शरीर को त्याग देने का विचार किया। तब प्रजा ने उनसे प्रार्थना की–महाराज! आप राज्य में स्थित रहकर हमारी रक्षा करते रहें। तब महाराज गाधि ने प्रजा को सान्तवना देते हुए कहा– आप लोग निश्ंचित रहें। मेरा पुत्र सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा करने वाला होगा। ऐसा कहकर महाराज गाधि ने अपने पुत्र विश्वामित्र का अभिषेक कर योगाग्नि से अपने शरीर को भस्म कर स्वर्ग को प्राप्त किया। विश्वामित्र प्रजा का पालन करने लगे। एक दिन उन्होंने सुना कि उनकी प्रजा को राक्षस पीड़ित कर रहे हैं। तब चतुरंगिनी सेना सजाकर वे नगर से बाहर निकल पड़े और मार्ग में वशिष्ठ मुनि के आश्रम पर जा पहुँचे। उनके सैनिकों ने वहाँ पहुँचकर बहुत से अन्याय और अत्याचार किये जिससे भगवान वशिष्ठ कुपित हो गये। उन्होंने नन्दिनी गौ को आदेश दिया कि वह शवर सैनिकों की सृष्टि कर विश्वामित्र की सेना पर आक्रमण करें। उन भयानक भीलों ने विश्वामित्र की सम्पूर्ण सेना को मार गिराया। जब विश्वामित्र ने यह सुना कि उनकी सेना वशिष्ठ मुनि के ब्रह्मतेज से परास्त हो चुकी है तो उन्होंने राज्य का त्याग कर ब्रह्मतेज की प्राप्ति के लिए तपस्या में अपनी को निरत कर दिया। सरस्वती के तट पर घोर तपस्या करते हुए महात्मा विश्वामित्र ने नियमों और उपवासों से अपने शरीर को सुखा डाला। वे कभी जल पीकर, कभी वायु पीकर और कभी पत्तों को खाकर कठोर तप में लीन थे। देवताओं ने अनेक बार उनकी तपस्या में विघ्न डाला किन्तु तप से किसी प्रकार विचलित न होते हुए उन्होंने अपने धैर्य से सम्पूर्ण विघ्नों को नष्ट कर दिया। निरन्तर सैकड़ों वर्ष तपस्या में लीन रहते हुए विश्वामित्र का तेज सूर्य की भाँति प्रदीप्त हो उठा। महान् तप से विश्वामित्र को संयुक्त देखकर लोकपितामह ब्रह्मा ने उन्हें वरदान देने का निश्चय किया। वरदाता ब्रह्माजी को प्रसन्न जानकर महात्मा गाधिनन्दन ने कहा–'प्रभो! मैं ब्राह्मण हो जाऊँ'। तब सृष्टिनायक ब्रह्माजी ने 'एवमस्तु' कहकर उनकी अभिलाषा पूर्ण की। अपनी उग्र तपस्या से ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर महामुनि कौशिक सफल काम होकर लोक संग्रह की दृष्टि से सम्पूर्ण पृथ्वी में विचरण करने लगे। उनकी कीर्ति दिगदिगन्त में फैल रही थी।

भगवान विश्वामित्र का आपद्धर्म और धैर्य :

त्रेतायुग और द्वापरयुग के सन्धिकाल की कथा है। दैववश बारह वर्षों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक अनावृष्टि का क्रम चलता रहा। त्रेतायुग बीत चुका था और द्वापर का प्रारंभ होने ही वाला था। प्रजा की बाढ़ सी आ गई थी और खाने को अन्न का पूर्ण अभाव था। ऐसा मालूम होता था। मानो प्रलयकाल आ गया है इन्द्र ने वर्षा बन्द कर दी थी। बृहस्पति वक्री हो चुके थे और चन्द्रमा विकृत हो कर दक्षिण मार्ग पर गमन कर चुके थे। बादलों की तो बात ही क्या? ओस भी नहीं गिरती थी। बड़ी-बड़ी नदियों की धार भी अतिक्षीण हो चुकी थी, छोटी नदियां तो लुप्त हो गई थी। नदियां, सरोवर, कूप और झरने सब सूखकर श्रीहीन हो चुके थे। जलाभाव के कारण प्याऊ बन्द हो चुके थे, यज्ञ और स्वाध्याय का लोप हो चुका, स्वाहा स्वधा, वपट्कार की ध्वनि का अभाव हो चुका था। खेती और गोपालन का कार्य पूर्णरूप ही नष्ट हो चुका था। बाजार और दुकानें बन्द हो चुकी थी। यज्ञों का आयोजन समाप्त हो चुका था और महोत्सव बन्द हो चुके थे। चारों ओर हड्डियों के ढेर लगे हुए थे। प्राणियों का आर्तनाद चारों ओर सुनाई पड़ता था। सभी जीव भूख प्यास से व्याकुल थे। सभी नगर प्रायः उजाड़ हो चुके थे और गांव घर जल गये थे। चोरों द्वारा, शस्त्रधारियों, राजाओं द्वारा, क्षुधातुर मनुष्यों द्वारा नाना प्रकार की बाधा उपस्थित होने से तथा परस्पर अविश्वास और भय के कारण भी नगर और गाँव उजड़ गये थे। देवालय तथा मठ-मन्दिर सूने हो गये थे। बालक और बूढ़े मर चुके थे। गाय, बकरी, भेड़ और भैंसें समाप्त हो चुकी थीं। भूख-प्यास से व्याकुल प्राणी एक दूसरे पर प्रहार करते थे। ब्राह्मण नष्ट हो चुके थे। सम्पूर्ण औषधियां अन्न एवं फल के वृक्ष भी नष्ट हो चुके थे। एक मात्र चारों ओर क्षुधातुर प्रजाओं का क्रन्दन ही सुनाई पड़ता था। ऐसे भयंकर समय में चारों ओर धर्म का विनाश हो चुका था, क्षुधातुर प्राणी एक दूसरे का भक्षण करने लगे।

कैसा भयानक समय था वह। अग्निहोत्र के उपासक ऋषिगण नियमों और व्रतों का त्यागकर, आश्रम का त्यागकर भूख से व्याकुल होकर इधर-उधर दौड़ रहे थे। उसी समय भगवान विश्वामित्र भी क्षुधा व्याकुल होकर अपने आश्रम का त्यागकर इधर-उधर दौड़ रहे थे। उन्होंने अपनी पत्नी और पुत्रों को किसी जनसमूह में छोड़ दिया था और स्वयं आश्रम और अग्निहोत्र का त्याग कर, भक्ष्य और अभक्ष्य का विवेक न करते हुए भटक रहे थे। वे घूमते-घूमते एक ऐसे वन में पहुंच गये जहाँ हिंसक प्राणियों का वध करने वाले चाण्डाल जातीय मनुष्य निवास करते थे। उस बस्ती में टूटे-फूटे घड़ों का ढेर लगा हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, कुत्तों के चमड़े उतारने के हथियार रखे थे, सूअर और गदहों की हड्डियों के टुकड़ों तथा खोपड़ियां चारों ओर बिखरी पड़ी थीं। उन चाण्डालों की कुटियों और मठों में चारों ओर मुर्दों के कपड़े फैलाए गये थे, उतारे गये फूलों की मालाओं से उनकी कुटियां सजी हुई थीं और सापों के केंचुल शोभा के लिए लटका दिये गये थे। उस पल्ली में स्थान-स्थान पर मुर्गे बोल रहे थे, गदहे रेंक रहे थे और कहीं-कहीं पर वे चाण्डाल आपस में कठोर वचनों का प्रयोग करते हुए कलहरत थे। उस पल्ली में कई देवालय थे जिनमें बैठे हुए उलूक बड़ी भयानक ध्वनि में बोल रहे थे, उनके घरों में लोहे की घंटियाँ लगी हुई थी और चारों ओर कुत्ते बैठे हुए थे। भूख से व्याकुल महान् कौशिक उस चाण्डाल पल्ली में घुस गये और प्रयत्नपूर्वक भोजन ढूंढने लगे। महामुनि कौशिक उस चाण्डाल पल्ली में घर-घर भिक्षा मांगते रहे। किन्तु उन्हें माँस, अन्न, फल या मूल कुछ भी उपलब्ध न हो सका। महात्मा कौशिक भोजन न मिलने से अत्यन्त निराश हो चुके थे। अत्यन्त दुर्बल होने के कारण वे उसी पल्ली में मूर्च्छित होकर गिर पड़े। होश आने पर उन महर्षि ने विचार किया कि मेरा किस प्रकार कल्याण होगा? मैं क्या करूँ कि क्षुधा के कारण मेरी अकाल मृत्यु न हो। इसी समय उन्होंने देखा कि एक चाण्डाल के घर में शस्त्र द्वारा तुरन्त मारे गए कुत्ते की जांघ के ताजे माँस का एक टुकड़ा रखा हुआ था। उन्होंने विचार किया कि इस समय प्राणों की रक्षा के लिए अवश्य ही मुझे उस माँस के टुकड़े को चुरा लेना चाहिये। प्राणधारा के लिए ऐसा आपद्धर्म शास्त्रों में बताया गया है कि पहले मनुष्य को चाहिए कि वह किसी निर्धन व्यक्ति के घर से खाद्यपदार्थ की चोरी करे। यदि उसमें सफल न हो तो उसे अपनी समान हैसियत वाले व्यक्ति के घर से खाने की वस्तु लेनी चाहिए। और यदि वहाँ भी कार्य सिद्ध न हो तो किसी धर्मात्मा पुरुष के घर से खाद्य वस्तु का अपहरण करे। अतएव मैं इस चाण्डाल के घर से अवश्य ही इस माँस के टुकड़े का अपहरण करूंगा। इस समय आपद्धर्म के अनुसार मुझे इस स्तैन्यकार्य में कोई दोष नहीं दिखाई नहीं दिखाई देना। ऐसा निश्चय कर वे महामुनि विश्वामित्र उस चाण्डाल पल्ली में ही सो गये। जब अर्धरात्रि का प्रगाड़ अन्धकार चारों ओर फैल गया और चाण्डाल परिवार सो गया तब भगवान् कुशिकनन्दन चुपचाप उस चाण्डाल के घर में प्रवेश कर गये। यद्यपि घर का मुखिया चाण्डाल सोया हुआ जान पड़ता था, किन्तु यथार्थ में वह जाग रहा था। उसका रूप भयानक था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वह रुखे स्वभाव का था। मुनि को प्रवेश किये हुये देखकर उसने तीव्र स्वर में कहा–'अरे! इस समय तो पूरा गाँव सोया हुआ है, फिर यह कौन व्यक्ति कुत्ते की जांघ लेने की चेष्टा कर रहा है? मैं सोया नहीं, जाग रहा हूँ। अवश्य ही तेरी मृत्यु निकट है।' चाण्डाल की बात सुनकर विश्वामित्र अत्यन्त भयभीत हो गये। उनका हृदय इस निकृष्ट कार्य से वैसे ही उद्विग्न था, वे लज्जा से व्याकुल होकर उस चाण्डाल से बोले–'आयुष्मन्! मैं ऋषि विश्वामित्र हूँ, भूख से पीड़ित होकर यहाँ आया हूँ। उत्तम बुद्धि वाले महाभाग! यदि तुम थोड़ा भी धर्म का ज्ञान रखते हो, तो मेरा वध न करो। पवित्रात्मा महर्षि कौशिक के इन दीन वचनों को सुनकर वह चाण्डाल हड़बड़ा कर उठ बैठा और उनके पास पहुँच गया। महर्षि के प्रति अत्याधिक आदर होने के कारण उनके आंसू छलछला गये और उनके सामने हाथ जोड़कर उस भयानक अर्धरात्रि में उस चाण्डाल ने कहा–'महामुने! आपकी यह कैसी चेष्टा है? आपके मन में क्या है?' तब विश्वामित्र ने उस मातंग को सान्त्वना देते हुए कहा–'भूख से मेरे प्राण निकल रहे हैं अतएव मैं इस कुत्ते की जांघ का अपहरण करूँगा। क्षुधा से व्याकुल होकर मैंने इस पाप कर्म को करने का निश्चय किया है। क्योंकि बुभुक्षित को लज्जा कहाँ? भूख आज मुझे धर्मपथ से विचलित कर रही है। अतएव मैं अवश्य इस कुत्ते के माँस का अपहरण करूंगा। मेरे प्राण अब निकलना ही चाहते हैं, भूख ने मेरी श्रवण शक्ति को नष्ट कर दिया है, दुर्बलता के कारण मेरी चेतना लुप्त हो रही है। इस समय अब मुझे भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार नहीं रह गया है यह जानते हुए भी कि यह अधर्म है, मैं कुत्ते की इस जांघ का अपहरण करूंगा। तुम्हारे गांव में घर-घर याचना करके भी जब मैं भिक्षा प्राप्त नहीं कर सका, तब मेरी बुद्धि इस पाप में प्रवृत हुई है, मैं अवश्य ही इस माँस का अपहरण करूंगा। अग्निदेव देवताओं के मुख हैं, पुरोहित हैं, पवित्र हवि को ग्रहण करने वाले और महान तेजस्वी हैं। फिर भी महर्षि भृगु के शापवश वे जैसे सर्वभक्षी हो गये, उसी प्रकार मैं ब्राह्मण होकर भी सर्वभक्षी बनूंगा, फिर भी धर्मतः तुम मुझे ब्राह्मण ही समझो। तब चाण्डाल ने कहा–भगवन्! मेरी बात आप ध्यानपूर्वक सुनिये। उसे सुनकर आप वैसा आचरण करें जिससे आपके धर्म की हानि न हो। महर्षे! पण्डितों का कथन है कि कुत्ता शृगाल से भी निकृष्ट होता है और कुत्ते के शरीर में भी जांघ का भाग सबसे अपवित्र माना जाता है महर्षे। आपने जो निश्चय किया है वह धर्मशास्त्रों द्वारा निन्दित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। चाण्डाल के धन का अपहरण अत्यन्त निन्दित कार्य है, वह भी अभक्ष्य पदार्थ? महामुने! यह अच्छा होगा कि आप प्राणधारण का कोई दूसरा उपाय खोजें। मांस के लोभ से आप अपने धर्म का विनाश न करें। आप धर्मशास्त्र के तत्त्वों को जानते हैं अतएव आपको धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए।' चाण्डाल के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर क्षुधाव्याकुल भगवान् विश्वामित्र ने इस प्रकार उत्तर दिया–निराहार रहकर भटकते हुए मेरा बहुत अधिक समय व्यतीत हो चुका है। प्राण धारण के लिए मेरे पास अब कोई उपाय नहीं है। धर्म का यह सार है कि जिस किसी भी उपाय से अपने प्राणों की रक्षा करें, फिर समर्थ होने पर वह धर्म का आचरण कर सकता है। क्षत्रियों का धर्म प्रजा का पालन है, ब्राह्मणों का धर्म अग्निहोत्र है अर्थात् जो अग्नि का सर्वभक्षित्व रूप है। वही ब्राह्मण धर्म है। मेरा बल वेदरूपी अग्नि है अतएव मैं क्षुधा की शान्ति के लिए सब कुछ भक्षण करूंगा। मनुष्य को इस संसार में वही करना चाहिए जिससे प्राणों की रक्षा हो, जीवन मृत्यु से श्रेष्ठ है। मनुष्य जीवन धारण कर श्रेय और धर्म का भागी हो सकता है। अतएव जीवन धारण के लिए मैं अभक्ष्य का भी भक्षण करूंगा, आप मुझे इसकी अनुमति प्रदान करें। जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट कर देता है उसी प्रकार मैं अपनी तपस्या और विद्या से शक्ति प्राप्त कर अपने अशुभ कर्मों को नष्ट कर दूँगा। चाण्डाल ने पुनः कहा–ब्रह्मन्! इस अभक्ष्य का भक्षण करके न तो आप दीर्घायु प्राप्त कर सकते हैं और न यह प्राण शक्ति प्रदान करने वाला है अथवा तृप्तिदायक ही है। अतएव मेरी प्रार्थना है कि आप अपनी बुद्धि इस माँस के भक्षण में न लगावें, आप कहीं दूसरी भिक्षा मांग लें, ब्राह्मणों के लिए यह अभक्ष्य है। तब भगवान कौशिक ने कहा–'श्वपाक! सम्पूर्ण देश अकालग्रस्त है। मुझे कहीं से कोई दूसरा माँस भी नहीं मिल सकता। मेरे पास धन भी नहीं है कि किसी से भोज्यवस्तु प्राप्त कर सकूं। भूख से अब मेरे प्राण निकलने ही वाले हैं, मैं इस समय गतिहीन और निराश हूँ। मेरी दृष्टि तो इस श्वमाँस में ही छहों रसों का दर्शन कर रही है।' 'महात्मन्! आपत्काल में पांच प्रकार के पांचनख वाले प्राणी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए भक्ष्य बताये गये हैं। कुत्ते का माँस सर्वथा और सर्वदा अभक्ष्य है। अतएव प्रभो! आप अपना मन इस अभक्ष्य भक्षण में न लगावें।' विश्वामित्र ने कहा–'भगवान अगस्त्य ने भूख से व्याकुल होकर वातापि दानव का भक्षण कर लिया, अतएव मुझे भी प्राण धारण के लिए श्वमाँस खाने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म की हानि नहीं है।' श्वपच ने कहा–'प्रभो! मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप दूसरी भिक्षा के लिए प्रयत्न करें, यह अनुचित है। आपकी इच्छा है तो आप इस श्वजाघनी को ले जाइये, किन्तु इसका भक्षण कदापि न करें।' 'सज्जन पुरुषों का आचरण धर्म के लिए प्रमाण है, मैं उन्हीं के आचरण का अनुकरण कर रहा हूँ। अतएव इस समय श्वमाँस ही मेरे लिए परम पवित्र भक्ष्य है।' विश्वामित्र ने उत्तर दिया। चाण्डाल ने पुनः निवेदन किया। 'भगवन् यदि कोई सज्जन पुरुष भी कभी अधर्म का आचरण कर बैठे तो वह धर्म नहीं हो जाता। अतएव किसी भी अवस्था में अकार्य नहीं करना चाहिए। छलपूर्वक धर्म का पालन अधर्म ही है।' तब महर्षि ने पुनः कहा–'कोई ऋषि कभी भी ऐसा कार्य नहीं कर सकता जो धर्म विरुद्ध अथवा निन्दित हो। कुत्ता और हिरन दोनों पशु होने के कारण समान हैं, अतएव मैं इस कुत्ते के माँस का भक्षण अवश्य करूंगा।' पुनः श्वपच ने निवेदन किया–'भगवन्! अगस्त्य मुनि ने जो वातापि का भक्षण किया। वह धर्म था। वातापि के अत्याचार से व्याकुल ब्राह्मणों की रक्षा के लिए वातापि का भक्षण किया था। धर्म वही है जिसमें लेशमात्र भी पाप न हो। ब्राह्मण सभी वर्णों के गुरु हैं अतएव प्रयत्नपूर्वक उनकी रक्षा होनी चाहिए।' तब महर्षि ने कहा–'अगस्त मुनि ने ब्राह्मणों की रक्षा के लिए वातापि का भक्षण किया, मैं भी मित्र की रक्षा के लिए यह कार्य करूंगा। यह ब्राह्मण का शरीर ही मेरा मित्र है। यह शरीर मेरे लिए अत्यन्त प्रिय और पूज्य है। इस शरीर को धारण करने के लिए मैं यह अकार्य भी करूँगा और इस श्वजाघनी का हरण करूँगा। मुझे इस नृशंस कर्म से तनिक भी भय नहीं है।' तब श्वपच ने पुनः कहा–'स्वामिन। सज्जन पुरुष ऐसी परिस्थिति में प्राणों का त्याग कर देते हैं किन्तु कभी अभक्ष्य भक्षण नहीं करते। वे अपनी सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेते हैं। अतः आप भी उपवास द्वारा ही अपनी मनोकामना की पूर्ति करें।' तब भगवान् कौशिक ने उत्तर दिया–उपवास द्वारा प्राण त्याग देने पर निश्चित रूप से पुण्यकर्मों का विनाश होगा, क्योंकि यह शरीर ही सम्पूर्ण धर्म का आश्रय है 'शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्' प्राण रक्षा के बाद मैं निश्चय ही नाना व्रतों और प्रायश्चितों के द्वारा अपनी आत्मा को पवित्र कर लूंगा। इस समय तो सबसे महत्त्वपूर्ण है प्राणों की रक्षा। अतएव मैं इस अभक्ष्य-भक्षण के लिए पूर्णरूप से कटिबद्ध हूँ। बुद्धिपूर्वक धर्म के मूल तथा के साधन भूत इस शरीर की रक्षा के लिए अभक्ष्य भक्षण धर्म है, उसी प्रंकार मोह एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसक्तिपूर्वक अभक्ष्य भक्षण में पाप है। मुझे पूर्ण तथा दृढ़ विश्वास है कि इस कुत्ते के माँस को खाकर भी मैं तुम्हारी तरह चाण्डाल नहीं बनूंगा। बल्कि तप और व्रतों के द्वारा शीघ्र ही इस दोष का परिमार्जन कर लूँगा।' पुनः श्वपच ने कहा–'भगवान्! मेरे विचार से यह कुत्ते का माँस खाना आपके लिए अत्यन्त अनुचित है। मेरा निश्चित विचार है कि इस पाप से आपको बचना चाहिए। इसीलिए मैं पापी और ब्राह्मणेतर होने पर भी आपको बारम्बार निवृत्त करने की चेष्टा कर रहा हूँ। अवश्य ही ये मेरी अनाधिकार चेष्टा है।' तब महामुनि ने कहा–'मेंढ़कों के लगातार टर्र-टर्र करते रहने पर भी गौएं जलाशय से जल पीती ही हैं, उसी प्रकार तुम्हारे द्वारा निरन्तर रोके जाने पर भी मैं यह अभक्ष्य भक्षण करूंगा ही। तुम्हें धर्मोपदेश का कोई अधिकार नहीं है, अतएव तुम व्यर्थ ही आत्मप्रशंसक न बनो।' तब श्वपच ने कहा–'भगवन्! मैं आपका हितैषी मित्र बनकर यह धर्मानुकूल बात आपसे कह रहा हूँ। मुझे आपकी इस दीनता पर बड़ी दया आ रही है। आप मेरी हितकारिणी बात को अवश्य ग्रहण करें। लोभवश आप कुमार्ग में पग न रखें।' तब महर्षि विश्वामित्र ने उत्तर दिया–'यदि सचमुच में तुम मेरे मित्र हो, यदि यथार्थ में तुम मुझे सुख पहुँचाना चाहते हो, तो तुम इस आपत्ति से मेरा उद्धार करो। मुझे अपने धर्म का सभ्यक ज्ञान है, तुम केवल यह माँस का टुकड़ा मुझे दे दो।' तब चाण्डाल ने पुनः निवेदन किया–'महात्मन्! मैं इस कुत्ते के माँस को आपको नहीं दे सकता और अपनी इस वस्तु को आपके द्वारा हरण की जाती हुई नहीं देख सकता। इसे देने वाला मैं श्वपच और लेने वाले आप ब्राह्मण शिरोमणि दोनों पाप के भागी होंगे और नरक में पड़ेंगे।'

तब महर्षि ने उत्तर दिया–'प्राणरक्षा के लिए आज यह पापकर्म करके भविष्य में प्राणधारण करता हुआ मैं परम पवित्र व्रत और धर्म का अनुष्ठान करूँगा। इस प्रकार तन-मन से पवित्र होकर मैं उत्तम धर्म के फल को प्राप्त करूँगा। अब तुम्हीं बताओ, अभक्ष्य भक्षण कर जीवन की रक्षा करते हुए धर्माचरण करना और उपवास के द्वारा प्राणों का त्याग कर देना–इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है?' पुनः श्वपच ने कहा–'महात्मन् किस कुल के लिए कौन सा धर्म कर्तव्य है, इस विषय में आत्मा ही साक्षी है। इस श्वमाँस भक्षण में जो पाप है उसे आप अच्छी तरह स्वयं जानते हैं जो व्यक्ति कुत्ते के माँस को भक्ष्य बताकर उसका समर्थन करता है, मेरी समझ में उसके लिए इस संसार में कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी त्याज्य नहीं है।' पुनः विश्वामित्र ने कहा–'चाण्डाल! मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि तुमसे दान लेने में और इस अभक्ष्य भक्षण में पाप है, किन्तु जहां न खाने से प्राण वियोग की संभावना उपस्थित हो जाय, वहाँ ऋषियों ने धर्म नियमों में अपवाद माना है, यही आपद्धर्म है। ऐसा कर्म जिसमें हिंसा अथवा असत्य न हो, मात्र निन्दा हो, प्राण जाने के समय भी उस अभक्ष्य-भक्षण का निषेध करना आदरणीय नहीं है।' पुनः श्वपच ने कहा–'प्रभो! आप बारम्बार इस अभक्ष्य वस्तु के समर्थन में प्राणरक्षा रूपी हेतु उपन्यस्त कर रहे हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि आपके लिए न वेद शास्त्र प्रमाण हैं और न महापुरुषों के वचन। मैं, आपके कथनानुसार, आपके लिए अभक्ष्य वस्तु के भक्षण में अथवा भक्ष्य वस्तु के अभक्षण में कोई दोष नहीं देख पा रहा हूँ, जैसा कि इस अभक्ष्य वस्तु के प्रति आपका महान् आग्रह है।' तब कौशिक ने कहा– 'श्वपच अखाद्य वस्तु खाने वाले व्यक्ति को ब्रह्महत्या के समान पाप लगता हो, ऐसा कोई शास्त्रीय वचन उपलब्ध नहीं होता। हाँ, सुरापान करने से ब्राह्मण पतित हो जाता है, यह शास्त्रीय वचन अवश्य उपलब्ध होता है अतः ब्राह्मण के लिए सुरापान अवश्य त्याज्य है। जैसे अन्य पाप कम निषिद्ध है, वैसे ही अभक्ष्य भक्षण भी निषिद्ध है। मैं ऐसा मानता हूँ कि संकट के समय एक बार किये हुए किसी सामान्य पाप से, किसी व्यक्ति के आजीवन किये पुण्यकर्मों का विनाश नहीं होता।' पुनः श्वपच ने कहा–'भगवन। जो व्यक्ति अनुचित स्थान से अनुचित कर्म से निन्दित पुरुष से कोई निषिद्ध वस्तु ग्रहण करना चाहता है, उस विद्वान् को उसका सदाचरण ही उस अकार्य से रोकता है, अतः आप जैसे ज्ञानी महात्मा को तो स्वयं ही इस अभक्ष्य भक्षण रूपी निन्द्य कार्य से अलग हो जाना चाहिए। परन्तु जो ज्ञानी और शास्त्रज्ञ होकर भी बारम्बार आग्रहपूर्वक अभक्ष्य वस्तु की याचना कर रहा हो, उसी व्यक्ति को इस पाप का दण्ड भी भुगतना चाहिए। इसमें दूसरे व्यक्ति का कोई दोष नहीं है। अतएव इस प्रसंग में भी मैं निर्दोष हूँ। इतना कहकर वह श्वपच विश्वामित्र को मना करने से विरत हो गया। महर्षि कौशिक ने तो पहले ही निश्चय कर रखा था, अतएव वे उस कुत्ते की जांघ को ले ही गये। प्राणधारण की इच्छा वाले उन महामुनि ने उस कुत्ते के माँस को ग्रहण कर उसे वन में ले जाकर पत्नी सहित खाने का विचार किया। फिर उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि विधिपूर्वक देवताओं को उनका भाग अपर्ण करके ही मुझे इस कुत्ते के माँस का भक्षण करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथास्य बुद्धिरभवत् विधिनहिं श्वजाधनीं।
भक्षयामि यथाकामं पूर्व संतार्य देवताः॥

—महा०, शान्तिपर्व, अ० १४१/९४

तब महामुनि भगवान विश्वामित्र ने वेदोक्त विधि से अग्नि का आवाहन कर उसकी स्थापना की तथा भगवान इन्द्र और अग्नि के उद्देश्य से स्वयं ही चरु पकाकर तैयार किया। फिर महामुनि ने देवकर्म और पितृकर्म आरंभ किया। पुनः इन्द्र आदि देवताओं का आवाहन करके उनके लिए विधिपूर्वक अलग-अलग भाग कल्पित किया। मुनि के इस धैर्य और सहिष्णुता से प्रसन्न होकर भगवान इन्द्र ने सम्पूर्ण जगत् को जीवन दान देते हुए घनघोर वर्षा की और अन्न आदि औषधियों को उत्पन्न किया। भगवान् विश्वामित्र भी निरन्तर कठोर उपवास करते हुए अपने सम्पूर्ण पापों को दग्ध कर चुके थे। अतः देवताओं की कृपा से उन्हें अद्‌भुत सिद्धि की प्राप्ति हुई। उन भगवान विश्वामित्र ने वह कर्म समाप्त कर बिना उस हविष्य (श्वमाँस) का आस्वादन किये देवताओं और पितरों को सन्तुष्ट किया और उन्हीं के द्वारा पवित्र भोजन प्राप्त करके अपने जीवन की रक्षा की।

ततः समारभत् कर्मदेव पित्र्यं च भारत।
आहूय देवानिन्द्रादीन भागं भागं विधिक्रमात्॥
एतस्मिन्नेव काले तु प्रववर्ष स वासवः।
संजीवयन् प्रजाः सर्वाः जनयमास चौषधीः॥
स संहृत्य च तत्कर्म अनास्वाद्य च तद्धविः।
तोषयामास देवांश्च पितृंश्च द्विजसत्तमः॥

—महा०, शान्तिपर्व, अ० ४१/९६,९७,९९

दीर्घतमा

अरण्य का शान्त वातावरण था। पशु-पक्षी भी अपने वैर-भाव को भूल कर आपस में प्रेम से रहते थे। प्रकृति में अपने शान्त स्वभाव का साम्राज्य बिखेर दिया था। वृक्षों में फूल-फल समय से लगते थे। किसी प्रकार का द्वन्द्व न था। इसी जंगल में एक सुन्दर पर्णकुटी बनी हुई है। इस कुटी में जरा भी कृत्रिमता नहीं। कुश की चटाई, मिट्टी के बर्तन, कमण्डल और माला यही तो वहाँ वस्तुएं हैं। इसी में दो भाई तपस्वी जीवन व्यतीत करते हैं। वे ऋषि पुत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इनके पिता वेद मंत्रों के साक्षात्कर्ता ऋषि थे। उन दोनों का नाम उचथ्य तथा बृहस्पति है उचथ्य अवस्था में बड़े तथा बृहस्पति छोटे हैं दोनों में सहज प्रेम है। वैर का निशान भी नहीं। वैर हो भी तो कैसे? वैर का जन्म तो स्वार्थ में होता है वहाँ स्वार्थ कैसा? दोनों का काम हरिभजन और हरिचर्चा है। इसके अतिरिक्त और किसी काम के लिये उनके पास अवकाश कहाँ? उचथ्य की स्त्री का नाम ममता है। वह भी उसी आश्रम में साध्वी का जीवन बिताती है। वह भृगु के गोत्र में उत्पन्न है।

धीरे-धीरे वसन्त ऋतु ने उस आश्रम में डेरा डाला। उसके सभी सहायक वहाँ एकत्रित हो गये। वृक्षों पर नये-नये पल्लवी का आगमन हुआ। कोयल की मधुर कोकली आवाज चारों ओर सुनाई पड़ने लगी। आम्र मंजरियाँ अपनी सुगन्धि से परिजनां के चित्त को मत्त बनाने लगी। वृक्ष नवीन फूल-फलवाले बन गये। सारा वातावरण मनोरम हो गया। परिस्थितियाँ मनुष्य को क्या नहीं बना देती। इस श्रृंगारिक वातावरण में बृहस्पति का मन चञ्चल हो उठा। विरले भाग्यशाली ही कामदेव के पुष्पवाणों की चोट से संभलते हैं। कामदेव के लिए सारे ही प्राणी आखेट के विषय हैं। चला ही तो दिया उन्होंने अपने पुष्पबाणों को बृहस्पति पर। मुनि का चित्त चंचल हो उठा। वासना अपनी कालिमा को उनके हृदय में प्रकट करने लगी। यह श्रृंगारिक वातावरण और आश्रम में अकेली ममता। धन्य है कामदेव को।

ऋषि की सारी तपस्या विस्तृत हो गयी। उन्हें मन ही मन काम सुख सूझने लगा। कर ही तो दिया उन्होंने प्रस्ताव ममता से। बेचारी सती साध्वी सहम उठी। इस अकर्तव्य में उसकी रुचि कैसे हो सकती है। पेट में शिशु भी तो विराजमान था, उसने इन्कार कर दिया। किन्तु बृहस्पति की वासना तो शान्त नहीं हुई उनका दुराग्रह बढ़ने लगा। वासना की सीमा नहीं होती। कामी दिन-रात, धर्माधर्म का विवेक थोड़े रखता है। अन्त में गर्भस्थ बालक से न रहा गया। वह क्षुब्ध हो गया। बृहस्पति के इस अकर्तव्य के प्रति आसक्ति ने उस बालक के हृदय को झकझोर दिया। अन्त में वह बोल ही तो उठा–'बृहस्पति जी! मैं तो यहाँ पहले से ही मौजूद हूँ। आप फिर क्यों यह दुराग्रह कर रहे हैं। इस नीचतापूर्ण कार्य से विरत होइए।' बालक के द्वारा ऐसी अवहेलना। वह भी गर्भस्थ के द्वारा! काम क्रीड़ा में वह बाधा डाले। मेरे महत्त्व का उसे पता नहीं। ऋषि बृहस्पति का पारा गर्म हो गया। क्रोध से उनका शरीर कांपने लगा। इसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी विसात जो मुझे टोके। उन्होंने उसे शाप दिया–'मूर्ख! तूने मेरी काम क्रीड़ा में बाधा डाली है। तू महा अज्ञानी है। जन्मते ही तेरी आँखें चौपट हो जायें। तू अन्धा हो जायेगा।'

उस बालक की बातों से बृहस्पति अपने कुकर्म से तो विरत हो गये पर उस धर्मनिष्ठ अबोध बालक को घोर शाप दे दिया। जन्म लेते ही वह अन्धा हो जायेगा।

कुछ समय बीतने पर उचथ्य के पुत्र होने का समय उपस्थित हुआ। आश्रम में आनन्द का सागर उमड़ने लगा। ऋषि के आश्रम के सभी प्राणी प्रफुल्लित थे। इसी आनन्द मुहूर्त में गंभीर प्रसव वेदना के बीच भृगु गोत्र में उत्पन्न ममता देवी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया। सब लोग आनन्द से खिल उठे। किन्तु यह क्या? जो बालक पैदा होते समय सुन्दर चक्षुओं से सम्पन्न था उसकी आखें ही जाती रही। सब लोग विषाद् में डूब गये। अब किसी के किए क्या होता। उसका यह अन्धत्व तो दीर्घकाल तक रहेगा।

दीर्घतमा ने सभी की करतूतों को देखा। उसने समझ लिया कि इन सबों के किये कुछ होने वाला नहीं। मेरी आँखे तो बृहस्पति के शाप से नष्ट हो गयी। अब देवताओं की कृपा से ही वे अच्छी हो सकती हैं। मन ही मन दीर्घतमा देवताओ की शरण में गया। दीर्घतमा ने अग्नि, द्यावापृथिवी, विष्णु आदि सभी देवताओं की स्तुति की। दीर्घतमा ने कहा–मैं तीन मूर्धा, और सात किरणों वाले महान अग्निदेव की स्तुति करता हूँ। उन अग्निदेव ने अपनी किरणों से सारे संसार को व्याप्त कर दिया है।[३१] मैं उन मित्र वरुण की जो समान मन वाले हैं। हव्य तथा नमस्कार से पूजन करता हूँ। वे घृत पीने वाले हैं। वे हवि देने वाले तथा सत्यवादी मनुष्य को प्रसन्न करने वाली गौ को देते हैं।[३२] विष्णु भगवान के मैं किन पराक्रमशील कार्यों की स्तुति करूं उन्होंने तो सम्पूर्ण पृथ्वी के लोकों को नाप डाला है। उन्होंने ऊर्ध्ववर्ती जनस्थान को स्थापित किया है। वे विस्तृत गमन वाले हैं। वे विष्णु भगवान सर्वत्रगामी तथा पर्वतचारी मृग की भाँति बलवान् रूप में स्तुत हैं। उनके विस्तृत तीन डगों में सारे लोग आ जाते हैं। उन विष्णु भगवान के प्रति मेरी सुन्दर स्तुतियाँ पहुँचे जो पर्वत पर रहने वाले विस्तृत डग वाले तथा बलवान् हैं। उन्होंने अकेले इन दीर्घ विस्तृत जनस्थान को माप डाला है।'[३३]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार से दीर्घतमा ने देवताओं की स्तुति की। उनमें दिव्य वाणी का संचार हुआ था। अत: वे वेद मंत्र उनके मुख से स्वत: ही निकले। इनका उन्होंने दर्शन किया। भगवान की लीला भी बड़ी विचित्र है। वह अघटन घटनापटीचसी है। दीर्घतमा की प्रार्थना से देवता प्रसन्न हो उठे। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक दीर्घतमा की आँखों में रोशनी दे दी। जो अभी तक दीर्घतमा–दीर्घकाल तक अन्धे रहने वाले थे वे ही अल्पतमा हो गये। उनकी आँखें चमकने लगी। सामान्य मनुष्य से थोड़ी अच्छी कोटी की हो गयी। धन्य है देवताओं की प्रसन्नता। ऋषि बृहस्पति का शाप भी व्यर्थ नहीं हुआ और दीर्घतमा की भी कोई हानि नहीं हुई।

देवताओं की कृपा से दीर्घतमा की दृष्टि पुन: प्राप्त हो गयी। बालक दीर्घतमा धीरे-धीरे बड़े हुए। उन्होंने बड़ा समृद्ध जीवन व्यतीत किया। बालकपन की क्रीड़ा रसिकता और जीवन की रंगीनी दोनों का उन्होंने मजा लिया। बड़े धर्मनिष्ठ महात्मा निकले। मंत्र द्रष्टा तो वे थे ही। सारे संसार में उनके महत्त्व की लो जल गई।

किन्तु काल किस पर अपना प्रभाव नहीं दिखाता। यौवन में धन-सम्पत्ति और बल के मद में जो चूर था वही तो वृद्धावस्था में सिर कंपाता घूमता है। जो राजप्रसाद अपने सौन्दर्य और कीमियागिरी में बेहद दिखाई देते थे उन्हीं पर कालगति से काई जम जाती है। बलि, विक्रमादित्य, बेन और दधीचि आदि अब कहाँ हैं–'जो फरा सो झरा और बरा सो बुताना।' दीर्घतमा के शरीर पर भी काल ने अपना प्रभाव दिखाया और स्वर्णप्रभ एवं पुष्ट देह में अब कंप-कंपी आने लगी। बाल सफेद हो गये। देह यष्टि बिना सहारा दिये चलने में असमर्थ रही। दाँत टूट गये और देवताओं की दी हुई आँख? वह भी तो कोई नित्य वस्तु नहीं। एक दिन उसने भी तो धोखा दे ही दिया। ऋषि दीर्घतमा अन्धे हो गये। नौकरी की लाठी के आश्रित। नौकर लोग उन्हें डंडा पकड़ाकर घुमाने लगे। देखने-सुनने और चलने में अशक्त हो गये। धन्य है समय की गति। एक दिन सभी की यही हालत होती है।

नौकर भी परिचर्या करते-करते परेशान हो जाते हैं। सभी तो स्वार्थ साधक हैं, 'सर्व: स्वार्थ समीहते'। जब तक किसी से स्वार्थ की पूर्ति होती है तभी तक लोग उसकी उपासना किया करते हैं। तिस पर भी दीर्घतमा के सेवक तो उनके दास थे। उनके तो वे जीवन के स्वामी बन बैठे थे। कैसी विडम्बना है? एक व्यक्ति दूसरे को अपने अधीन मान लेता है। उसे काल का कठोर चक्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई नहीं पड़ता। दीर्घतमा के दास जिन्दगी भर कुहकते रहे। उन्हें मुक्त होने का मौका नहीं मिला। अब भाग्य ने उन्हें अच्छा मौका दिया है। दीर्घतमा का काम सफाया कर वे आसानी से उनका धन ले लेंगे। विचार विमर्श हुआ। राय पक्की हो गयी।

'प्रभो! चलिये नदी में स्नान कर आइए।' एक दास ने एक दिन कह ही तो दिया।

'क्यों आज क्या बात है?' दीर्घतमा ने पूछा।

'वैसे ही। इधर नदी के स्नान किए आपको बहुत दिन हो गये हैं। इसीलिए मैंने समझा शायद आप नदी में स्नान करना चाहते हो।' सेवक ने बड़े नम्र स्वर में कहा।

दीर्घतमा को इन सेवकों के कुचक्र का क्या पता था।? अपने सेवक ही जब अविश्वसनीय हो जायें तो इसमें उनका क्या दोष है? बेचारे चल दिये नौकर का सहारा लिये नहाने को। पीछे-पीछे कई दास चलने लगे।

किन्तु यह क्या? नौकरों ने यह क्या कर डाला? यह तो महान् पाप है। उन्होंने वृद्ध तथा अन्धे दीर्घतमा को बांध लिया है व दूसरा उन्हें नदी में डालने जा रहा है रुका नहीं जाकर उसने दीर्घतमा को नदी के जल में डाल ही तो दिया। अनर्थ हो गया।

उन दासों में एक महा नीच था। एक तो वह पहले से ही क्षुब्ध था दूसरे उसकी स्वार्थ बुद्धि ने उसे और नीच कर्म के लिए प्रेरित किया। उसका नाम त्रैतन था। वह लपलपाती तलवार लेकर दीर्घतमा को नदी जल में ही मारने दौड़ा। उसे डर था कि कहीं यह नदी-जल से फिर निकल न आये। अतः काम सफाया करने को उसने ठानी। किन्तु पाप अन्ततोगत्वा समूल नाश करने वाला होता है। उसकी तलवार दीर्घतमा पर न लगकर उसी पर लग गयी। उसका सिर, कंधा तथा छाती विदीर्ण हो गया। उसका अधम सिर खण्डित होकर जमीन पर गिर गया। उसके प्राण-पखेरु शरीर रूपी नीड़ का परित्याग कर अपने स्थायी गन्तव्य स्थान को उड़ गये।

उस पापी त्रैतन के मर जाने पर दीर्घतमा ने भी किसी भांति जल में अंग संचार करना शुरू किया। नदी में जल अधिक था, धारा तीव्र थी। ऋषि जल में कभी नीचे आते कभी ऊपर जाते। वे अर्धचेतन हो गये। जीवन की आशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने छोड़ दी। अब वे इसी नदी में डूब मरेंगे। नदी के विकराल भंवर उन्हें नचाते थे। ऋषि डूबते-उतराते किसी भांति अंग संचार करते हुये नदी की धारा में बहते रहे।

भाग्य बड़ा प्रबल होता है नदी की धारा ने दीर्घतमा को अङ्ग देश के समीपवर्ती भाग में लाकर किनारे फेंक दिया। किनारे आकर उनमें धीरे-धीरे शक्ति आयी और वे नदी के ऊपर आये। ऊपर आकर उन्होंने रहने का प्रबन्ध किया। मुनि तो वे थे ही। उनकी महत्ता की प्रसिद्धि शीघ्र ही समीपवर्ती प्रदेशों में हो गयी। लोग दूर-दूर से धन जन की इच्छा से उनके पास आने लगे। ऋषि उन सबके मनोरथ को पूरा करते ।

अङ्ग देश के राजा के महल में उशिज राम की दासी थी। वह मनसा-वाचा-कर्मणा से राजा की सेवा में व्यस्त थी। किन्तु उसे सन्तान कोई न थी। इससे सभी को चिन्ता थी। राजा ने उसे दीर्घतमा के पास भेज दिया। ऋषि दीर्घतमा उसकी सेवा से परम सन्तुष्ट हुये और उन्होंने उससे कक्षीवत् इत्यादि पुत्रों को जन्म दिया। इस महान् कर्म से उनकी अंग देश में बड़ी पूजा हुई। राजा से सत्कृत और पूजित होकर उन्होंने वहाँ काल-यापन किया। बृहद्देवता ४.११-२५ ऋ० १.१४०.१६४

दीर्घतमा का अध्यात्मज्ञान :

वेद में अनेक ऋषियों ने दर्शन और अध्यात्म का प्रस्फुट या विशद् वर्णन किया है, इसमें सर्वाधिक विशद् और अनुतम अध्यात्म दीर्घतमा मामतेय ऋषि का है। ऋग्वेद, प्रथम मण्डल के १६३ और १६४ सूक्त में विश्व के जिन गंभीर रहस्यों का उद्घाटन दीर्घतमा ऋषि ने किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है, इन दोनों सूक्तों पर एक पुस्तक भी लिखी जा सकती है, परन्तु हम यहाँ केवल कुछ विशिष्ट मंत्रों का उद्धरण देकर विषय का संक्षिप्त विवेचन करेंगे :

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमों अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता धृतपृष्ठों अस्यात्रपश्यं विश्वपतिं सप्त पुत्रम्॥
अपश्यं गोपामनिषद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ती भुवनेष्वन्तः॥

—ऋ० १६४.१.३१

प्रथम मंत्र का आध्यात्मिक भावार्थ इस प्रकार है—'समस्त विश्व को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वमन करने वाला, अपने शरीर (ब्रह्माण्ड) में स्थित जगत् को बाह्यत: प्रकाशित करने वाला, सबका पालक, सृष्टि स्थिति, प्रलय के कारण परमात्मा का भागहर्ता (भ्राता), व्यापनशील सबके मध्य में सूत्रात्मा है, इसी प्रजापति (ईश्वर) का तृतीय भ्राता विराट् जगत् है, यह विश्पति सप्तलोक का जनक है, उसका मैंने दर्शन किया है और उसे भली-भाँति जानता हूँ।'

पुरुषसूक्त में विराट् की उत्पत्ति इसी प्रकार पुरुष से कही गई। अत: वैदिक ऋषियों के दर्शन में सर्वत्र समरसता प्रकट होती है। दूसरे मंत्र का अर्थ इस प्रकार है–'यह पुन: पुनरावर्तमान सत्त्वलक्षण महानात्मा जीवलक्षण का मैंने दर्शन किया है वही परमोत्कृष्ट ब्रह्म, सत्य और एक रस है, वही है, वही अव्यक्त, अशरीर, अस्पर्श, अरूप (अमूर्त), अगन्ध, अमृत, शुद्ध और सच्चिदानन्द है, वही जीवात्मा क्षेत्र है, यही सब प्रकार से भुवनों (प्राणियों) में व्याप्त है।'

कहीं-कहीं वैदिक ग्रन्थों में प्राण को ही गोपा कहा गया है, क्योंकि यह शरीररक्षा या प्राणाधार करता है।

ब्रह्मर्षि वशिष्ठ

अष्टम व्यास-आदिम वशिष्ठ स्वायम्भूव मन्वानतर में हुए थे। वंशज को मित्रावरुण ने अपना मानसपुत्र बनाया, यह वशिष्ठ का द्वितीय जन्म था और इसकी शतपथ ब्राह्मण एवं इतिहास पुराणों में इनका वर्णन है। प्रारम्भ में वशिष्ठ ब्राह्मण भार्गवों के समान ईरानादि का पौरोहित्यकर्म भी करते थे। शाकद्विपीय ब्राह्मणों और वशिष्ठों का सम्बन्ध पुराणों से सिद्ध है। वाशिष्ठ ब्राह्मण पीढ़ी वैवस्वत मनु के वंशज अयोध्या के ऐश्वाक राजाओं के पुरोहित होते रहे। पुराणों के अध्ययन से ऐसा आभास होता है कि वशिष्ठ एक ही थे, परन्तु यह महान भ्रम है, वशिष्ठ एक गोत्र नाम था। ऐसे सहस्रों लाखों वशिष्ठ या वाशिष्ठ ब्राह्मण हुए, यही बात कश्यप (काश्यप), पाराशर (पराशर), भरद्वाज (भारद्वाज) कौशिक (विश्वामित्र), गार्ग (गर्ग), गौतम, याज्ञवल्क्य, सारस्वत, आथवर्ण, वात्स्यायन इत्यादि शतश: गोत्रनामों के साथ समझनी चाहिए। जिस प्रकार आज भी किसी कौशिक ब्राह्मण को विश्वामित्र समझना या किसी वशिष्ठ ब्राह्मण को दशरथ का पुरोहित समझना, महान् अज्ञान और असत्य होगा, इसी प्रकार हरिश्चन्द्रकालीन वशिष्ठ-विश्वामित्र और रामकालीन वशिष्ठ विश्वामित्र को एक ही समझना महान् मूर्खता होगी। यह भ्रमनामसाम्य से होता है, वैसे तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाभाविक है, परन्तु वास्तविकता को भी समझना चाहिए। इस विषय का विस्तृत विवेचन प्रकाशमान ग्रन्थ–'पुराणों में इतिहास विवेक' में किया जायेगा।

अतः वशिष्ठ द्वितीय या मैत्रावरुणि वशिष्ठ आठवें वेदव्यास थे, इनकी माता उर्वशी और भ्राता कुम्भज अगस्त्य ऋषि थे–

तयोरादित्ययोः सत्रे दृष्ट्वाऽप्सरसमुर्वशीम्।
रेतश्चस्कन्द तत्कुम्भेन्यपतद्वासतीवरे।
तेनैव तु मुहर्ते वीर्यवन्तौ तपस्विनी।
अगस्त्यश्च वशिष्ठश्च तत्रर्षी संबभूवतुः॥ –बृहद्देवता ५.१४९–५०

"प्रजापति वरुण के यज्ञ में दो अदितिपुत्रों–मित्र और वरुण का वीर्य कुम्भ में स्खलित हो गया, उर्वशी अप्सरा को देखकर। उसी क्षण उससे वीर्यवान् अगस्त्य और वशिष्ठ का जन्म हुआ।" वरुणपुत्र होने से वशिष्ठ को आथर्वण ऋषि भी कहा जाता है प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने लिखा है–

"अथर्वणा वशिष्ठेन कृता रचिता पदानां पंक्तिरानुपूर्वी यस्य से वेद चतुर्थवेद इत्यर्थः। अर्थणस्तु मन्त्रों द्वारों वशिष्टकृत इत्यागमः"। –किरातार्जुनीय टीका १०.१०

अथर्ववेद का मन्त्रोद्धार करने के कारण वशिष्ठ मैत्रवरुणि "अष्टमव्यास" माने गए।

वशिष्ठ को कुल अथर्वाङ्गिरस भी कहा जाता था। इसी वंश में शक्ति, पराशर और पाराशर्य व्यास हुए, जिन्होंने इतिहास पुराणों का निर्माण किया।

वशिष्ठ मैत्रावरुणि का समय ११११८० वि॰ पू॰ था। अन्तिमव्यास कृष्णद्वैपायन का समय ३१०० वि॰ पू॰ था। अतः इन दोनों में आठ सहस्रवर्ष का अन्तर था। प्रत्येक ऋषि की आयु २०० वर्ष हो तो भी अष्टम् व्यास वशिष्ठ और अट्ठाइसवें पाराशर्म्य व्यास के मध्य न्यूनतम ४० पीढ़ियां अवश्य हुई, अतः द्वैपायन व्यास को आद्यवशिष्ठ का प्रपौत्र मानना भ्रान्ति है। वास्तव में कृष्णद्वैपायन से बीसियों पीढ़ी पूर्व, सौदास कल्माषपाद ऐक्ष्वाक के समकालीन थे। यह अयोध्या का राजा दाशरथि राम से भी दस पीढ़ी पूर्व हुआ था। अतः कृष्णद्वैपायन के पिता भी आद्यपराशर नहीं थे, उनके पिता का नाम "द्विय" (पराशर ब्राह्मण) था "द्विप" के पुत्र होने के कारण ये "द्वैपायन" कहलाये जैसा कि अपत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामकरण का नियम था। "द्विप" के ऋषि को पराशरगोत्रीय होने से ही "पराशर" कहा जाता था, जैसा कि अन्य सैकड़ों ब्राह्मणों को कहा जाता है।[३४]

यह सब इसलिए लिखा गया है कि महान् ऐतिहासिक भ्रम मिटें महाभारत से ज्ञात होता है कि मार्कण्डेय पाण्डवों के समय तक जीवित थे–

बहुवत्सरजीवी च मार्कण्डेयो महातपाः।
दीघार्यश्च कौन्तेय स्वच्दन्दमरणं तथा॥ –महाभारत, वनपर्व ४)

मार्कण्डेय ने दैत्यदानवो को प्रत्यक्ष देखा था, युधिष्ठिर उनसे कहते हैं–

भवान् दैवतदैत्यानामृषीणां च महात्मनाम्।
राजर्षीणां च सर्वेषां चरितज्ञः पुरातनः॥ –महाभारत, वनपर्व १८३.५४

दशम युग के अनन्तर विभिन्न युगों में वेदोद्धारक निम्न व्यास हुए–

एकादश युग में	=	त्रिशिख व्यास
द्वादश युग में	=	शततेजाः
त्रयोदश युग में	=	नारायण
चतुर्दश युग में	=	अन्तरिक्ष
पंचम युग में	=	त्र्यारुणि
षोडश युग में	=	संजय
सप्तदश युग में	=	कृतञ्जय
अष्टादश युग में	–	ऋतञ्जय

उपर्युक्त आठ व्यास क्रमशः ३६० वर्षों के अन्तर से हुए।

इन आठों वेदव्यास का जीवन या कृतित्व कुछ भी ज्ञात नहीं होता, अतः उन्नीसवें व्यास भरद्वाज का यत्किञ्चित् विवरण प्रस्तुत करते हैं।

ब्रह्मर्षि वशिष्ठ की उपादेयता

भगवान् वशिष्ठ का अलौकिक धैर्य एवं ज्ञान :

पाञ्चाल देश की यात्रा के प्रसंग में गन्धर्वराज चित्ररथ ने, अर्जुन के पूछने पर भगवान वशिष्ठ के माहाम्त्य का वर्णन किया था–"भगवान वशिष्ठ ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं। उनकी पत्नी अरुन्धती देवी है। तीनों लोकों में अजेय महाशत्रु काम और क्रोध जिन ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ की तपस्या से पराजित होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके चरण दबाते हैं। इन्द्रियों को वश में करने के कारण ही उनका नाम वशिष्ठ हुआ।

तनसा निर्जितो शश्वद् अजेयावमरैरपि।
कामक्रोधावुभौ यस्य चरणौ संववाहतुः॥
इन्द्रियाणां वशकरो वशिष्ठ इति चोच्यते॥

—महा॰, आदिपर्व, अ॰ १७३/६

महर्षि विश्वामित्र के अपराध से अत्यन्त क्रुद्ध होकर भी, जिन भगवान वशिष्ठ ने अपनी क्षमाशीलता के कारण कुशिक वंश का उच्छंद नहीं किया। सौ पुत्रों की मृत्यु से अत्यन्त दुःखी महात्मा वशिष्ठ ने समर्थ होते हुए भी असमर्थ की तरह विश्वामित्र के विनाश के लिए दारुणकर्म नहीं किया। यद्यपि भगवान वशिष्ठ यमराज के घर से अपने मरे हुए पुत्रों को लौटा लाने में समर्थ थे, किन्तु उन्होंने यमराज की मर्यादा नहीं तोड़ी, उसी प्रकार जैसे समुद्र कभी अपनी वेला को नहीं लाँघता। जिन्हें कुलगुरु के रूप में पाकर महात्मा इक्ष्वाकुवंशी राजाओं ने सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त की। इन्द्रियजयी महात्मा वशिष्ठ को पुरोहित के रूप में प्राप्त कर रघुवंशी राजाओं ने सैकड़ों की संख्या में अश्वमेध और राजसूय आदि यज्ञ किए। भगवान् वशिष्ठ ने यज्ञ में ब्रह्मा का आसन ग्रहण कर सम्पूर्ण इक्ष्वाकुवंशी राजाओं का यज्ञ रूप पूर्ण कराया, उसी प्रकार जैसे देवगुरु बृहस्पति देवताओं का यज्ञ पूर्ण कराते हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से रघुवंशी राजाओं ने सर्वगुण सम्पन्न जितेन्द्रिय, वेदाभ्यासी, विद्वान् तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के ज्ञाता, अथर्ववेद के विद्वान भगवान ब्रह्मसूत्र वशिष्ठ को अपना पुरोहित बनाया। महर्षि वशिष्ठ रघुवंशियों के प्राणस्वरूप ही थे।

भगवान वशिष्ठ का तेज :

भगवान वशिष्ठ के महाप्रभाव को जानने वाले देवताओं ने एक बार उनका स्मरण कर मानसरोवर के तट पर यज्ञ का आयोजन किया। सम्पूर्ण देवता यज्ञ की दीक्षा लेकर तन, मन, धन से यज्ञ में जुटे हुए थे। यज्ञकार्य में व्यस्त देखकर "खली" नामक पर्वताकर दानवों ने उन सबको मार डालने को विचार किया। अतएव दोनों दलों में भयंकर युद्ध छिड़ गया। उन खली दानवों को ब्रह्माजी का वरदान प्राप्त था कि मानसरोवर में डुबकी लगाकर के नवीन जीवन-प्राप्त कर लेंगे। अतएव उस भयंकर युद्ध में जो दानव हताहत होते थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य दानव उन्हें उठाकर मानसरोवर में फेंक देते थे। जिससे वे पुनः जीवित हो जाते थे। फिर उस सरोवर के जल को सैकड़ों योजन उछालते हुए वे खली दानव हाथ में पर्वतशिलाओं, परिध और वृक्ष लेकर देवताओं पर टूट पड़ते थे। दानवों की भयंकर मार खाकर देवताओं के हौसले पस्त हो गए। वे भागकर इन्द्र के पास पहुँचे। उन देवताओं को लेकर देवेश महर्षि वशिष्ठ की शरण में गए। महर्षि ने देवताओं को अभयदान दिया। अत्यन्त कारुणिक महात्मा वशिष्ठ ने जब देवताओं को दुःखी देखा तो उन्होंने अपने तेज से अनायास ही सम्पूर्ण दानवों को भस्म कर दिया। इन्हीं करुणाशील महामुनि ने कैलास की ओर प्रस्थित भागीरथी को मानसरोवर में गिरा दिया। जिससे सरोवर का तटबन्ध टूट गया और उससे जो स्रोत प्रवाहित हुआ वही परमपावनी सरयू के नाम से विख्यात हुआ। इस प्रकार भगवती सरयू का प्रकाट्य भी भगवान मित्रावरुण नन्दन की कृपा से ही हुआ।

सांख्ययोग तथा अध्यात्म तत्त्व का विवेचन :

एक समय जब भगवान मैत्रावरुणि अपने आश्रम में विराजमान थे, मिथिलाधिपति राजा जनक उनके दर्शन के लिए पधारे। महाराज जनक अपने हृदय में मोक्षज्ञान विषयक जिज्ञासा लेकर आए थे। उन्होंने अध्यात्म ज्ञान के तत्त्वज्ञ ब्रह्मर्षि वशिष्ठ को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और अत्यन्त मधुवर वाणी में उनसे निवेदन किया—'प्रभो! मैं आपके मुखारविन्द से सनातन परमब्रह्म के विषय में सुनना चाहता हूँ। जिस ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर मनीषी पुरुष पुनः इस संसार में लौटकर नही आते। भगवन्! जिसे क्षर कहा गया है और जिसमें इस क्षर का लय होता है, उस निर्विकार कल्याणमय शिवस्वरूप अक्षर का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। तब ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने कहा-राजन्! देवताओं के बारह हजार वर्षों का एक चतुर्युग होता है। इसी को कल्प अथवा महायुग कहते हैं। ऐसे एक हजार महायुगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है। राजन्! ब्रह्मा की रात्रि भी इतनी ही बड़ी होती है। इस महारात्रि के अन्त में वे जागते हैं। अणिमा, लघिमा, प्राप्ति आदि सिद्धियाँ जिनकी दासी हैं, वे निराकार परमेश्वर ही अनन्तकर्मा, सम्पूर्ण सृष्टि के अग्रज, महाभूत ब्रह्मा की सृष्टि करते हैं। परमात्मा ज्योतिः स्वरूप, अविनाशी तथा सम्पूर्ण विश्व के अधिष्ठाता है। उनके हाथ, पैर, सिर और कान सब ओर हैं अर्थात् सम्पूर्ण चराचर विश्व उनका ही रूप है। उन्होंने सम्पूर्ण विश्व को अपने में व्याप्त कर रखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ –महा०, शन्तिपर्व, अ० ३०२/१७

परमात्मा से उत्पन्न इन्हीं भगवान् ब्रहहिरण्यगर्भ को सांख्या में वृद्धि अथवा महत् कहा गया है तथा योगशास्त्र में "महान्" के रूप में अभिहित किया गया है इन्हीं भगवान् हिरण्यगर्भ को अज और विविञ्च भी कहा गया है सांख्य में इनका अनेक नामों और रूपों में वर्णन है। इन्हीं भगवान् ब्रह्मा को वैचित्ररूप, विश्वात्मा और एकाक्षर भी कहा गया है। अनेक रूपों वाले इस विश्व की रचाकार उन भगवान् प्रजापति ने स्वयं ही इसे व्यास कर रखा है। सम्पूर्ण संसार में व्याप्त होने के कारण ही उन्हें विश्वरूप भी कहा गया है। ये महातेजस्वी भगवान् ब्रह्मा स्वयं ही विकार को प्राप्त होकर अहंकार की और उसके अभिमानी देवता प्रजापति विराट् की सृष्टि करते हैं। यही बात वेद में भी कही गई है–

ततो विराडजायत विराजोऽधिपुरुषः।

निराकार से साकार रूप में प्रकट होने वाली मूलप्रकृति को विद्यासर्ग तथा मह एवं अहंकार को अविद्यासर्ग कहा गया है राजन्। उसी परमात्मा से अविधि (ज्ञान) और विधि (कर्म) की भी उत्पत्ति हुई। वेदशास्त्र के तत्त्वज्ञ विद्वानों के द्वारा इन्हें ही क्रमशः विद्या और अविद्या बतलाया गया है महाराज! अहंकार से जो सूक्ष्म भूतों (तन्मात्रा)की सृष्टि हुई उसे आय तृतीय सर्ग समझिये और अहंकार से अर्थात् सात्त्विक, राजस तथा तामस–इन तीन प्रकार के अहंकारों से जो चौथी सृष्टि उत्पन्न हुई उसे आप वैकृत सर्ग जानिये। आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी–ये पाँच महाभूत तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये महाभूतों के गुण–पाँच विषय-वैकृत सर्ग के अन्तर्गत हैं। इस प्रकार यह दस वर्ग–पंचमहाभूत और उनके गुण–एक साथ उत्पन्न होता है पाँचवां सर्ग भौतिक सर्ग के अन्तर्गत आँख, कान, घ्राण, जिह्वा और त्वचा ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा हाथ पैर, वाणी, गुदा और उपस्थ–ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। मन के साथ इन दसों इन्द्रियों की उत्पत्ति एक साथ होती है। राजन्। प्रत्येक प्राणी के शरीर में ये चौबीस तत्त्व विद्यमान रहते हैं। इन चौबीस तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर तत्त्वदर्शी महात्मा कभी शोक नहीं करते। महाराज तीनों लोकों में जितने भी देहधारी हैं, उन सबके शरीर का निर्माण इन्हीं चौबीस तत्त्वों से हुआ है। देवता मनुष्य, दानव, यक्ष, भूत, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, चारण, पिशाच, देवर्षि, राक्षस, दंश,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीट, मच्छर, कीड़े, चुहे, कुत्ते, चाण्डाल, हिरन, श्वपाक, पुल्कस, हाथी, घोड़ा, गदहा, शार्दूल, वृष, गौ आदि के रूप में जो भी मूर्तिमान पदार्थ हैं, सभी में यही चौबीस तत्त्व वर्तमान हैं। पृथ्वी, जल और आकाश–यही तीन स्थान देहधारियों के निवास स्थान हैं, ऐसा मेरा निश्चय है। चौथे किसी भी स्थान में देहधारियों का निवास नहीं है। राजन्! यह सम्पूर्ण पाँच भौतिक जगत् व्यक्त कहलाता है। चूँकि इसका हमेशा क्षरण होता है अर्थात् यह नाशवान है इसलिए इसकी संज्ञा क्षर है। इससे विपरीत तो तत्त्व है, वहीं अक्षर है। इसी अक्षर का अपरनाम अव्यक्त है जिससे मोहात्मक "क्षर" संज्ञक जगत् की सृष्टि होती है। क्षर तत्त्वों में सर्वप्रथम महत्तत्त्व (बुद्धि) की ही सृष्टि हुई है, यह सदा मननीय है। यही क्षर का परिचय है। इन तत्त्वों से परे जो पच्चीसवाँ तत्त्व गिना गया है, वही सर्वव्यापी परमात्मा भगवान् विष्णु हैं। चौबीस तत्त्वों का आश्रय होने के कारण ही उन परमात्मा की भी मनीषियों द्वारा "तत्त्व" संज्ञा की गई है–

पञ्चविंशतमो विष्णुः निस्तत्त्वः तत्त्वसंज्ञितः।
तत्त्वसंश्रयणादेतत् तत्त्वमाहुर्मनीषिणः।।–महा०, शान्तिपर्व, अ० ३०२/३८

महत्तत्त्व (बुद्धितत्त्व) अहंकार आदि तेईस व्यक्त तत्त्व जिन नश्वर पदार्थों की सृष्टि करते हैं वे किसी न किसी मूर्ति अथवा आकार का रूप अवश्य धारण करते हैं। विचार करने पर चौबीसवाँ तत्त्व अव्यक्त, प्रकृति और पच्चीसवाँ तत्त्व है निराकार परमात्मा। जो परमपुरुष परमात्मा अद्वितीय, चेतन, नित्य सर्वप्रथम और निराकर तथा सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा है, वे ही समस्त शरीरों और मूर्तियों के हृदय में निवास करते हैं। मिथिलेश! यद्यपि संसार की सृष्टि और प्रलय प्रकृति के धर्म हैं, पुरुष (परमात्मा)के नहीं तथापि प्रकृति से संसर्ग की सृष्टि से वह पुरुष भी सृष्टि और प्रलयरूप धर्म से सम्बद्ध सा जन पड़ता है। इन्द्रियों का विषय न होने पर भी गुणवान् सा मालूम पड़ता है। इस प्रकार सृष्टि और प्रलय के तत्त्व को जानने वाला यह महान् आत्मा विकार रहित होकर भी प्रकृति के संसर्ग से विकारवान सा हो जाता है और प्राकृत बुद्धि से रहित होने पर भी शरीर में आत्मभिमान कर लेता है। प्रकृति के संसर्ग दोष के कारण ही वह महान आत्मा (पुरुष) सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण से सम्बद्ध हो जाता है तथा अज्ञानी मनुष्य का संग करने से उन्हीं की भाँति अपने को शरीर धर्मा समझने के कारण वह पुरुष उन सात्त्विक, राजस, और तामस योनियों में जन्म ग्रहण करता है। प्रकृति के संसर्ग से अपने नित्य शुद्ध-बुद्ध (निर्विकार स्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का बोध लुप्त हो जाने के कारण वह महान् आत्मा यह समझने लगता है कि मैं शरीर से भिन्न नहीं हूँ मैं अमुक का पति हूँ अमूक का पुत्र हूँ और अमुक जाति तथा अमुक धर्म का हूँ। इस प्रकार मानता हुआ वह सात्त्विक आदि गुणों का ही अनुसरण करता है वह परम पुरुष तमोगुण के द्वारा मोह आदि नाना प्रकार के तामस भावों को, रजोगुण से प्रवृत्ति आदि राजस भावों को तथा सत्वगुण का आश्रय लेकर प्रकाश, ज्ञान आदि सात्त्विक भावों को प्राप्त होता है सत्त्व, रज और तम, इन तीन गुणों से क्रमशः रक्त और कृष्ण–ये तीन वर्ण होते हैं। प्रकृति से उत्पन्न हुए सम्पूर्ण रूप इन्हीं तीन वणों के अन्तर्गत हैं। मिथिला नरेश! तमोगुणी प्राणी नरक में जाते हैं, रजोगुणी प्राणी मनुष्य लोक में अपतरित होते हैं तथा सुखभागी सात्त्विकगुणी प्राणी स्वर्ग को प्रसन्न करते हैं। केवल पाप कर्मों में ही सदैव लिप्त रहने वाले प्राणी पशु-पक्षी की योनि को प्राप्त करते हैं। पुण्य और पाप के सम्मिश्रण से मनुष्यलोक तथा केवल पुण्य से स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। राजन्! इस प्रकार मनीषीयन प्रकृति से उत्पन्न हुए सम्पूर्ण पदार्थों को क्षर कहते हैं। उपर्युक्त चौबीस तत्त्वों से भिन्न जो पच्चीसवाँ तत्त्व हैं, वहीं परम पुरुष परमात्मा है, वही अक्षर है, उसकी प्राप्ति का साधन केवल ज्ञान है।

मिथिलाधिप! इस प्रकार जीव ज्ञानहीन होने के कारण अज्ञान का ही अनुसरण करता है यह अज्ञानरूपी शैतान ही उसे सहस्रों योनियों में भ्रमण करवाता है। सत्त्व, रज, तम तीन गुणों के संयोग और सामर्थ्य से जीव कभी देवयोनि कभी मनुष्ययोनि और कभी देवलोक से मनुष्यलोक और कभी मनुष्य लोक से अनन्त नरकों में भी पड़ता है। राजन्! जैसे रेशम का कीड़ा अपने द्वारा उत्पन्न किए गए तन्तुओं से अपने को सब ओर से बाँध लेता है, उसी प्रकार यह शुद्ध प्रबुद्ध निर्गुण आत्मा भी अपने ही द्वारा प्रकट किए गए प्राकृत गुणों से बंध जाता है। हानि-लाभ, जय-पराजय, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से रहित होने पर भी यह जीव भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म धारण कर उस योनि में प्राप्त सुख-दुःखों को भोगता है। वह कभी सिर की पीड़ा, कभी आँख की पीड़ा, कभी दाँत और कभी गले के रोग से आक्रन्त रहता है। इसी प्रकार यह जीव जलोदर, तृषारोग, ज्वर, गलगण्ड, विसूचिका (हैजा), कुष्ठ, अग्नि, दाह सिध्मा, अपस्मार (मृगी) आदि रोगों का शिकार होता रहता है, इसके सिवा और भी विचित्र प्रकार के प्रकृति जन्य द्वन्द्व या रोग शरीर में उत्पन्न होते हैं, उन्हें भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह जीवात्मा अपने कर्मों का फल मानकर उन्हें भोगता है। कभी यी जीव अपने को तिर्यक्योनि में पड़ा हुआ मानता है, कभी देवत्व का अभिमान धारण करता है तथा इसी अभिमान के कारण विभिन्न शरीरों में किए गए कर्मों का फल भी भोगता है। फल की आशा से बंधा हुआ मनुष्य कभी उज्ज्वल वस्त्र धारण करता है और कभी फटे-पुराने मैले वस्त्र धारण करता है, कभी पृथ्वी पर सोता है, कभी वीरासन में बैठकर और कभी आकाश के नीचे सोता है। कभी ईंट और पत्थर पर तो कभी कांटों की शय्या पर सोता है, कभी भस्म के बिछौने पर, कभी युद्धभूमि में, कभी जल में और कभी कीचड़ में सोता है, कभी मूँज की मेखला धारण करता है और कभी नंग-धड़ंग घूमता है। कभी रेशमी वस्त्र और कभी मृगचर्म धारण करता है। कभी सन या ऊन के वस्त्र, कभी बाघाम्बर और कभी पीताम्बर पहनता है। वह अज्ञानी जीव इनके अतिरिक्त और भी अन्य वस्त्र धारण करता, विचित्र भोजनों के स्वाद लेता है और नाना प्रकार के बहुमूल्य रत्न धारण करता है। कभी एक रात्रि का अन्तर देखकर भोजन करता है और कभी दिन में एक बार भोजन करता है कभी छः रात्रियों के अन्तर से और कभी सातवें, आठवें, दसवें अथवा बारहवें दिन अन्न ग्रहण करता है। कभी लगातार एक मास तक उपवास रखता है, कभी कन्द-मूल और फल खाकर रहता है। कभी वायु, कभी तिल की खली, कभी दही और कभी साक, फूल या सेवार खाकर रह जाता है। कभी पेड़ से गिरे सूखे पत्ते और फल के द्वारा ही जीवन निर्वाह करता है। इस प्रकार सिद्धि पाने की अभिलाषा से जीवात्मा नाना प्रकार के कठोर व्रतों का पालन करता है।

कभी विधिपूर्वक चान्द्रायण व्रत का पालन करता और नाना प्रकार के धार्मिक चिह्न धारण करता है, कभी चार आश्रमों के मार्ग पर चलता है और कभी विपरीत पथ का भी अनुसरण करता है कभी नदियों के एकान्त तटों में, कभी निर्जन वनों में, कभी पवित्र देव मन्दिरों में और कभी एकान्त सरोवरों में वह जीव निवास करता है। कभी पर्वतों की एकान्त गुफाओं में नाना प्रकार के गोपनीय जप, व्रत, नियम, तन, यज्ञ तथा भाँति-भाँति के कर्मों का अनुष्ठान करता है प्रकृति के गुणों से मोहित यह पुरुष कभी वाणिज्य कर्म में संलग्न होता है और कभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म का आश्रय लेता है। कभी वह दीन-दुःखी और अनाथों को नाना प्रकार के दान देता है। अज्ञानवश यह जीवात्मा अपने में सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों का और धर्म अर्थन्काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन तीन पुरुषार्थों का अभिमान कर लेता है। इस प्रकार यी जीवात्मा प्रकृति गुणों का आश्रय लेकर अपने ही स्वरूप के अनेक विभाग करता है वह कभी यज्ञ करता, और कराता, कभी वेद पढ़ता और पढ़ाता एवं कभी दान देता और प्रतिग्रह लेता है। वह कभी जन्म लेता, कभी मरता और कभी विवाद में प्रवृत्त रहता है। उसी प्रकार वह अन्य शुभाशुभ कार्यों में भी प्रवृत्त होता है राजन्! यह प्रकृति ही जगत् की सृष्टि और प्रलय करती है। जिस प्रकार भगवान् भुवनभास्कर प्रातःकाल अपनी किरणों को फैलाकर सारे संसार को आलोकित कर देते हैं। और सायंकाल उन किरणों को समेट लेते हैं, वैसे ही आदिपुरुष भगवान् ब्रह्मा अपने दिनकल्प के आरंभ में तीनों गुणों का विस्तार करते हैं और कल्पान्त में सबको समेटकर अकेला ही रह जाता है। महाराज! सृष्टि और प्रलय जिसके धर्म हैं इस त्रिगुणमयी प्रकृति को विकृत करके तीनों गुणों का स्वामी आत्मा कर्ममार्ग में प्रवृत्त एवं आसत होकर प्रकृति के द्वारा होने वाले त्रिगुणात्मक कार्य को अपना मान लेता है। योगीश्वर जनक! इस त्रिगुणमयी प्रकृति ने सबको—सम्पूर्ण जगत् को अन्धा बना रखा है। प्रकृति के रजोगुण और तमोगुण के द्वारा सम्पूर्ण पदार्थ अनेक प्रकार से व्याप्त हो रहे हैं। इस प्रकार प्रकृति की प्रेरणा से स्वाभाविक रूप में सुख-दु:खादि द्वन्द्वों की निरन्तर पुनरावृत्ति होती रहती है। किन्तु यह जीवात्मा अज्ञानवश यह मान लेता है कि ये सारे द्वन्द्व मुझ पर ही आक्रमण करते हैं और ऐसा मानकर वह द्वन्द्वों के आक्रमण से बचने के लिए नाना प्रकार की चेष्टा करता और दु:खी होता है नरेश्वर! प्रकृति के संसर्ग से मोहित हुआ यह जीवात्मा अज्ञानता से यह मान लेता है कि देवलोक में जाकर मैं अपने सम्पूर्ण पुण्यों का उपभोग करूंगा और पूर्वजन्म के किए हुए शुभाशुभ कर्मों का जो फल प्रकट हो रहा है उसे इसी मर्त्यलोक में भोगूंगा। अब मुझे सुख के साधनभूत पुण्य का ही उपार्जन करना चाहिए। पुण्य का एक बार भी अनुष्ठान कर लेने पर मुझे सदैव सुख की प्राप्ति होती रहेगी। यदि मैं अपने पापकर्मों में लिप्त रहूँगा तो मुझे अनन्त दु:खों की प्राप्ति होती रहेगी। यह मानव-जन्म भी महान दु:ख का कारण है और पाप कर्मों के फलस्वरूप नरक की प्राप्ति भी निश्चित है। नरक से पुनः मनुष्यलोक, पुण्य कर्मों के फलस्वरूप स्वर्गलोक और पुण्य क्षीण होने पर पुनः मर्त्यलोक—नरेश्वर! आत्मा से भिन्न और आत्मा के गुण चैतन्य आदि से युक्त जो इन्द्रियसमूह शरीर में ऐसी भावना रखता है कि 'यह मैं हूँ' यही 'मैं' देवलोग, मर्त्यलोक, नरक और तिर्यक्योनि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जाता है स्त्री-पुत्र आदि की ममता से बंधा हुआ जीव उन्हीं के संसर्ग में रहकर सहस्त्र-सहस्त्र योनियों में भटकता है। वास्तव में प्रकृति ही शुभाभाव फल देने वाले कर्मों का अनुष्ठान करती है और तीनों लोकों में विचरण करने वाली प्रकृति ही उन कर्मों के शुभाशुभ फल को भोगती है। किन्तु अज्ञान के वशीभूत यह जीव अपने को कर्त्ता भोक्ता मान बैठता है। पुरुष स्वयं छिद्ररहित है किन्तु प्रकृति निर्मित विभिन्न शरीरों का आबलम्बन कर छिद्रों में रहने वाली इन्द्रियों का अधिष्ठाता बनकर उन इन्द्रियों के कर्मों को अपने में मान लेता है। राजन्! यद्यपि यह जीवात्मा इन्द्रियों से रहित है, फिर भी यह मानता है कि मैं ही ये सब कर्म करता हूँ और मुझमें ही ये सब इन्द्रियाँ समाविष्ट है। इस प्रकार छिद्रशून्य होने पर भी यह पुरुष अपने को छिद्रयुक्त मानता है। यह जीवात्मा लिंगशरीर से हीन होने पर भी अपने को उससे संयुक्त मानता है। कालधर्म (मृत्यु) से रहित होने पर भी अपने को कालधर्मी मानता है। सत्त्व से भिन्न होकर भी अपने को स्वरूप मानता है और महाभूतादि तत्त्व से रहित होकर भी अपने आप को तत्त्वस्वरूप समझता है।[३५] मिथिलेश! यह जीवात्मा यद्यपि मृत्यु में सर्वथा रहित है फिर भी अपने को मृत्युग्रस्त मानता है। अचर होने पर भी अपने को संचरणशील मानता है, क्षेत्र से भिन्न होने पर भी अपने को क्षेत्र मानता है और सृष्टि से कोई सम्बन्ध न होने पर भी अपने को सृष्टि से संयुक्त समझता है। वह कभी तप नहीं करता फिर भी अपने को तपस्वी मानता है, गतिशील न होने पर भी अपने को गमन करने वाला मानता है। संसार से लिप्त होने पर भी अपने को भयभीत मानता है। अविनाशी होने पर भी अपने को नाशवान् और बुद्धि से परे होने पर भी अपने को बुद्धिमान समझता है।[३६]

राजन्! इस प्रकार अज्ञान के कारण और अज्ञानी जनों के संसर्ग दोष से जीव का पतन होता है तथा उसे सैकड़ों हजारों जन्म ग्रहण करने पड़ते हैं। जैसे चन्द्रमा निरन्तर क्षय और वृद्धि को प्राप्त होता है, उसी प्रकार वह जीव भी अज्ञान वश जन्म और मृत्यु के झमेले में पड़ जाता है मूल प्रकृति, इस इन्द्रियाँ—एक प्राण और चार प्रकार का अन्तः कर—इन सोलह कलाओं से युक्त यह जो सूक्ष्म शरीर है—इसमें ममत्व के कारण ही अज्ञानी जीव उसी में भटकता रहता है। महाराज! पच्चीसवां तत्त्वरूप जो महान् आत्मा है वह निर्मल एवं विशुद्ध है। उसको न जानने के कारण तथा शुद्ध-अशुद्ध वस्तुओं के सेवन से वह निर्मल एवं शुद्ध आत्मा भी अशुद्ध हो जाती है। वैसे ही जैसे अविवेकी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग से विवेकी व्यक्ति भी अविवेकी हो जाता है इसी प्रकार त्रिगुणात्मिका प्रकृति के सम्बन्ध से निगुण आत्मा भी त्रिगुणमय सा हो जाता है।

प्रकृति और पुरुष के इस सम्बन्ध को बतलाकर भगवान् वशिष्ठ ने राजा जनक के सम्मुख सांख्य और योग के मतानुसार मोक्ष तत्त्व का विश्लेषण प्रारंभ किया–राजन्! समाधिनिष्ठ योगी जिस-जिस ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार करते हैं, सांख्यवेत्ता विद्वान् भी उसी तत्त्व का अनुसरण करते हैं। जो मनीषी सांख्य और योग को फल की दृष्टि से एक समझता हूँ, यथार्थ में वही विद्वान् है। विदेहराज! जैसे बीज से बीज की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार द्रव्य से द्रव्य, इन्द्रियों से इन्द्रियां और देह से देह की उत्पत्ति होती है। परन्तु परमात्मा इन्द्रिय, बीज, देह एवं द्रव्य से सर्वथा भिन्न होने के कारण गुणों से भी अतीत होता है। जैसे आकाश आदि गुण सत्त्व आदि गुणों से उत्पन्न होते हैं और उन्हीं में लीन हो जाते हैं। उसी प्रकार सत्त्व, रज, तम आदि गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं। राजन्! पुरुष और प्रकृति ये दो तत्त्व हैं। इन दोनों के स्वरूप को प्रकट करने वाले जो सत्त्व, रज, तम तीन गुण हैं वे सब प्राकृत माने गए हैं। परन्तु जो इन सबका आधार है वह आत्मा न तो पुरुष है न प्रकृति। वह आत्मा न तो पुरुष है न प्रकृति! वह आत्मा इन दोनों से विलक्षण है। जैसे फूलों और फलों के द्वारा सदा ऋतुओं का अनुमान होता है उसी प्रकार निराकार पुरुष के संयोग से प्रकृति द्वारा उत्पन्न किए गए महत्तत्त्वों द्वारा प्रकृति का अनुमान होता है इसी प्रकार मान्तत्वादि लिंग से भिन्न जो शुद्ध चेतनरूप आत्मा है, वह भी अनुमान से बोध का विषय होता है। जैसे दृश्य को प्रकाशित करने के कारण सूर्य दृश्य पदार्थ से भिन्न है उसी प्रकार ज्ञानरूप आत्मा भी ज्ञेयवस्तु को प्रकाशित करने के कारण उससे भिन्न सत्ता रखता है। राजन्! यही पच्चीसवां तत्त्व है जो नियम रूप से सभी लिंगों में व्याप्त है। यह आत्मा जन्म मृत्यु से रहित, अनन्त सबका द्रष्टा और विकार रहित है। वह सत्त्व आदि गुणों में केवल अभिमान के कारण ही गुणस्वरूप कहलाता है। महाराज! यह निश्चित है कि गुण तो गुणवान् में ही रहते हैं, निर्गुण आत्मा में गुण कैसे रह सकते हैं? अतः गुणों के स्वरूप को जानने वाले तत्त्वदर्शियों का यही मत है कि जब जीवात्मा इन गुणों को प्रकृति का कार्य मानकर उनमें अपनेपन का अभिमान त्याग देता है। उस समय वह देह आदि में आत्मबुद्धि का परित्याग करके अपने विशुद्ध परमात्मरूप का साक्षात्कार करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांख्य और योग के विद्वान् जिसको बुद्धि के परे बताते हैं, जो परम ज्ञान का आधार है, अहंकार आदि जड़ तत्त्वों को बांध कर देने पर, शेष बचे चिन्मय तत्त्व के रूप में जिसका बोध होता है, जो अज्ञात, अव्यक्त, सगुण ईश्वर, निर्गुण ईश्वर, नित्य और अधिष्ठाता कहा गया है। वह परमात्मा ही प्रकृति और उसके गुणों की अपेक्षा पच्चीसवां तत्त्व है, ऐसा सांख्ययोग में कुशल तथा परमात्म तत्त्व का अन्वेषण करने वाले विद्वान् मानते हैं।

इसके बाद महर्षि वशिष्ठ ने महाराज मिथिलेश के सम्मुख विद्या और अविद्या के तत्त्व का विश्लेषण किया। राजन्! महर्षियों ने सृष्टि और प्रलयरूप धर्म वाले अव्यक्त को ही अविद्या कहा है। इसी प्रकार चौबीस तत्त्वों से परे जो पच्चीसवां तत्त्व परमपुरुष परमात्मा है, जो सृष्टि और प्रलय से रहित है, उसी का नाम विद्या है। चौबीस तत्त्वों में कर्मन्द्रियों की अपेक्षा ज्ञानेन्द्रियां अधिक श्रेष्ठ हैं और ज्ञानेन्द्रियों की अपेक्षा पंचमहाभूत श्रेष्ठ हैं और मन की अपेक्षा पंचतन्मात्रायें अधिक श्रेष्ठ हैं। पंचतन्मात्राओं की अपेक्षा अहंकार श्रेष्ठ है और अहंकार की अपेक्षा बुद्धि श्रेष्ठ है। अव्यक्त नामवाली जो भगवती प्रकृति है वह सम्पूर्ण तेइस तत्त्वों से अधिक श्रेष्ठ है। इसी प्रकार पच्चीसवें तत्त्व के रूप में जिस पुराण पुरुष परमात्मा का उल्लेख है, वह अव्यक्त प्रकृति से श्रेष्ठ है। ज्ञान को अव्यक्त कहा गया है और परमपुरुष ही ज्ञेय है। उसी प्रकार ज्ञान अव्यक्त है, उसका ज्ञाता परमपुरुष है। राजन्! इसी प्रकार सांख्य में पुरुष और प्रकृति दोनों को अक्षर कहा गया है तथा ये ही दोनों क्षर भी हैं। ये दोनों प्रकृति पुरुष अनादि तथा अनन्त है। अतः परस्पर संयुक्त होकर ही दोनों सर्वसमर्थ माने गए हैं। सृष्टि और प्रलय प्रकृति का धर्म है, इसलिए प्रकृति को अक्षर कहा गया है यही प्रकृति महत्तत्त्व आदि गुणों की सृष्टि के लिए बारम्बार विकृत होती है, अतएव क्षर भी है। महत्तत्त्व आदि गुणों की सृष्टि प्रकृति और पुरुष के संयोग से होती है अतः एक दूसरे का अधिष्ठान होने के कारण पुरुष को भी क्षेत्र कहते हैं। योगी जब अपने योग के प्रभाव से प्रकृति के महत्त्वत्वादि गुणसमूह को अव्यक्त मूल प्रकृति में लीन कर देता है, तब उन गुणों के विलय के साथ-साथ पच्चीसवां तत्त्व पुरुष भी परमात्मा में लीन हो जाता है। इस दृष्टि से पुरुष भी क्षर है। भाव यह है कि जब कारणभूत महदादि गुणों में कार्यभूत अहंकारादि गुण विलीन हो जाते हैं उस समय सब कुछ एकमात्र प्रकृति स्वरूप हो जाता है साथ ही जब क्षेत्रज्ञ भी परमात्मा में विलीन हो जाता है तब उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी पृथक् अस्तित्व नहीं रह जाता।[३८] महाराज! जब यह पुरुष परमात्मा में विलीन हो जाता है तब उस समय वह प्रकृति के सगुणत्व को और अपने निर्गुणत्व को यथार्थ समझ लेता है। अर्थात् उस समय त्रिगुणमयी प्रकृति क्षरत्व (नाश) को प्राप्त होती है और पुरुष भी गुणों में प्रवृत्त न होने के कारण निर्गुण अर्थात् गुणातीत हो जाता है इस प्रकार जब पुरुष को क्षेत्र का अर्थात् प्रकृति का ज्ञान नहीं रहता तब वह स्वभाव से ही निर्गुण है। इस प्रकार जब ज्ञान सम्पन्न पुरुष यह जान लेता है कि मैं अन्य हूँ और यह प्रकृति मुझसे भिन्न है, तब वह प्रकृति से रहित हो जाने के कारण अपने शुद्ध रूप में स्थित होता है। राजन्! प्रकृति से संयोग के समय उससे अभिन्न सा प्रतीत होने के कारण यह पुरुष तद्रूपता को प्राप्त हुआ सा जान पड़ता है किन्तु उस संयोगावस्था में भी उसका प्रकृति के साथ मिश्रण नहीं होता, उसकी पृथकता बनी रहती है। जब पुरुष प्राकृत गुण समुदाय को कुत्सित समझकर उससे विरत हो जाता है, उस समय वह परमद्रष्टव्य परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है और एक बार साक्षात्कार कर लेने के बाद फिर वह परमात्मा से विरत नहीं होता। विदेहराज! परमात्मा के सामीप्य से जब जीवात्मा में विवेक जागृत होता है उस समय वह इस प्रकार विचार करता है।

ओह! मैंने यह क्या किया है? जिस प्रकार मछली स्वयं ही अज्ञानवश, जाकर जाल में फंस जाती है, उसी प्रकार मैं भी आज तक प्राकृत शरीर में ही आसक्त रहा। जैसे मछली अज्ञानवश जल से अपने को भिन्न नहीं समझती, वैसे ही इस प्राकृत शरीर से मैं भी अज्ञानता के कारण अपने को भिन्न नहीं समझता था। मुझ मूढ़ को धिक्कार है, जो अज्ञान समुद्र में डूबे हुए इस शरीर का आश्रय लेकर मोहवश एक शरीर से दूसरे शरीर का अनुसरण करता रहा। वास्तव में इस संसार में परमात्मा ही मेरा एक मात्र बन्धु है, परमात्मा ही परममित्र है। अब तो मैं इसकी समानता और एकता को प्राप्त कर चुका हूँ, जैसा वह है वैसा ही मैं हूँ। यद्यपि इस समय मैं आसक्ति से सर्वथा रहित हूँ, तो भी अज्ञान एवं मोह के वशीभूत होकर इतने समय तक, इस आसक्तिमयी जड़ प्रकृति के साथ रमता रहा। मैं विकार रहित होकर भी इस विकारमयी जड़ प्रकृति के द्वारा ठगा गया। अतएव अब परमात्मतत्त्व का ज्ञान हो जाने के पश्चात् मैं इससे संसर्ग स्थापित नहीं करूँगा। किन्तु इसमें इसका अपराध नहीं है, सारा अपराध मेरा ही है जो मैं परमात्मा से विमुख होकर इस जड़ प्रकृति में आसक्त रहा यद्यपि मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वथा अमूर्त हूँ, शरीर रहित हूँ, किन्तु तो भी मैं प्रकृति की विभिन्न आकृति वाली मूर्तियों में स्थित हुआ, ममता से परास्त होने के कारण देहधारी बना रहा। इस जड़ प्रकृति के प्रति ममत्व के कारण मुझे भिन्न-भिन्न योनियों में भटकना पड़ा। यद्यपि अब मैं ममता रहित हूँ फिर भी इस प्रकृति जनित ममत्व ने भिन्न-भिन्न योनियों में डालकर मेरी बड़ी दुर्दशा की है। इस प्रकृति के साथ नाना योनियों में भटकने के कारण मेरी चेतना नष्ट हो चुकी थी। अब इस अहंकारमयी प्रकृति से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है।[३८] अभी भी यह बहुत से रूप धारण करके मेरे संग की चेष्टा कर रही है। किन्तु अब मैं प्रबुद्ध हो चुका हूँ। ममता और अहंकार से पूर्ण रहित हो चुका है। अब इस जड़ प्रकृति को और इसकी अहंकार स्वरूपिणी ममता को त्याग कर, इससे सर्वथा अतीत होकर मैं निरामय परमात्मा की शरण लूँगा। उन्हीं पुराणपुरुष परमात्मा के साथ संयोग करने में मेरा कल्याण है, प्रकृति के साथ नहीं। इस प्रकार उत्तम विवेक के द्वारा अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर, चौबीस तत्त्वों से परे पच्चीसवाँ तत्त्व जीवात्मा क्षर भाव का त्याग कर निरामय अक्षर भाव का प्राप्त होता है। मिथिलानरेश! अव्यक्त प्रकृति, व्यक्त महत्त्व आदि, सगुण, (जड़वर्ग) पंचभूतादि, निगुण आत्मा तथा सबके आदिभूत से निर्गुण परमात्मा का साक्षात्कार करके मनुष्य स्वयं भी वैसा ही हो जाता है।

अव्यक्तं व्यक्तधर्माणं सगुणं निर्गुणं तथा।
निर्गुणं प्रथमं दृष्ट्वा तादृग् भवति मैथिल॥

—महा०, शान्तिपर्व, अ० ३०६/४१

राजन्! यह जीवात्मा वास्तव में चौबीस तत्त्वों से अतीत है, अतः तद्रूप नहीं होता है अपितु ज्ञानवान् होने के कारण, ब्रह्मज्ञान का उदय होने पर, यह जीवात्मा शीघ्र ही प्राकृत तत्त्वों का त्याग कर देता है और उसमें शुद्ध-बुद्ध नित्य ब्रह्म के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। मैं पच्चीस तत्त्वों से भिन्न छब्बीसवाँ परमात्मा हूँ, नित्य ज्ञानसम्पन्न और अजर-अमर हूँ, इस प्रकार जीवात्मा विचार करते-करते केवल विवेक बल से ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है जीवात्मा ज्ञानस्वरूप परमात्मा के प्रकाश से ही जड़वर्ग को जानता है, किन्तु जड़वर्ग महदादि को जानकर भी परमात्मा को न जानने के कारण वह अज्ञानी ही रह जाता है निष्पाप नरेश। यह अज्ञान ही जीव के नानात्वरूप बन्धन का कारण है। जीवात्मा विवेक का आश्रय लेकर जड़वर्ग से अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ता, तब नित्य चेतन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा से संयुक्त होकर जीवात्मा परमात्मा से एकाकार हो जाता है छब्बीसवां तत्त्व परमात्मा अजन्मा, सर्वव्यापी और नि:सङ्ग है, उसकी शरण लेकर जब जीवात्मा उसके स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है, तब ब्रह्मज्ञान के प्रभाव से स्वयं भी सर्वव्यापी हो जाता है तथा चौबीस तत्त्वों वाली प्रकृति को असार समझकर त्याग कर देता है।

महाराज! इस प्रकार मैंने आपसे अप्रतिबुद्ध (क्षर), बुध्यमान (अक्षरजीवात्मा) और बुद्ध (ज्ञान स्वरूप परमात्मा)–इन तीनों का श्रुति के अनुसार यथार्थ रूप से प्रतिपादन किया है। राजन्! जैसे गूलर और उसके कीड़े एक साथ रहते हुए भी परस्पर भिन्न है उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष भी परस्पर भिन्न स्वभाव वाले हैं। जैसे मछली और जल एक साथ रहते हुए भी परस्पर भिन्न स्वाभाव वाले उसी प्रकार प्रकृति और पुरुष में भी भेद उपलब्ध होता है अव्यक्त प्रकृति का पुरुष से जो नित्य भेद है, इस भेद का यथार्थ ज्ञान होते ही पुरुष प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाता है इसी का नाम मोक्ष है। प्रकृति के बन्धन से छूटने के लिए पुरुष के लिए यही एक मात्र उपाय है। पुरुष की यह विशेषता है कि वह दूसरे से मिलकर उसी का समानधर्मी हो जाता है। मिथिलेश! यह जीवात्मा (पुरुष) शुद्ध पुरुष का सङ्ग करके विशुद्ध धर्म वाला होता है, किसी ज्ञानी का सङ्ग करने से ज्ञानी होता है मुक्त पुरुष के सङ्ग से उसमें मुक्त के से लक्षण प्रकट होते हैं। जिसके आचार–विचार शुद्ध है, उससे मिलने पर वह पवित्रकर्मा होता है, निर्मल अन्त:करण वाले पुरुष के सङ्ग से वह निर्मलात्मा होता है अद्वितीय परमात्मा से सम्पर्क स्थापित कर वह तद्रूपता को प्राप्त हो जाता है, स्वतंत्र परमेश्वर से सम्बन्ध रखने के कारण वह प्रकृति के बन्धन से पूर्ण स्वतंत्र होकर केवल परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।[३९]

राजन्! जो वेद में श्रद्धा रखने वाला न हो, उसे कभी भी इस परम ज्ञान का उपदेश नहीं करना चाहिए। जिसे ज्ञान की तीव्र पिपासा हो, तथा जो जिज्ञासुभाव से शरण में आया हो, वही इस उत्तम ज्ञान के श्रवण का अधिकारी है। महाराज! जो श्रद्धालु हो गुणगान हो, जो परनिन्दा से सदा दूर रहता हो, विशुद्ध योगी और विद्वान् हो, सदा उद्योगशील, क्षमाशील और परोपकारी हो, एकान्तशील, विवादहीन और बहुश्रुत हो, बुद्धिमान और दूसरों के अहित से दूर हो, इन्द्रिय संयम और मनोनिग्रह में समर्थ हो ऐसे पुरुष को ही इस परम ज्ञान का उपदेश देना चाहिए।[४०] महाराज! यह ब्रह्मज्ञान सुनकर अब आपके हृदय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भय का लेश भी नहीं रहना चाहिए। वह परमब्रह्म परमपवित्र, शोकरहित आदि मध्य और अन्त में शून्य, जन्म-मृत्यु की व्याधि को हरने वाला, निरामय, निर्भय तथा कल्याणमय है। राजन्! यह परमब्रह्म परमात्मा सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान का तात्विक अर्थ है।[४१]

स्वयम्भू ब्रह्मा

३० वेदव्यासों में ब्रह्मा सर्वप्रथम है। भारतीय परम्परा में स्वयम्भू ब्रह्म को सभी विद्याओं का मूलप्रवर्तक माना गया है इतिहास-पुराणों से ज्ञात होता है कि पृथ्वी के ज्ञात इतिहास में स्वयम्भू प्रथम ऐतिहासिक पुरुष था, उनका अपत्य हुआ स्वयम्भूव मनु। अपत्यनाम झूठे नहीं हो सकते, अतः स्वयम्भू और उनका पुत्र स्वायम्भूव मनु दोनों ही ऐतिहासिक पुरुष मानने पड़ते हैं, वैसे 'ब्रह्मा' पद एक उपाधि थी, जो अनेक पुरुषों ने धारण की। महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ३८५ के अनुसार सात ब्रह्मा हो चुके हैं, जिनके नाम थे :

(१) मानस ब्रह्मा
(२) चाक्षुष ब्रह्मा
(३) वाचस्पत्य ब्रह्मा
(४) श्रावण ब्रह्मा
(५) नासिक्य ब्रह्मा
(६) हिरण्यगर्भ ब्रह्मा (अण्डज)
(७) कमलोद्भव (पद्मज) ब्रह्मा

वर्त्तमान मानव का ज्ञात इतिहास सप्तम पद्मज ब्रह्मा से आरम्भ होता है इस वर्त्तमान मानवसृष्टि से पूर्व न जाने कितनी बार इस पृथ्वी पर मानवसृष्टि हुई होगी, इसको कौन जाने। वेद में उल्लेख है 'अर्वाक् देवाः' जब देवता ही उत्तरकाल में उत्पन्न हुए, तो देवों से पूर्व के इतिहास को मनुष्य कैसे जान सकता है फिर भी सात ब्रह्माओं की स्मृति इतिहास-पुराणों में विद्यमान है, जिनसे सात वार मानवसृष्टि हुई।

प्राणियों में ब्रह्मा सर्वप्रथम उत्पन्न हुए–

'भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे'। –अथर्ववेद

ब्रह्मा स्वयं आकाशादि से उत्पन्न हुआ, इसलिए उसको 'स्वयम्भू' कहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। यही अर्थ 'आत्मभू' शब्द का है। 'आत्मभू' पद का अपभ्रंश हुआ 'आदम'। यहूदी और अरब उसको 'आदम' ही कहते थे। बाइविल (ओल्ड टेस्टामेन्ट) में बाबा आदम और हौवा (स्त्री-शतरूपा) की कथा मिलती है। 'आदम' की सन्तान 'आदमी' कहलाई। यह 'आदम' ही भारतीय आत्मभू (स्वयम्भू ब्रह्मा) था।

पुरातन इतिहास डार्विन के विकासवाद का खण्डन करता है कि मनुष्य शनैः-शनैः बन्दर से विकसित हुआ। वास्तव में मनुष्य प्रारम्भ से ही मनुष्य था। 'मनुष्य' शब्द का अर्थ निरुक्त (३,२,७) में इस प्रकार बतलाया है–

मनुष्याः कस्मान्मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति, मनस्यमानैन सृष्टाः।
मनस्यतिः पुनर्मनस्वीभाषे मनोरपत्यं मनुषो वा॥ ७॥

'क्योंकि मनुष्य, मनुष्य इसलिए है कि वह कार्य बुद्धिपूर्वक करता है अथवा बुद्धिपूर्वक उसकी सृष्टि हुई है, अथवा मनु या मनुष् का अपत्य (सन्तान) है।'

स्वयम्भू के अनेक नाम प्राचीन ग्रन्थ में मिलते हैं, यथा, ब्रह्मा, स्वयम्भू आत्मभू, आदिदेव, हिरण्यगर्भ, पुरुष, प्रजापति, पद्मगर्भ, पद्मयोनि इत्यादि।

ब्रह्म निश्चय ही प्रथम ऐतिहासिक मानव था। वह सर्वज्ञानमय था। पृथ्वी पर समस्तज्ञान का प्रादुर्भाव ब्रह्मा से हुआ। वेदों का प्रथम उपदेष्टा या निर्माता ब्रह्म था :

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्व
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। –श्वेताश्वतरोपनिषद्

मुण्डकोपनिषद् में स्पष्ट लिखा है–

ब्रह्मा देवतां प्रथमः सम्वभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामर्थर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥

'ब्रह्मा' ने सब देवों से पहले जन्म लिया, 'वह सबका कर्त्ता और प्राणियों का रक्षक था। उसने सर्वाविद्याओं का सारभूत ब्रह्मविद्या को अपने ज्येष्ठपुत्र अथर्वा को पढ़ाया।'

यहाँ पर अथर्वा या भृगु का पिता ब्रह्म को बतलाया है, परन्तु इतिहास से ज्ञात है कि अथर्वा वरुण आदित्य के पुत्र थे, इसी प्रकार दक्ष प्रजापति प्रचेताओं के पुत्र थे, परन्तु उन्हें ब्रह्मा का पुत्र भी कहा जाता है, इसी प्रकार रूद्र, सनत्कुमार, नारद, वशिष्ठ इत्यादि के विषय में भी समझना चाहिए। वेदों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिरिक्त धर्मशास्त्र, आयुर्वेद इत्यादि ही नहीं रामायण, पुराण और महाभारत तक को ब्रह्मा से सम्बद्ध कर दिया गया है। प्रतीत होता है कि जब किसी नवीन शास्त्र का प्रादुर्भाव होता था तथा किसी वंश के आदिपुरुष (प्रवर्तक) का नाम विस्मृत हो जाता था तो उसे एकदम ब्रह्मा से सम्बद्ध कर दिया जाता था। परन्तु इससे आत्मभू ब्रह्मा की ऐतिहासिकता का अपलाप नहीं होता, परन्तु इससे ब्रह्मा का प्राथम्य ही प्रथित होता है।

स्वायम्भुवमन्वतर के प्रारम्भ में मधुकैटभ दानवों ने ब्रह्मा से वेदों का अपहरण कर लिया था। यह निश्चत ही ऐतिहासिक घटना थी, जिसका समय निश्चित करना अत्यन्त दुष्कर है। यह घटना देवयुग से पूर्व बराहावतार से भी पूर्व की है। इसका समय न्यूनतम २००,०० वि॰ पूर्व था। उस समय हयशिरोधर नाम के महापुरुष ने रसातल से वेदों को लाकर ब्रह्मा को दिया–

एतस्मिन्नन्तरे राजन् देवो हयशिरोधरः।
जग्राह वेदानखिलान् रसातलमतान् हरिः॥–महा॰, शान्तिपर्व, अ॰ ३७५

ब्रह्मा को, वेदों के अतिरिक्त, निम्न शास्त्रों का आदिप्रणेता बतलाया गया है–

(१) पुराण
(२) ब्रह्मविद्या (उपनिषद्)
(३) योगशास्त्र (हिरण्यगर्भ–योगशास्त्र)
(४) आयुर्वेद
(५) हस्त्यायुर्वेद
(६) रसतन्त्र
(७) धनुर्वेद
(८) शिल्पशास्त्र
(९) धर्मशास्त्र (चित्रशिखण्डी धर्मशास्त्र)
(१०) अर्थशास्त्र (राजनीतिशास्त्र)
(११) कामशास्त्र
(१२) ब्राह्मीलिपि
(१३) ज्योतिष शास्त्र (पैतामहसिद्धान्त)
(१४) गणित
(१५) अश्वशास्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१६) पदार्थ विज्ञान
(१७) इतिहास
(१८) नाट्यवेद

वेदों के साथ वेदव्यास ब्रह्मा का पुराणों से घनिष्ट सम्बन्ध माना जाता है

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मण स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्योः वेदास्तस्य विनिसृताः॥ –मत्स्यपुराण ३.३

आदिपुराण या मूलपुराण, जो कि प्रथमपुराण है उसको ब्रह्मा के नाम से ब्रह्मपुराण कहा जाता है।

प्रजापति ब्रह्मा की श्रुति नित्य मानी जाति है और शाखाएँ या पाठान्त इसके विकल्प हैं–

'प्राजापत्य श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे स्मृताः॥' –वायुपुराण ६१.६५

प्राचीनतम के अनुसार वेदमन्त्र या छन्द नित्य है, वे बनाए नहीं जाते–**'न च्छान्दासि क्रियन्ते नित्यांनि च्छन्दांसि इति, मद्यप्यर्थों नित्यां वा त्वसौ वर्णानुपूर्वी सा नित्याः, तद्भेदाच्चैवं तद् भवति काठकं कालापकं मौदकं पैप्पलादकमिति॥'** इन मंत्रों का अर्थ या वर्णानुपूर्वी नित्य होती है। वर्णानुपूर्वी के अन्तर से ही काठक, कालापक, मोदक या पैप्पलाद भेद प्रथित हुए।

इस समय वेदमन्त्रों के समस्तपाठ शाखा या पाठान्तर ही है। ब्रह्मा के मूलमंत्र कितने सुरक्षित हैं, यह निर्णय करना असम्भव है। शतपथ ब्राह्मण (१०.४.२.२३) के अनुसार प्रजापति द्वारा रचित द्वादशसहस्र ऋचाएँ थीं–

'द्वादश बृहतीसहस्राण्येतावत्यो ह्यार्चो याः परमेष्ठी (कश्यप) प्रजापति सृष्टाः।'

ये प्रजापति कश्यप भी हो सकते हैं, जो वेदों के मूलप्रवर्तकों में एक थे, तथा वे ही देवों और पूर्वदेवों (दानवों) पिता थे। इनको यज्ञशील होने के कारण 'परमेष्ठी' कहा जाता था। बृहदारण्यक की पूर्वनिर्दिष्ट वंशसूची में 'परमेष्ठी' 'स्वयम्भू' के शिष्य कथित है। प्रतीत होता है कि वेदों के आदिप्रणेता या प्रवर्तक परमेष्ठी कश्यप ही थे, इनकी श्रुति को 'प्राजापत्यश्रुति' कहा जाता था। शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में जहाँ भी ऐतिहासिक प्रजापति का उल्लेख है, वहाँ कश्यप से ही तात्पर्य है–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'स प्रजापतिरिन्द्रं ज्येष्ठं पुत्रमपन्यधत्त। नेदेनकसुरा बलीयांसोऽहन्निति।
—तैत्तिरीय ब्राह्मण १.५.९

'देवाश्च वा असुराश्च प्रजापतेर्द्वय्याः पुत्रा आसन्।
—ताण्ड्य ब्राह्मण १८.१.२

अतः जो लोग 'प्रजापति' का अर्थ 'ब्रह्मा' लगाते हैं, वे महान् भ्रम में हैं। पुराणों में भी बहुधा उल्लिखित 'प्रजापति' भी कश्यप ही हैं।

सम्भवतः सर्वप्रथम प्रजापति कश्यप ने ही एकसहस्र सूक्तों की रचना की थी—

जातवेदस्यं सूक्तसहस्त्रमेकम्
ऐन्द्रात्पूर्वं कश्यपस्यार्ष वदन्ति।
जातवेदसे सूक्तामाद्यं तु तेषाम्।
एकभूयस्त्वं मन्यते शाकपूणिः॥ —बृहद्देवता ३/१३०

'कुछ विद्वान् कहते हैं कि ऐन्द्रसूक्त (ऋग्वेद १, १००) से पूर्व जातवेदा अग्नि से सम्बन्धित एक सहस्र सूक्तों के ऋषि कश्यप थे। इनमें प्रथमसूक्त 'जातवेदसे' हैं, शाकपूणि के मत से इनमें एक मन्त्र की क्रमशः वृद्धि होती है।' इस सम्बन्ध में सर्वानुक्रमणी के वृतिकार षड्गुरुशिष्य ने शौनक आर्षानुक्रमणी का यह पाठ उद्धृत किया है—

खिलसूक्तानि चैतानि त्वाद्यैकर्चमधीम हे।
शौनकेन स्वयं चोक्तमृष्यनुक्रमणेऽत्विदम्॥
पूर्वात्पूर्वा सहस्त्रस्य सूक्तानामेकभूयसाम्।
जातवेदसे इत्याद्यं कश्यपार्षस्य शुश्रुम॥
सयोवृषीयान्ता वेदध्यास्त्वखिलसूक्तगाः।
ऋचस्तु पंचलक्षाः स्युः सैकोनशतपञ्चकम्॥

पण्डित भगवद्दत ने लिखा है 'अर्थात् इन ९९९ सूक्तों में ५००४९९ मन्त्र थे।' अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या ये मन्त्र कभी ऋग्वेद के अंग थे। माध्यदिन शतपथ ब्राह्मण ने याज्ञवल्क्य के कथन का यह अभिप्राय है कि नहीं, ऐसा नहीं था। वहाँ लिखा है—द्वादशबृहतीसहस्राणि। एतावत्यो ह्यर्चो या प्रजापतिसृष्टाः। अर्थात् प्रजापति (कश्यप) सृष्ट (रचित) ऋचायें बारह सहस्र बृहती छन्द परिमाण की है। (वैदिक वाङ्मय का इतिहास, पृ० ९८) पं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवद्दत के विपरीत हमारा विचार है कि पाराशर्य व्यास सम्पादित ऋग्वेद में ही द्वादशसहस्र ऋचाएँ थी, जिनका उल्लेख याज्ञवल्क्य ने किया है। देवयुग एवं उससे पूर्व प्रजापतियुग में वेदों में लाखों ऋचाएँ थीं, जो इस समय क्या याज्ञवल्क्य और व्यास के समय ही अधिकांश लुप्त हो गई थी, पाराशर्य-व्यासपूर्व २७ व्यासों एवं कश्यप जैसे आद्य महर्षियों ने वेदों की लाखों ऋचाओं क्री सृष्टि की थी। वेद का वर्तमान रूप सनातन नहीं है, इसमें परिवर्तन होता आया है और याज्ञवल्क्य और कश्यप में कम से कम द्वादशसहस्र वर्षों का अन्तर था, इतने दीर्घकाल में वेदों का स्वरूप कितना लुप्त या परिवर्तित हुआ होगा, यह विचारणीय है। अतः कश्यप ने पञ्चलक्षणात्मक ऋग्वेद का सम्पादन किया, यह सत्य है। कश्यप के पिता मरीचि स्वायम्भुव मन्वन्तर किया चाक्षुषन्वन्तर के प्रधान ऋषि थे। ये मरीचि आद्य सप्तर्षियों में प्रधान थे।

भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा।
मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसम्।

ये मरीचि आदि ऋषि प्रचेताओं के पुत्र या वंशज थे। देवयुग में इनका अस्तित्त्व ज्ञात नहीं होता, अतः ये पृथुवैन्य के काल में हुए और इन्होंने इसी समय 'चित्र शिखण्डी' नाम से प्रसिद्ध लक्षश्लोकात्मक धर्मशास्त्र रचा। मरीचि देवयुग से पूर्व ही परलोक सिधार गए थे। इनके पुत्र कश्यप प्रधान थे, जिनका उल्लेख बृहद्देवता में इस प्रकार है—

प्रजापत्यो मरीचिर्हि मारीचः कश्यपो मुनिः।
तस्य देव्योऽभवञ्जाया दाक्षायण्यस्त्रयोदश।
तत्रैका त्वदितिर्देवी द्वादशाजनयत्सुजान्।
भगश्चैवार्यमांशश्च मित्रो वरुण एव च।
धाता चैव विधाता च विवस्वांश्च महाद्युतिः॥
त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते॥

(बृहद्देवता ५.१४३, १४६, १४७, १४८)

'प्रजापति के पुत्र मरीचि थे, मरीचि के पुत्र हुए कश्यपमुनि। दक्ष की तेरह पुत्रियाँ कश्यप की पत्नियाँ थीं। इनमें से एक अदितिदेवी ने बारह पुत्रों को जन्म दिया—भग, अर्यमा, अंश, मित्र, वरुण, धाता, विधाता, महातेजस्वीविवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें विवस्वान् वेदों के पांचवें व्यास थे और इन्द्र सातवां वेदव्यास था। इससे पूर्व कुछ अन्य वेदाचार्यों का परिचय लिखते हैं।

पराशर

पराशर–सत्ताईसवां व्यास–शक्ति के पुत्र पराशर छब्बीसवें व्यास थे, इनका एक नाम 'शतयातु' ऋग्वेद में मिलता हैं।

पराशर के वंशज जातूकर्ण सत्ताईसवें और कृष्णद्वैपायन तीसवें व्यास थे। इतिहास के अनुसार आद्य पराशर और कृष्णद्वैपापन में २००० वर्षों का अन्तर था। इस विषय का विस्तृत विवेचन आगे करते हैं।

अट्ठाईसवां व्यास-हिरण्यनाभकौसल्य–उन्तीसवां व्यास–जातूकर्ण–तीसवां व्यास-कृष्णद्वैपयान पाराशर्य (अन्तिम) व्यास-इनको अर्वाचीनतम व्यास होने से 'व्यासक' भी कहते थे, जिससे इनके पुत्र की संज्ञा (विशेषण–अपत्यनाम) वैयासकि (शुक्र) प्रथित हुई।

इनके पिता पराशर या पाराशर मुनि थे। यह ध्यातव्य है कि इतिहास में वाशिष्ठ और पाराशर नाम के अनेक ऋषि हुए थे, क्योंकि प्राचीनकाल में ऋषियों की प्रसिद्धि प्रायः गोत्रनाम से होती थी, अतः नामसाम्य से इतिहास भ्रम होता है। पराशर, पाराशर एवं पाराशर्य के सम्बन्ध में यही भ्रम हुआ। इन नामों से प्रसिद्ध अनेक व्यक्ति हुए। इन सबको एक मानकर महान् भ्रम उत्पन्न हुआ।

अतः शक्तिपुत्र पराशर और कृष्णद्वैपायन पिता पाराशर एक व्यक्ति नहीं थे, द्वैपायनपिता मात्र पराशर गोत्रीय ब्राह्मण थे, इनके पिता का नाम 'द्विष पाराशर' था, इसलिए इनका नाम द्वैपायन पाराशर्य हुआ। शक्ति और कृष्ण द्वैपायन के समय में न्यूनतम २५०० वर्षों का अन्तर था, इनके मध्य २० या २५ पीढ़ियाँ अवश्य हुई होगी।

कृष्णद्वैपायन के पिता आदिपराशर नहीं थे, इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि इनके गुरु जातूकर्ण[४२] (मूलपुरुष जतूकर्ण) भी पाराशर ब्राह्मण थे, यदि कृष्णद्वैपायन ही पराशर के प्रथम पुत्र होते तो जतूकर्ण, पञ्चशिख आदि कृष्णद्वैपायन के पूर्ववर्ती पाराशर्य ब्राह्मण कैसे हो सकते थे। अतः कृष्णद्वैपायन के पिता 'द्विष पराशरगोत्रीयब्राह्मण थे, आदिपराशर नहीं।

जातूकर्ण्य नाम के भी अनके ब्राह्मण आचार्य हुए थे, शंखायनश्रौतसूत्र में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जड़ जातूकर्ण्य आचार्य का उल्लेख है। ऋग्वेद की एक जातूकर्ण्य शाखा भी थी। अतः पराशर के वंशज जातूकर्ण्य ही अनेक थे, तो अनेक पाराशर्य क्यों नहीं हो, वर्त्तमान उपलब्ध प्रायः समस्त वैदिक एवं पौराणिक वाङ्मय पाराशर्य व्यास एवं उनके शिष्य प्रशिष्यों द्वारा सम्पादित एवं संकलित है। इन्हीं पाराशर्य व्यास ने कलिसंवत् से प्रायः दो सौ वर्ष (२००) पूर्व स्ववेदशाखाचरण का प्रवर्तन किया। पाश्चात्यलेखक प्रायः पाराशर्यव्यास का अस्तित्व ही नहीं मानते, क्योंकि उनको अपने काल्पनिक मतों पर कुठाराघात का भय व्यासजी और उनके महाभारत से ही था। अतः उन्होंने इनके अस्तित्त्व पर ही प्रहार किया।[४३]

जब, पाशचात्य लेखक पाराशर्य व्यास के अस्तित्त्व को ही स्वीकार नहीं करते, तो प्राक्पाराशर्य २९ व्यासों की कथा का उनके सम्मुख क्या मूल्य है। इस समय पाराशर्य व्यास ही वेदवाङ्मयवृक्ष के मूल है, जब इस मूल को उखाड़ दिया जाए, तब उसकी शाखा-प्रशाखाएँ कहाँ रहेगी। अतः जब उन्होंने व्यासजी के अस्तित्त्व पर ही हाथ फेर दिया तो उनके शिष्य प्रशिष्य वैशम्पायन चरक, सुमन्तु, जैमिनि, याज्ञवल्क्य, आपस्तम्ब, कात्यायन आदि कहाँ रहे। अतः जिस प्रकार कौटिल्य ने समूल नन्दवंश का नाश किया, उसी प्रकार पाश्चात्त्य लेखकों ने समूल भारतीय सत्य इतिहास को खोद डाला।[४४] यह सब काम उन्होंने मैकाले की योजना के अन्तर्गत किया। परन्तु भारतीय इतिहास की जड़ें तो पाताल में गई हुई थी, उसे पूरी तरह नहीं उखाड़ पाए।

अतः पाराशर्यव्यास न केवल भारतीय इतिहास के प्रधान पुरुष वरन् वैदिक वाङ्मय के प्रधानस्तम्भ आचार्य थे। इनका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण,[४५] गोपथब्राह्मण[४६], तैत्तिरीयारण्यक[४७], बौधायनगृह्यसूत्र जैसे अनेक वैदिकग्रन्थों में मिलता है।

व्यासजी समस्त वेदवेताओं में सर्वश्रेष्ठ थे।[४८]

वेदव्यास अद्वितीय यज्ञवेता (ऋत्विक) थे, जिनके शिष्य सब यज्ञों में निपुण होकर पृथिवी पर (यज्ञकार्यार्थ) विचरण करते थे।[४९]

इनके विषय मे पुराणों में कहा गया है कि समस्तवेद ब्राह्मण भाग सहित इनके पास स्वयं ही उपस्थित हो गया, केवल लोकधर्म का पालन करते हुए, इन्होंने गुरु जातूकर्ण्य से वेद पढ़ा।[५०]

पूर्वयुगों में रचित वेदवाङ्मय अस्त-व्यस्त हो रहा था। व्यासजी ने देखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उनके समय में मनुष्यों की आयु एवं शक्ति क्षीण होती जा रही है। अतः उन्होंने सभी पुरातन वेदसंहिताओं का सार संकलित करके चार वेद बनाए, जिससे वे भी 'व्यास' कहलाए।[५१]

पाराशर्यव्यास का जन्म राजराजेश्वर शन्तनु के राज्यकाल में हुआ था। इनके पिता 'द्विप' पराशरगोत्रीयब्राह्मण थे, अतः इनका नाम हुआ 'कृष्णद्वैपायन पाराशर्य'। इनकी माता राजा उपरिचर वसु की पुत्री 'सत्यवती' थी, जिसका पालन दाशराज ने किया था, ये कुमारी कन्या से यमुनातट पर उत्पन्न हुए, इसलिए 'कानीन' भी कहे जाते हैं। इनके शरीर का रंग काला था, अतः इनका नाम 'कृष्ण' हुआ। व्यासजी का जन्म वर्तमान झांसी के निकट कालपीग्राम में हुआ था। उन्होंने स्वगोत्रीय (पाराशर ब्राह्मण) जातूकर्ण्य से विद्या पढ़ी। प्रतीत होता है कि पाराशर्यव्यास से पूर्व वशिष्ठ, सारस्वत, हिरण्यनाभ, बाल्मीकि आदि के द्वारा सम्पादित वेदमन्त्रों की अनेक संहितायें थीं। उन्होंने सभी संहिताओं से सार संकलित[५२] करके ऋग्वेदादि चार संहिताएं बनाईं। वेदों में अनन्तर व्यास जी ने लक्षश्लोकात्म्क महाभारतसंहिता[५३] की रचना की। महाभारत (इतिहास पुराण) को पञ्चमवेद कहा जाता था। (इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदः, छा० उ०) इन पाँचों वेदों को व्यासजी ने अपने पुत्र सहित पाँच शिष्यों को पढ़ाया–

वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान्।
सुमन्तुं जैमिनि पैलं शुक्रं चैव स्वमात्मजम्।
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पा यनमेव च।। –महा०, आदिपर्व ६३/८६-७०

महाभारत सहित पाँच वेदों का अध्यापन व्यासजी ने सुमन्त, जैमिनि, पैल, शुक्र (अपने पुत्र) एवं वैशम्पायन को कराया।' इनमें पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनी को सामवेद और सुमन्तु को अथर्ववेद का विशेष अध्यन कराया।

सन्दर्भ

१. श्री सूरमचन्द जी ने 'आयुर्वेद का इतिहास' (अष्टम अध्याय) में बार्हस्पत्य भरद्वाज और द्रोणपिता भारद्वाज को एक सिद्ध करने के लिए जी-जान का जोर लगाया है। लगभग यही मत पं० भगवद्दत्त का है–द्र० पृ० १४९, भारत वर्ष का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. सं॰ व्याकरणशास्त्र का इतिहास, पृ॰ ६८
३. वैदिक ब्राह्मणग्रंथों में भी भृगु को वरुण का पुत्र बतलाया गया है– यथा शत॰ ब्रा॰ में "भृगुर्ह वै वारुणिः। वरुणं पितरं विद्ययातिमेने।" (११.६.१.१), ऐतरेय ब्राह्मण में–तं॰ वरुणों न्यगृह्णीत। तस्मात् स भृगुर्वारुणिः। (१.१३.१०) जैमिनीय ब्राह्मण में भृगु को षडङ्गवेदविद कहा है–"भृगुर्ह वारुणिः अनूचान आस।" (१.४२)
४. नारायणो जगन्मुर्तिः अन्तरात्मा सनातनः।
कूटस्थोक्षर अव्यक्तो निर्लेपो व्यापक प्रभुः।।
स सिसृक्षुः सहस्रांशादसृजत् पुरुष प्रभुः।
मानसो नामविख्यातः श्रुतपूर्वो महर्षिभिष्ठ।
अनादिनिधनो देवः तथामेद्योजरामरः।। –महा॰, शान्तिपर्व, अ॰ १८२.११
५. यह क्रम श्रुतिसम्मत क्रम से भिन्न है। श्रुति में आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति का वर्णन है।
६. पृथिव्यन्तं समुद्रास्त समुद्रान्तु तमः स्मृतम्।
तमसोऽन्ते जलं प्राहुः जलस्यान्तेऽग्निरेव च।।–महा॰, शान्तिपर्व, अ॰ १८२.६
७. रसानां सर्वगंधानां स्नेहानां प्राणिनां तथा।
भूमिर्योनिरिह ज्ञेया यस्यां सर्वं प्रसूयते।। –महा॰, शान्तिपर्व, अ॰ १८३.१६
८. चेष्टा वायुः रवमाकांश ऊष्माग्निः सलिलं द्रवः।
पृथिवी चात्र संघातं शरीरं पाञ्चभौतिकम्।। –महा॰, शान्तिपर्व, अ॰ १८४.४
९. पुण्यापुण्यैस्तया गन्धैः धूपैश्च विविधैरपि।
अरोगाः पुष्पिताः सन्ति तस्माज्जिध्रन्ति पादपाः।।
१०. पादैः सलिलपानाच्च व्याधीनां चापि दर्शनात्।।
व्याधिप्रतिक्रियत्त्वाच्च विद्यते रसनं द्रुमे।।
११. वक्त्रेणोत्पलनालेन यथोर्ध्वं जलमाददेत्।
तथा पवन संयुक्तः पादैः पिबति पादपः।।
१२. सुखदुःखयोश्च ग्रहणात् छिन्नस्य च विरोहणात्।
जीवं पश्यामि वृक्षाणां अचैतन्यं न विद्यते।।
१३. तेन तज्जलमादतं जरयत्यग्निमारुतो।
आहारपरिणामाच्च स्नेहो वृद्धिश्च जायते।।
–महा॰, शान्तिपर्व, अ॰ १८४.१४-१८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४. न प्राणाशोऽस्ति जीवस्य दत्तस्य च कृतस्य च।
यातिं देहान्तरं प्राणी शरीरं तु विशीर्यते।। –महा०, शान्तिपर्व, अ० १८७.

१५. तथा शरीरसंत्योग जीवो ह्याकाशवत् स्थितः।
न गृह्यते तु सूक्ष्मत्वात् तथा ज्योतिनं संशय।–महा०, शान्तिपर्व, अ० १८७

१६. आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतैः गुणैः।
तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः।।

१७. आत्मानं तं विजानीहि सर्वलोकहितात्मकम्।
तस्मिन यः संश्रितो देहे ह्यब्बिन्दुरिव पुष्करे।।

१८. न जीवनाशोऽस्ति हि देहभेद मिथ्यैतदाहुर्मृत इत्यवुद्धाः।
जीवस्तु देहान्तरितः प्रयाति दशाधतैवास्य शरीर भेदः।।

–महा०, शान्तिपर्व, अ० १८७.२४, २५,

१९. शोचेन सततं युक्तः सदाचारसमन्वितः।
सानुक्रोशश्च भूतेषु तद् द्विजातिषु लक्षमण्।।

–महा०, शान्तिपर्व, अ० १८९.

२०. सत्यमर्जवमक्रोधः संविभागो दमः शमः ।
अनुसूयाविहिंसा च सौचमिमिन्द्रयसंयमः ।
पावनानि महाराज ! नराणां पुण्यकर्मणाम् ।।

–महा०, वनपर्व, अ० २५९/

२१. विशेषस्त्वत्र विज्ञेयो न्यायेनोपार्जितं धनम् ।
देशे काले च पात्रे च साधुभ्यः प्रतिपादयेत् ।।

२२. अन्यायात् समुपान्तेन दानधर्मो धनेन यः ।
क्रियते न स कर्तारं त्रायते महतो भयात् ।।

–महा०, वनपर्व, अ० २५९/३२,

२३. पात्रे दानं स्वल्पमपि काले दन्तं युधिष्ठिर।
मनसा हि विशुद्धेन प्रेत्यानन्तफलं स्मृतम्।। –महा०, वनपर्व, अ० २५९/

२४. निराहरस्तु स मुनिः उञ्छमार्जयते पुनः।
न चैनं विक्रियां नेतुं अशकत् मुद्गलं क्षुदा।।
न क्रोधो न च मात्सर्यं नावमानो न सम्भ्रमः।
सपुत्रदारमुञ्छन्तं आदिवेश द्विजोन्तमम्।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५. क्षुद् धर्मसंज्ञां प्रणुदति आदन्ते धैर्यमेव च।
रसानुसारिणी जिह्वा कर्षत्येव रसान् प्रति।।

—महा०, वनपर्व, अ० २६०/१९,२०,२४

२६. कृतस्य कर्मणस्तत्र भुज्यते सत्फलं दिवि।
न चान्यत् क्रियते कर्म मूलच्छेदेन भुज्यते।।

२७. सोऽत्र दोषो मम मतः तस्यान्ते पतनं च यत्।
सुखव्याप्तमनस्कानां पतनं यत्त्व मुद्गल।।

—महा०, वनपर्व, अ० २६१/२८,२९

२८. इह यत् क्रियते कर्म तत परत्रोपभुज्यते।
कर्मभूमिरियं ब्रह्मन् फलभूमिरसौ मता।। —महा०, वनपर्व, अ० २६१/३५

२९. सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।
पर्यायणोपसर्पन्ते नरं नेमिमरा इव।। —महा०, वनपर्व, अ० २६१/४५

३०. आशीविषविषं तीक्ष्णं ततस्तीक्ष्णतरो द्विजः।
ब्रह्माशोविषदग्धस्य नास्ति कश्चित् चिकित्सकः

—महा०, अनुशासनपर्व, अ० १५९/३३

३१. ऋ० १.१४६.१ इत्यादि।

३२. ऋ० १.१५३.१ इत्यादि।

३३. ऋ० १.१५४.१-३।

३४. कृष्ण द्वैपायन ही एकमात्र पाराशर (या पाराशर्य) नहीं थे। ब्राह्मण ग्रन्थों एवं इतिहास पुराणों में अनेक पाराशर्यों का उल्लेख मिलता है—यथा बृहदारण्यक (२.६.३) में चार पाराशर्यों का वर्णन है। महाभारत में कृष्ण द्वैपायन के पूर्ववर्त्ती पञ्चशिखापाराशर्य भिक्षु का उल्लेख है।

३५. तमसा तामसान् भावान् विधिधान प्रतिपद्यते।
रजसा राजसांश्चैव सात्त्विकान् सत्त्वसंश्रयात्।।
तमसा नित्यं यान्ति राजसा मनुषानथ।
सात्त्विक देवलोकाय गच्छन्ति सुखभागिनः।।
निष्कैवल्येन पापेन तिर्यग्योनिमावाप्नुयात्।
पुण्यपापेन मानुष्यं पुण्येनैकेन देवताः।।
एवमव्यक्तविषयं क्षरमाहुर्मनीषिणः।।
पंचविशातिमो योऽयं ज्ञानादेव प्रवर्तते।।

—महा॰, शान्तिपर्व, अ॰ ३०२/४५-४६-४९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३६. अलिङ्गो लिङ्गमात्मानं अकालः कालमात्मनः।
असत्त्वं सत्त्वमात्मानमतत्त्वं तत्त्वमात्मनः।।

—महा०, शान्तिपर्व, अ० ३०३/

३७. अमृत्युः मृत्युमात्मानं अचरः चरमात्मनः।
अक्षेत्रः क्षेत्रमात्मानं असर्गः सर्गमात्मनः।।
अतपास्तप आत्मानं अगतिगतिमात्मनः।
अभवो भवमात्मानं अभयो भयमात्मनः।।
अक्षरः क्षरमात्मानं अबुद्धिस्त्वभिमन्यते।।

—महा०, शान्तिपर्व, अ० ३०३/५२-

३८. ममास्तु धिगबुद्धस्य योऽहं मग्नमिमं पुनः।
अनुवर्तितवान् मोहादन्यमन्यं जनाज्जनम्।।
अयमत्र भवेद् बन्धुरनेन सह में क्षमम्।
साम्यमेकत्वमायातो यादृशस्तादृशस्त्वहम्।।
नचायमपराधोऽस्या ह्यपराधो ह्यये मम।
योऽहमत्राभवं सक्तः पराङ्गं मुखमुपस्थितः।।
प्राक् कृतेन ममत्वेन तासु तास्विह योनिषु।
निर्ममस्य ममत्वेन किं कृतं तासु तासु च।।
योनीषु वर्तमानने नष्ट संज्ञेन चेतसा।
न ममात्रानया कार्यमहङ्कार कृतात्मया।।

—महा०, शान्तिपर्व, अ० ३०७/२६, २७, ३३, ३५,

३९. विशुद्धधर्मा शुद्धेन-बुद्धेन च स बुद्धिमान्।
विमुक्त धर्मा मुक्तेन समेत्य पुरुषर्षम।।
शुचिकर्मा शुनिश्यैव भवत्यामित दीप्तिमान।
विमलात्मा च भवति समेत्य विमलात्मना।।
केवलात्मा तथा चैव केवलेनसमेत्य वै।
स्वतंत्रश्च स्वतन्त्रेण स्वतंत्रत्वमवाप्नुते।।

४०. श्रद्धान्वितायाथगुणान्विताय परापवादात् विरताय नित्यम्।
विशुद्धयोगाय बुधाय नित्यम् क्रियावते च क्षमिणे हिताय।।
विविक्तशीलाय विधिप्रियाय विवादहीनाय बहुश्रुताय।
विजानते चैव न चाहितक्षमे दमे च शक्ताय शमे च देयम्।।

—महा०, शान्तिपर्व, अ० ३०८/३४,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४१. कराल मा ते भयमस्तुकिंचित् एतच्छु तं ब्रह्मं परं त्वयाद्य।
यथावदुक्तं परमं पवित्रं विशोकमत्यन्तमनादिमध्यम्।।
अगाधजन्मामरणं च राजन्! निरामयं वीतभयं शिवं च।
समीक्ष्य मोहं त्यज वाद्य सर्वज्ञानस्य तत्वार्थमिदं विदित्वा।।
—महा०, शान्तिपर्व, अ० ३०८/३८, ३९.

४२. सौदासस्य महायज्ञे शक्तिना गाथिसूनवे। —बृहदे० ४.१.२

४३. पाराशर्य जातूकर्ण्यात्। —बृ० उ०
जातमात्रं च यं वेद उपतस्ये ससंग्रहः।
धर्ममेव पुरस्कृत्य जातूकर्ण्यादवाप श्रीतम्।। —वायुपुराण १.४३

४४. 'राथ, मैक्समूलर, मैक्डॉनल, कीथ और हाप्किन्स प्रभृति पाश्चात्य लेखकों को सबसे अधिक भय व्यासजी और महाभारत से था। इस हेतु उन्होंने व्यासजी को मिथिकल और उनके ग्रन्थ को बहुविद्यकालों में रचित माना।' (भा वृ० ह०, प्र० भा पृ० १९६)। हॉपकिन्स ने लिखा है—"Vaisampayana and Vyāsa are mentioned as early as the Taittiriya Āraṇyaka, but not as author or editors of the epic which is now their chief claim to recognition." (Cambridge History of India, Vol. I, 252).

कीथ ने लिखा है—"Vyasa Parasariya is the name of a Mythological sage." —Vedic Index, p. 339.

४५. पाराशर्यो जातूकर्ण्याद्। —श०ब्रा० १४.४.६.३

४६. एतस्माद् व्यासः पुरोवाच। —गो०ब्रा०

४७. स होवाय व्यासः पाराशर्य। —तै० आ० ९.३५

४८. सर्ववेदविदां श्रेष्ठों व्यासः सत्यवतीसुतः। —महा०, शान्तिपर्व २.९

४९. ऋत्विक् समो नास्ति लाकेषु चैव।
द्वैपायनेनोति विनिश्चितं मे।।
एतस्य शिष्या क्षितिमाचरन्ति।
सर्वैर्त्विजः कर्मसु स्वेषु दक्षाः।। —महा०, आदिपर्व ५५.९

५०. जातूमात्रं च यं वेद उपतस्थे ससंग्रहः।
धर्मैव पुरस्कृत्य जातूकर्ण्यादवाप तम्।। —वायु पु० १.४३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५१. पादापसरिणं धर्म स तु विद्वान युगे युगे।
आयुः शक्तिं च मर्त्यानां युगावस्थामवेक्ष्य च।
दिव्यासं वेदान् यन्माद् स तन्माद् व्यास इति स्मृतः।
–महा०, आदिपर्व ६३. ८७-८८)

५२. इसी प्रकार पुलस्त्य, मार्कण्डेय, वायु, उशना, नारद आदि पुरातन ऋषियों रचित सैकड़ों पुराणों का सारग्रहण करके व्यासजी ने मात्रचतुः सहस्रश्लोकात्मक पुराण रचा था–
आख्यानैश्चाप्युपाऽख्यानै गाथाभिः कल्पशुद्धिमिः।
पुराणसंहिता चक्रे पुराणार्थाविशारदः।।

५३. महाभारत भी साठ लाख श्लोकों का संक्षेपसार था–
षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम्।
एवं शतसहस्रं तु मानुषेयु प्रतिष्ठितम्।। –महा०, आदिपर्व १.१०५, १०७)
ये साठ लाख श्लोक पूर्वव्यासों की रचनाएँ थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय : षष्ठम

वैदिक कालीन नारी शिक्षा और विदुषियां, शिक्षा में उनकी देन

(क) ऋग्वेद में नारी का स्थान : एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ऋग्वेद काल में नारी की अवस्था विकसित एवं उन्नत थी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी समान रूप से समाहित थी। इस कारण इसमें पत्नी को गृह अथवा घर शब्दों से सम्बोधित किया गया है ऋषि विश्वामित्र ने पत्नी को पारिवारिक जीव का स्रोत माना है।[१] भगवान इन्द्र का जीवन इसलिए सुखमय माना गया है कि उनकी पत्नी में स्नेह और प्यार भरा हुआ था। इन्द्र के सन्दर्भ में यह भी तथ्य सामने आया है कि गृह ही उनके मनोरंजन का साधन था जो उन्हें अर्द्धांगिनी से मिला था।[२] इससे यह परिलक्षित होता है कि ऋग्वैदिक आर्य लोगों को पारिवारिक सुख प्राप्त था। उन्हें पत्नी से मात्र प्रेम ही नहीं मिलता था बल्कि पत्नी उनकी आज्ञा का पालन करती थी और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति भी करती थी।[३] पत्नी अपने को सजाती-संवारती और रंग-बिरंगे परिधानों में सज्जित होकर पति को प्रसन्न एवं वशीभूत करती थी।

नारी मात्र पत्नी का ही कर्त्तव्य पालन नहीं करती थी अपितु उनका मातृरूप स्नेह और ममता से अप्लावित हुआ करता था। वे बच्चों को प्यार करती, उनका पालन-पोषण और देखभाल करती तथा उनको अच्छी शिक्षा भी देती थी। ऋग्वेद में पत्नी को आभूषण भी माना गया है आज भी समाज में कहा जाता है कि पत्नी ही घर की रौनक है।[४] इससे यह स्पष्ट होता है कि नारी का समाज में बड़ा ही उच्च स्थान था। वह कर्त्तव्य का भली-भांति पालन करती थी और पति के कार्यों में भाग भी लेती थी।

मैकडॉनल और कीथ के अनुसार समाज में परिवार का ऊँचा स्थान था और उसका कारण नारी का सम्मान देना ही था।[५] विवाहोपरान्त पत्नी को सम्मानपूर्ण स्थान दिया जाता था। वह घर की स्वामिनी बन जाती थी और पति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के भाई-बहन, माता-पिता के सुख-सुविधा पर वह विशेष ध्यान देती थी। यही कारण था कि परिवार में उसे सम्मान मिलता था। साधारणतः वह सास-श्वसुर के साथ ही रहती थी किन्तु पृथक् परिवार पर भी उसे उसी प्रकार का सम्मान मिलता था।[६] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पति-पत्नी दोनों के पारस्परिक प्रेम से ही परिवार का नियंत्रण होता था।

ऋग्वैदिक समाज में पुत्री को दुहिता कहा गया है जिसका शब्दिक अर्थ है दूध दूहने वाली। संभवतः आर्य के प्रारंभिक जीवन में बालिकाओं को दूध-दूहना मुख्य कार्य था इसलिए उन्हें इस प्रकार की संज्ञा दी गई। मैकडॉनल और कीथ के अनुसार यह दूह शब्द से लिया गया है जिसका तात्पर्य बच्चों का पालन पोषण करना है अथवा बच्चों को दूध देना। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ से यह भी ज्ञात होता है कि पुत्री का जन्म माता-पिता के लिए चिन्ता का विषय था क्योंकि उनका विवाह करना पड़ता था तथा उनका भविष्य पति की योग्यता और चरित्र पर निर्भर करता था। योग्य पति उनका जीवन बना सकता था तथा दूसरी ओर बुरे आचरण के कारण पत्नी को निष्कासित भी किया जाता था। साधारणतः बालिकाओं को वर के चयन में स्वतंत्रता थी फिर भी, माता-पिता की अनुमति की आवश्यकता थी। इस से यह भी पता चलता है कि कभी-कभी बालिकाओं को वर चयन करने में बड़ी कठिनाई होती थी। ऋग्वेद से यह भी ज्ञात होता है कि अविवाहित कन्या को माता-पिता की सम्पत्ति में हिस्सा दिया जाता था जिससे वह स्वतंत्र रूप से जीवन व्यतीत कर सके।[७] इसके कारण परिवार में कभी-कभी वह स्थान नहीं मिल पाता था जो वास्तविक रूप में मिलना चाहिए था। इसके अतिरिक्त किसी अविवाहित बालिका के माता-पिता नहीं होते अथवा कोई भाई नहीं होता जो उनकी रक्षा कर सके तो वैसी स्थिति में उसे कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ता था। इन्हीं कारणों से पुत्री का जन्म परिवार में चिन्ता का विषय बन जाता था।[८] अथर्ववेद में स्पष्ट वर्णित है कि सभी व्यक्ति पुत्री से पुत्र की कामना अधिक करते थे।[९] संभवतः पुत्र का जन्म इसलिए अच्छा समझा जाता था क्योंकि उनसे परिवार बढ़ता है और परिवार निरन्तर चलता रहता है। इस प्रकार का अधिकार पुत्रियों को प्राप्त नहीं था।

उपर्युक्त तथ्यों से परिलक्षित होता है कि पुत्री का जन्म माता-पिता के लिए चिन्ता का विषय था। किन्तु निःसन्देह उसे अपने भाइयों की भांति माता-पिता का प्यार प्राप्त होता था। इससे यह ज्ञात होता है कि माता-पिता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों की सहानुभूति उसे प्राप्त थी। इसी कारण शिक्षा में भी उसे वही अधिकार प्राप्त था जो पुत्र का था। पुत्र की भांति वह भी आश्रमों में जाकर शिक्षा अर्जित करती थी। वास्तव में ऋग्वैदिक काल में कुछ ऐसी महिलाएं उल्लेखित है जिन्होंने ऋचाओं का निर्माण किया, यज्ञ किया, वेद पाठ किया और समाज में सम्मान प्राप्त किया। एस० सी० दास[१०] के अनुसार कतिपय महिलाओं ने शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्ट गौरव प्राप्त किया। नृत्य और संगीत के क्षेत्र में भी उन्होंने उसी प्रकार सम्मान प्राप्त किया। घोषा राजकुमारी थी किन्तु दूसरी ओर एक सम्मानित ऋषिका भी थी।[११] लोपामुद्रा भी इस प्रकार की एक विदुषी थी। इनके अतिरिक्त ममता, अपाला, सूर्या, इन्द्राणी, शची, सर्परागिनी, विश्ववारा आदि अनेक महिलाओं ने इस युग में विद्या के क्षेत्र में सम्मान प्राप्त किया और नारी शिक्षा को आगे बढ़ाया। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि उन लोगों ने नारियों के लिए मार्गदर्शन का काम किया। विश्ववारा ने अग्नि देवता के लिए ऋचाओं की रचना की। अपाला ने इन्द्र के लिए श्लोकों की रचना की।

ऋग्वेद से यह भी ज्ञात होता है कि कभी-कभी नारी अपने पति के साथ रणक्षेत्र में जाती थी और युद्ध में भाग लेती थी। विश्वपला इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। वह राजा खेल की महारानी थी ओर उसने अपना पैर युद्ध में खो दिया था और कालान्तर में लोहे का पैर लगा लिया। ऐसा उसने अश्विन की कृपा से की थी।[१२] मुदग्लानी किसी मुद्गल की पत्नी थी।[१३] उसने अपने पति की सहायता से डाकुओं से गाय को छुड़ाया था। उसने तीर और धनुष से डाकुओं को पराजित किया और पति की रक्षा भी की थी। इन तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि नारियों को सैनिक शिक्षा दी जाती थी। जिससे परिणामस्वरूप वे विरांगना बन जाती थी और युद्ध में भाग लेती थी। इस प्रकार नारियों के लिए भी सैनिक शिक्षा की व्यवस्था थी।

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि ऋग्वैदिक समाज में नारी का स्थान साधारणतः उन्नत और सम्मानित था। पति की आज्ञाकारिणी होते हुए भी उसे परिवार में सम्मान मिलता था। उन विधवाओं को जिनके पुत्र होते उनको पति की सम्पत्ति में हिस्सा दिया जाता था।[१४] इसी प्रकार अविवाहित नारियों को भी पिता की सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त था। अन्धी पुत्रियों को अथवा अंग-भंग पुत्रियों को साधारणतः विवाह नहीं किया जाता था, किन्तु कोई व्यक्ति उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता था तो उसे उस प्रकार की अनुमति दे दी जाती थी।[१५] नवविवाहित वधु को परिवार में बड़ा सम्मानित किया जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था क्योंकि भविष्य में गृहस्वामिनी बनती थी। अयोग्य पति को अधिक धनराशि देकर विवाह करना पड़ता था। इसलिए साधारणतः योग्य वर और कन्या का चयन होता था। विवाह के नियम सरल थे किन्तु बहु विवाह भी प्रचलित था। साधारणतः एक व्यक्ति एक ही स्त्री से विवाह करता था किन्तु राज-घरानों में बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। विधवा विवाह का प्रचलन जिसका फिर भी अथर्ववेद में इसका उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि समाज में कुछ ऐसे नियम बने हुए थे जिसके द्वारा वैसी महिलाएं जिनके पुत्र नहीं होते वे अपने देवर से पुत्र उत्पन्न कर सकती थी। शिक्षा के क्षेत्र में भी कुछ महिलाओं को विशिष्ट ज्ञान प्राप्त था।

ऋग्वैदिक काल में परिवार ही शिक्षा का प्रथम पाठशाला था। परिवार में ही पुत्र और पुत्रियों को शिक्षा ग्रहण करने की आज्ञा अपने माता-पिता द्वारा प्राप्त था। जीवन सहचर प्राप्त करने में कन्या के शारीरिक सौन्दर्य के साथ शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। अतः विवाह के उद्देश्य से भी पुरुषों की तरह नारी शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाता था। ऋग्वेद के अनुसार एक शिक्षित कन्या का विवाह उसी युवक के साथ सभंव था जो विद्ववता के क्रम में कम से कम उसके समकक्ष होता था।[१६] इस युग में बाल-विवाह का प्रचलन नहीं था इससे यह परिलक्षित होता! है कि बालिकाओं को पूर्णतः शिक्षा दी जाती थी। इसी कारण वयस्क होने पर ही उनका विवाह किया जाता था। अविवाहित बालिकाओं को माता-पिता से शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार ऋग्वैदिक काल में नारियों को बहुत अधिक सम्मान दिया जाता था और संभव है कि वे मातृदेवी के रूप में कुछ महिलाओं की आराधना भी की जाती थी।

(ख) उत्तरवैदिक काल में नारी का स्थान :

उत्तरवैदिक काल में नारी की स्थिति किस प्रकार थी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है क्योंकि एक ओर तो उनकी इतनी प्रशंसा की गई है जिससे प्रमाणित होता है कि उनका समाज में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान था। लोगों के बीच यह भावना थी कि माता पूजा करने वालों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है और वह जो भी कार्य करता है उसमें से मिलती है। जो नारी का निरादर करता है उसके द्वारा किये गये सभी काम निष्फल होते हैं।

''यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रेत्रास्तु न पूज्यन्ते सर्वस्त त्रा फलगक्रिया।।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी ओर अनेक विद्वानों एवं इतिहासकारों ने बताया है कि उत्तरवैदिक काल में नारी पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये गए। गुरुकुलों में जाने की उन्हें अनुमति नहीं दी जाने लगी और उनसे यह कहा गया कि परिवार ही उनकी पाठशाला है। उनके द्वारा वेद अध्ययन पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया क्योंकि लोगों के बीच यह धारणा बन गई थी कि वैदिक ऋचाओं का शुद्ध उच्चारण एवं पाठ नारी नहीं कर सकती है। यहां तक कि यज्ञ में भाग लेने की भी उन्हें अनुमति नहीं दी गई किन्तु उत्तरवैदिक कालीन सामाजिक अवस्था के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी सर्वशक्ति सम्पन्न थी तथा विद्या, यज्ञ और सम्पत्ति की प्रतीक समझी जाती थी। शतपथ ब्राह्मण[१७] में तो स्पष्ट बताया गया है कि नारी के बिना पुरुष अपूर्ण एवं अधूरा है। मनु ने तो स्पष्ट कहा है कि अकेले पुरुष का कोई अस्तित्त्व नहीं है। वह अधूरा है। स्त्री स्नेह और सन्तान इन तीनों को मिलाकर ही पुरुष पूर्ण होता है[१८]। वस्तुतः स्त्री और पुरुष दोनों यज्ञरूपी रथ के जुड़े हुए दो पहिए थे।[१९] इस प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध माना जाने लगा और बिना पत्नी के गृह की कल्पना व्यर्थ मानी गई। जयशंकर मिश्र के अनुसार नारी की स्थिति में भेद-परक विकास हुआ। उसका परम्परागत आदर और सम्मान बराबर बना रहा तथा उसके प्रति समाज की धारणा पूर्ववत् उन्नत बनी रही।[२०] शिक्षा के क्षेत्र में नारी का स्थान पुरुषों के समकक्ष था। शिक्षित कन्या की प्राप्ति के लिए विशेष अनुष्ठान का आयोजन किया जाता था।

ब्रह्मचर्य जीवन में शिक्षा ग्रहण करती थी विदुषी बनती थी।[२२] इस युग के जो स्त्री पुरुष शिक्षित थे। वे ही विवाह योग्य समझे जाते थे।[२३] कुछ ऐसी नारियां थी जो विद्या अध्ययन में लगी रहती थीं और ब्रह्मवादिनी कहलाती थीं। इस युग में वैदिक कर्मकाण्ड की जटिलता बढ़ने के कारण यक्षित कार्यों में शुद्धता और पवित्रता के नाम पर आडम्बर बढ़ता गया और नारियों को उनसे वंचित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त अन्तर्जातीय विवाह के प्रचलन के कारण कुछ ऐसी नारियां उच्च कुलों में आ गईं जिनका वेदों से किसी प्रकार का परिचय नहीं था। स्वभावतः वे वेदों का शुद्ध पाठ भी नहीं कर सकती थीं। इसी कारण नारी को समाज से वंचित कर दिया गया। सूत्र और स्मृति काल में आकर नारी की स्थिति धीरे-धीरे दयनीय होने लगी और उन पर बन्धन और अवरोध लगा दिये गये। वास्तव में उनकी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और व्यक्तिक सभी स्थितियों पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। जन्म से मृत्यु तक उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष के नियंत्रण में रहने का आदेश दिया गया। कन्या, पत्नी और माता जैसी स्थितियों में वह क्रमशः पिता, पति और पुत्र द्वारा नियंत्रित मानी गयी।[२३] उन तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तरवैदिक काल के प्रथम चरण में नारी की लगभग वही स्थिति थी जैसा कि पूर्व वैदिक काल में थी। किन्तु सूत्रकाल और स्मृतिकाल आते आते उनकी स्थिति में अत्यधिक परिवर्तन हुआ। इस समय तक नारियों को असत्यभाषी और अन्हृत माना जाने लगा।[२४] उसे पुरुषों के साथ यज्ञ में भाग लेने से वंचित कर दिया गया।[२५] इस प्रकार नारियों पर सामाजिक और धार्मिक तथा अन्य प्रकार के प्रतिबन्ध लगाए गए जो आगे चलकर दृढ़ हो गए। धर्मसूत्रों और स्मृतियों के युग में नारियों की दशा में इतना पतन हुआ कि वह दया की पात्र बन गयी। उनका स्वतंत्र अस्तित्त्व समाप्त हो गया और उनके शरीर पर पति का अधिकार स्थापित हो गया।[२६] उनकी स्वतंत्रता और उन्मुक्ता पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये गये।

सूत्र और स्मृतिकाल में नारियों की सामाजिक स्थिति में पतन तो दृष्टिगोचर होता है परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें अब भी पूर्णरूप स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा दी जाती रही और विशिष्टता प्राप्त करने पर उन्हें सम्मानित भी किया जाता रहा। वास्तव में वे यज्ञ में भी भाग लेती रही।[२७] राम के युवराज पद पर अभिषेक के समय तक कौशल्या ने यज्ञ किया था।[२८] महाभारत से ज्ञात होता है कि पाण्डवों की माँ कुन्ती अथर्ववेद में पारंगत थी।[२९] इससे स्पष्ट है कि उस समय नारियां मंत्रविद् और पण्डिता हुआ करती थी। उस युग की नारियां ब्रह्मचर्य का अनुगमन करते हुए उपनयन संस्कार भी कराती थी।[३०] कन्या को उपनयन का विधान मनु ने किया है।[३१] वैदिक युग में छात्रों के दो वर्ग थे—सद्योवधु और ब्रह्मवादिनी। सद्योवधु वे छात्राएं थी जो विवाह के पूर्ववत् कुछ वेद मंत्र और याज्ञिक प्रार्थनाएं पढ़ लेती थी तथा ब्रह्मवादिनी वे थी जो शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् विवाह कर लेती थी। कुछ ऐसी भी नारियां थी जो जीवनपर्यन्त अध्ययन में लीन रहती थी और अविवाहित रह जाती थी। ऋषि कुशध्वज की कन्या वेदवत्ती ऐसी ही थी।[३२] ऐसी स्त्रियां बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न होती थी। जो ज्ञान और बुद्धि में पारंगत ही नहीं अपितु अनेक मंत्रों की उद्गात्री होती थी। वे दर्शन, तर्क, मीमांसा, साहित्य आदि विभिन्न विषयों की पंडिता होती थी। काशकृत्सनी ने मीमांसा जैसे जटिल गूढ़ विषय का अध्ययन अत्यधिक किया था जिसके कारण कालान्तर में उसी के नाम पर वह विख्यात हो गई।[३३] शिक्षण, प्रशिक्षण के क्षेत्र में नारियों की रुचि बराबर बढ़ती गई। दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे गूढ़ और गंभीर विषय में भी वे पारंगत होने लगी। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रयी विख्यात दार्शनिक थी। जिनकी रुचि अलंकारों में न होकर दर्शनशास्त्र में थी।[३४] जनक की राजसभा में होने वाली विद्वत् गोष्ठी में गार्गी ने अपनी अद्भूत तर्कशास्त्र से याज्ञवल्क्य जैसे महर्षि को मुग्ध कर दिया था।[३५] वाल्मीकि अगस्त्य ब्रह्म ऋषियों से वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करके मैत्रेयी ने शिक्षा के क्षेत्र में सम्मान प्राप्त किया था।[३६] इस प्रकार उत्तरवैदिक काल में अनेक नारियों ने सम्मान प्राप्त किया।

वेदवादिनी स्त्रियों की योग्यता विस्तृत एवं बहुमुखी थी। वे वैदिक साहित्य में पाण्डित्य प्राप्त करती थी तथा मंत्रों की रचना भी करती थी। इनमें कुछ मंत्र वैदिक संहिताओं में भी सम्मिलित किये गये हैं। जब वैदिक ज्ञान दुरूह हो गए तो उन्हें सरल बनाने के लिए एक नई शाखा का विकास हुआ जिसे मीमांसा कहते हैं। यद्यपि यह गणित से भी शुष्क विषय है तथापि विदुषियों ने इसमें भी पर्याप्त रुचि ली। काशकृत्सनी इसी विषय की विदुषी थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि सुलभा, प्राथितेयी, वड़वा, मैत्रेयी और गार्गी जैसी इस काल की विदुषियों ने शिक्षा के विकास में बहुमूल्य कार्य किया।[३७] उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी की स्थिति में पतन होने के पश्चात् भी शिक्षा के क्षेत्र में उनकी अवस्था दयनीय नहीं हो पायी थी। अब भी समाज में उनका ऊँचा स्थान था। अन्तर्जातीय विवाह के कारण महिलाओं की अवस्था दयनीय हो गयी थी। तब भी समाज में उनका ऊँचा स्थान था। अन्तर्जातीय विवाह के कारण महिलाओं की अवस्था में कुछ परिवर्तन हुआ क्योंकि उनमें कुछ ऐसी महिलाओं का पदार्पण हुआ जो वेद से अनभिज्ञ थी। वैदिक युग में बालक और बालिकाओं का विवाह यौवन प्राप्ति के बाद ही किया जाता था। कन्या और पुरुष एक दूसरे की इच्छा कर सकने में समर्थ हो सकते थे तभी विवाह की आयोजना की जाती थी। संभवत: विवाह सन्तान उत्पन्न करने के लिए ही किया जाता था।[३८]

उत्तरवैदिक काल में भी यौवन प्राप्ति के बाद ही विवाह किया जाता था। रामायण में सीता का विवाह और महाभारत में द्रौपदी का विवाह युवती होने पर किया गया था। गृहसूत्रों का मत भी इस सम्बन्ध में एक जैसा नहीं है। किन्तु इस काल में कन्याओं के विवाह की आयु कम होने लगी जिसका प्रभाव उनकी शिक्षा पर भी पड़ने लगा। इस काल तक आते-आते उनके विवाह की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयु इतनी कम कर दी गई कि उन्हें शिक्षा अर्जित करने का अवसर ही नहीं प्राप्त हो पाता था। हिरण्यकेशी[३९], गोभिल गृह्यसूत्र[४०] के अनुसार विवाह के लिए नग्निका कन्या को ही श्रेष्ठ माना जाता था। नग्निका कन्या के सम्बन्ध में विद्वानों में दो प्रकार के विचार थे। प्रथम विचार के अनुरूप नग्निका वह कन्या थी जो लज्जा नहीं करती थी और उसमें यौवन के चिह्न नहीं दिखलाई पड़ते थे। दूसरे विचार के अनुसार नग्निका वह कन्या थी जो संभोग के योग्य थी। प्रथम अर्थ में दस से बारह वर्ष की कन्या का समावेश था और दूसरे अर्थ में सोलह वर्ष की कन्या का था। दस से बारह वर्ष की कन्या को श्यामा कहा जाता था और बारह वर्ष से अधिक उम्र की कन्या कुमारी कही जाती थी। ऐसी कन्या को रजस्वला भी कहा जाता था।[४१] स्मृतियों में भी इस प्रकार की बातें कही गई है। मनु के अनुसार तीस वर्ष की आयु वाला पति बारह वर्ष की कन्या से विवाह कर सकता था। किन्तु चौबीस वर्ष की आयु वाला पति आठ वर्ष की कन्या से विवाह करता था।[४२] गौतम और पराशर में बारह वर्ष की अवस्था में रजो दर्शन होने पर तुरंत कन्या दान का विधान किया है। ऐसा न करने पर पिता को दोषी माना जाता था और उस पिता को नरकगामी कहा गया है[४३]। इन तथ्यों से प्रमाणित होता है कि उत्तरवैदिक काल तक बाल विवाह का प्रचलन समाज में हो गया था। एतदर्थ नारियों को शिक्षा अर्जित करने का अवसर प्राप्त नहीं होने लगा।

उत्तरवैदिक काल में विधवाओं की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास किया गया। उसे देवर से पुत्र प्राप्त करने की अनुमति दी गई।[४४] महाभारत ने भी इसी प्रकार का निर्देश दिया है।[४५] मनु ने भी इस मत का समर्थन किया है।[४६] महाभारत में नियोग प्रथा धर्मसम्मत माना गया है विचित्रवीर्य के निःसन्तान मर जाने पर उसकी रानियों ने वेदव्यास से नियोग करके धृतराष्ट्र और पाण्डु को उत्पन्न किया था। पाण्डु के अयोग्य होने पर कुन्ती और माद्री ने नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न किया था। महर्षि व्यास ने सत्यवती की विधवा पुत्र-वधुओं के साथ नियोग किया था। परशुराम ने जब अनेक क्षत्रियों का वध कर दिया तो पत्नियां ब्राह्मणों से पुत्र उत्पन्न करने गयी थीं।[४७]

उत्तरवैदिक काल में पत्नी और पति के बीच आगाध प्रेम और आर्कषण रहता था जिसके कारण पति से अनुमति लेकर शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्य करती थीं किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि पति और पत्नी मिलकर यज्ञ करती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। उनके सहधर्म पर गोभिल का कथन है कि राम ने अपनी यशस्विनी पत्नी की स्वर्णमूर्ति बनवाकार भाइयों द्वारा अर्जित करके बहुत प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान किया गया था।[४८] देवताओं के ऋण यज्ञ सम्पन्न करके, ऋषियों के ऋण वेदाध्ययन करके और पितरों का ऋण सन्तान उत्पन्न करके चुकाया जाता था। वास्तव में तीन प्रकार के ऋण थे जो प्रत्येक व्यक्ति को चुकाना आवश्यक होता था। वे ऋण–पितृऋण, देवताऋण और ऋर्षिऋण थे। इन कार्यों में प्रत्येक पति को अपनी पत्नियों का सहयोग आवश्यक था।

उत्तरवैदिक काल में हिन्दू परिवार संयुक्त प्रणाली पर ही आधारित थी।[४९] जिसके कारण नारियों की शिक्षा प्राप्त करने में बड़ी सुविधा होती थी। अपने परिवार में रहकर ही परिवार के सदस्यों द्वारा विभिन्न विषयों का अध्ययन अर्जित कर लेती थीं।[५०]

उत्तरवैदिक काल में माता का ऊँचा और गरिमायुक्त तथा महत्त्वपूर्ण स्थान था। एतदर्थ पुत्र को माता के अनुकूल रहने की सलाह दी जाती थी।[५१] उसकी प्रतिष्ठा और गरिमा इतनी ऊँची थी कि वह व्यवहार में पिता के समकक्ष व्यहृत होती रही। जब ब्रह्मचारी अध्ययन समस्त कर लेता था तो आचार्य उसे यह शिक्षा देता था कि वह देवता की तरह माता की पूजा करे। धर्मसूत्र में माता की मर्यादा और प्रतिष्ठा का विशद् वर्णन है। महाकाव्यों ने माता का मान और सम्मान का व्यापक निर्धारण किया है। रामायण में राम की माँ कौशल्य की माता के रूप में वैभवपूर्ण गौरव और सम्मान दर्शनीय है। इसी प्रकार महाभारत में गांधारी और कुन्ती की भव्यता और दिव्यता माता के रूप में सराहनीय है। माता को श्रेष्ठ गुरु कहा गया है।[५२] क्योंकि सन्तान अपनी प्रारम्भिक शिक्षा माँ से ही प्राप्त करता है महाभारत में कहा गया है कि आचार्य सदा दस योनियों से बढ़कर है, पिता दस उपाध्यायों से भी अधिक महत्त्व रखता है और माता की महत्ता दस पिताओं से भी अधिक है। वह अकेली अपने गौरव द्वारा सारी पृथ्वी को तिरस्कृत कर देती है। अत: माता के सिवा कोई दूसरा गुरु नहीं है।[५३] इसी प्रकार का मत वशिष्ठ ने भी व्यक्त किया है। उसके अनुसार दस उपाध्यायों से अधिक गौरव आचार्यों का है। सौ आचार्यों से अधिक महत्त्व पिता का है और एक हजार पिताओं से अधिक महत्त्व माता का है।[५४] यदि माता व्यभिचारिता भी है तब भी माता का भरण-पोषण करना पिता का कर्त्तव्य है।[५५] पिता और माता की तुलना में माता की महिमा अधिक मानी गयी है। माता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए कहा गया है कि उसकी जैसी छाया, आश्रय-स्थल, रक्षास्थान और प्रिय वस्तु कोई नहीं है।[५६] कुन्ती, सत्यवती, सुभद्रा आदि ऐसी अनेक माताएं थीं जिनका पुत्र के प्रति असीम स्नेह और आगाध प्रेम था।[५७] स्मृतिभाष्य में भी माता के परम गुरु मानकर उसकी सर्वोच्यता दर्शित की है।[५८] इन सभी तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि माता का स्थान समाज में सर्वोपरि था जिससे यह परिलक्षित होता है कि शिक्षा के क्षेत्र में भी उनको सम्मान प्राप्त था।

पत्नी के रूप में भी नारी को सम्मान प्राप्त होता रहा। वह जाया और जननी भी कही जाती थी। परिवार का विकास और महत्त्व उसी से था। इसलिए ऋग्वेद में उसे घर की आत्मा और प्राण कहा गया है। वह घर की सामग्री भी कही जाती थी। उत्तरवैदिक काल में वह अर्धांगिनी मानी गयी है। महाभारत के अनुसार पुरुष की गति भार्या से ही बनती थी।[५९] वह गृह की शोभा और कान्ति थी। इसलिए वह पूजनीय थी। पति के साथ मिलकर वह सामाजिक और धार्मिक कार्यों का निर्वाह करती थी। यज्ञ में पति के साथ रहती थी। बिना पत्नी के कोई भी व्यक्ति यज्ञ सम्पन्न नहीं कर सकता था।[६०] अश्वमेध यज्ञ करते समय राम, सीता के वनवास के कारण उनकी सोने की प्रतिमा निर्मित कराकर यज्ञ करना पड़ा।[६१] जिसके कारण पत्नी का अधिकार क्रमशः कम होने लगा था अर्थात् नारी की स्थिति में परिवर्तन आने लगा। इस युग में नारियों के वेद मंत्रों के उच्चारण से भी वंचित कर दिया गया क्योंकि उनसे यज्ञ करने का भी अधिकार छीन लिया गया था। जिसका प्रभाव नारी शिक्षा पर पड़ा। अल्पवय विवाह के कारण स्त्रियों का उपनयन संस्कार बन्द हो गया फलस्वरूप वह शूद्र समझी जाने लगी थी।[६३] मनु याज्ञवल्क्य ने भी स्पष्ट लिखा है कि उनका प्रभाव और महत्त्व समाज में कम होने लगा था।[६४] कुछ शास्त्रकारों ने तो उनकी स्थिति में इतना परिवर्तन ला दिया कि उन्हें वही दण्ड दिया जाता था जो किसी शूद्र को दिया जाता था।[६५] अब नारी को सभी दुःखों का मूल माना जाने लगा और लोगो के मन में यह धारणा पनपने लगी कि नारी से दूर रहने पर ही मनुष्य को सद्गति प्राप्त हो सकती है। एतदर्थ स्नेह-स्नेह नारी की असीम निन्दा प्रारंभ हो गई और समाज में वह दया का पात्र बन गई। नारी से बढ़कर न कोई पापी था और न कोई प्रज्ज्वलित आग। इसके अतिरिक्त नारी माया, विष और सर्प से भी तेज समझी जाने लगी। वह झूठ, विनाश और आपत्ति का कारण ही नहीं बल्कि व्यभिचारित, स्नेहहीनता ओर चंचलता का स्वरूप बन गई।[६६] इस तरह नारी की दशा पतन की ओर अग्रसर होने लगी तथा इसके सभी अधितर अधिकार छीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए गए। संभवतः उनकी स्वतंत्रता भी जाती रही। फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिभा दिखलाने का अवसर भी नहीं मिलने लगा।

पुत्री अथवा कन्या के रूप में नारी का स्थान उच्च होते हुए भी उपेक्षनीय दयनीय थी। वह दुःख और सन्ताप का कारण मानी जाती थी जिसके कारण उस पर अनेक प्रकार के नियंत्रण और बन्धन लगा दिये गये थे। उत्तरवैदिक युग से कन्या इन्हीं विषम झंझावतों से छली जाती रही और कठिन परिस्थितियों से उलझती रही। उसके लिए कहा गया है कि "वह जन्म के समय स्वजनों को दुःख देती है, विवाह के समय दहेज हो जाती है और यौवनावस्था में अनेक दोषों से युक्त होकर वंश को कलंकित करती है। इस प्रकार जन्म लेते ही वह माता-पिता के हृदय को आघात पहुंचाती है।[६७] किन्तु महाभारत इस कथन के विपरीत कहा गया है कि कन्या में सर्वदा लक्ष्मी निवास करती है।[६८] मनु ने उसे पुत्र के समकक्ष माना है तथा पुत्र के अभाव में उसे उत्तराधिकारी भी माना है।[६९] इस प्रकार की धारणा रहते हुए भी पिता अपनी पुत्री को प्राण समझता था। इसीलिए देवयानी अपने पिता की प्राण थी।[७०] द्रौपदी भी अपने पिता से आगाध प्रेम करती थी।[७१] इन तथ्यों से परिलक्षित होता है कि महाभारत काल में पुत्री परिवार की एक समस्या बन गयी थी किन्तु वह सभी लोगों की प्रिय पात्र थी तथा परिवार में उसकी समुचित प्रतिष्ठा और महत्ता थी।

नारी संकल्पना :

नारी के बिना यह सम्पूर्ण विश्व सारशून्य है। जन विस्तार की दृष्टि से भी निःसन्देह पुरुष की अपेक्षा नारी की महत्ता अधिक है। नारी की इसी महत्ता तथा आवश्यकता के कारण वैदिक साहित्य में इसकी कामना और इसकी समुचित पालना प्रत्येक गृहस्थ किये जाने का विधान है। इसी कारण इसका नाम कन्या अर्थात् सबके द्वारा वांछनीय रखा गया है। भास्कराचार्य ने निरुक्त में "कन्या कमनीया भवति" कहकर उसे कपु धातु से सिद्ध करके सबसे चाही जाने वाली[७२] कहा है–

वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर लिखा है कि पुत्री स्त्री-पुरुष के अंग-अंग से उत्पन्न हुई है। अतः वह भी पुत्रवत् है। ऋग्वेद में पिता जहां पुत्रों के साथ सम्पूर्ण आयु व्यतीत करने में सुख का अनुभव करता है वहां वह पुत्री को भी उपेक्षा न करके इसके साथ भी सम्पूर्ण आयु व्यतीत करना चाहता है और दोनों को सुवर्णवत मानता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पुत्रिणा ता कुभारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः उभा हिरण्यपेशसा॥"[७३]

वह अपने घर में अपनी अनेक पुत्रियों को खेलता-कूदता तथा किलकारियां मारता देखकर प्रसन्नता का अनुभव करता है।[७४] वैदिक पिता, पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं करता। वह पुत्री में पुत्रभाव को प्रख्यापित करता है और दौहित्र को भी पौत्र समझता है।[७५] दोनों ही उसकी सन्तान है। मनु ने जैसा पुत्र वैसी ही पुत्री कहकर उक्त तथ्य को और अधिक पुष्ट किया है।[७६] उनके विचार में कन्या परम स्नेह एवं कृपा की पात्री हैं। यदि वह कुछ बुरा भी कहे तो भी उसे सह ले।[७७] आपस्तम्ब धर्मसूत्र कुमारी की निन्दा करने का निषेध करता है।[७८] ऋग्वेद में पिता द्वारा अपनी दो बेटियों को अपनी गोद में बिठाने का उल्लेख है।[७९] ऐतरेय उपनिषद् में लिखा है कि "नारी हमारी पालन करती है अतः उसका पालन करना हमारा कर्त्तव्य है।[८०] छान्दोग्य उपनिषद् में जानश्रुति पौत्रायण ऋषि से रौक्व उपदेश प्राप्त करने के लिये उसे नाना धन-सम्पति प्रदान करता है किन्तु वह उपदेश देने के लिये उद्यत नहीं होता। अन्त में रौक्व अपनी कन्या को सामने प्रस्तुत करता है। जब ऋषि कन्या के मुख को ऊँचा उठाकर कहता है कि कन्या के मुख में लाज रखने के लिए मुझे कुछ कहने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है।[८१] इस प्रकार इस उपनिषद् में भी कन्या के प्रति दया, स्नेह और आदर की भावना प्रदर्शित की गयी है।

देवपाल के अनुसार विवाह के बाद पति द्वारा स्त्री को ध्रुव, अरुन्धती आदि नक्षत्र दिखलाने का अभिप्राय कन्या की कामना करना है। इसी प्रकार विवाह संस्कार में पति का स्त्री की अंगुलियों को (अंगुष्ठ को छोड़कर) पकड़ने का अभिप्राय भी कन्या की कामना ही है।[८२] इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर कन्या की उत्पत्ति की विभिन्न रीतियां बतायी गयी है।[८३] इससे भी उसकी कामना ही प्रकट होती है। अथर्ववेद में उत्पन्न कन्या की रक्षा करना तथा उसे विक्षिप्त या दुःखी न करने का विवरण प्राप्त होता है।[८४] इन प्रमाणों तथा वेद के सम्पूर्ण नारी सम्बन्धी विवरणों से जिनका वर्णन हम कर रहे हैं, यही सिद्ध होता है कि वैदिक साहित्य के अनुसार समाज में नारी की आवश्यकता एवं महत्ता अत्याधिक है और कन्या की कामना सर्वथा स्वाभाविक एवं उपर्युक्त है।

ब्रह्मचर्य काल :

वैदिक साहित्य के अनुसार प्रगति का प्रथम सोपान ब्रह्मचर्य काल है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें रहकर मनुष्य अपने सम्पूर्ण जीवन की आधारशिला को दृढ़ करता है। संयम और तप से समय को व्यतीत करता हुआ संसार के सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान का संग्रह करके परमानन्द को प्राप्त करने का प्रयास करता है कठोर परिश्रम से अपने देह के प्रत्येक अंग प्रत्यंग को पुष्ट कर तुष्टि प्राप्त करने में समर्थ सिद्ध होता है, जो इस आश्रम में अपने समय को व्यर्थ गवां देता है। वह सम्पूर्ण आयु समाज के सबसे निचले दर्जे के, जिसको कि शूद्र का नाम दिया गया है, रहकर सबकी सेवा का कार्य करता है और जीवन के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। कन्या भी यदि इस काल में यथाविधि अपने व्रत का पालन नहीं करती तो समाज द्वारा कुदृष्टि से देखी जाती है। युवावस्था में पहुँचने पर इस व्रत का पालन न करने के कारण विवाह आदि अन्य संस्कारों में शिथिलता तथा कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है जो कन्या बिना ब्रह्मचर्य का पालन किये गृहस्थ धारण करती है वह बुड़बड़ाती, निन्दा अपवाद करती सभी को नुकसान पहुँचाती है। ऐसी कन्या पशुओं को दुःख देती है।[८५] अशिक्षित रहकर भी वह कच्चा माँस खाने वाले पशु की तरह तथा कुतरने वाले चूहे-चूहियों की तरह पशुओं को परेशान करती रहती है। अतः कन्या को शैशवकाल में ही पूज्य गुरुजनों के आश्रित रख देना चाहिए जिससे कन्या सुखदायिनी बन सके।[८६]

कुछ विचारकों के अनुसार वेदों में स्त्री को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्रदान नहीं किया गया है किन्तु मनु के अनुसार यह राजधर्म अर्थात् राजा की ओर से विधान होना चाहिए कि प्रत्येक बालक और बालिका अनिवार्य रूप से ब्रह्मचर्यपूर्वक वास करते हुए विद्वान् बने।[८७] आश्वलायन श्रौतसूत्र के अनुसार पुत्र और पुत्री दोनों का ब्रह्मचर्य काल एक समान ही है।[८८] दोनों के लिए एक से ही नियम तथा उपनियम है।

कन्यानं सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणाम्। समानं ब्रह्मचर्यम्।

(ग) कन्या का उपनयन संस्कार :

गुरु के पास ब्रह्मचर्यपूर्वक वास करने से पूर्व और शिष्य और शिष्या का उपनयन करवा कर उन्हें उस उपनयन का अर्थ महत्ता तथा उसकी उपयोगिता को समझाने का कार्य भली प्रकार सम्पन्न किया जाता है। ''उपनीय गुरु शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः[८९] उपनयन हुए बिना नारी का जीवन उत्साह रहित होता है ऋग्वेद के अनुसार अपनी स्त्रियां (दुष्ट व्यक्तियों के विपरीत) अनेक कठिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यों को करने में समर्थ सिद्ध होती है। भीमा जाया ब्रह्मणस्योपेनीता दु दधाति परमेच्योमन्।[९०] हारीत धर्मसूत्र ने भी ब्रह्म वादिनियों का अध्ययन त अग्निहोत्र आदि कर्मों के साथ अपने घर से भिक्षा भी मांगे।" तत्र ब्रह्मावादिनीना उपनयनम् अरिनीयास् वेदाध्ययनस् स्वेगृहे भिक्षाचयेति।[९१] आश्वलायन गृह्यसू में पत्नी के अतिरिक्त कुमारी द्वारा भी अग्निहोत्र करने की विधि है। ये विधि उसके उपनयन की ओर संकेत करती है। अन्यत्र इसी गृह्यसूत्र में स्त्रियों समावर्तन संस्कार का "उपरथस्त्री" इत्यादि विधि द्वारा निर्देश करते हु प्रकाशान्तर से उपनयन का कथन विद्यमान है, क्योंकि उपनयन संस्कार बिना समावर्तन होना असंभव है।[९२] कात्यायन ने शूद्र अर्थात् अनुपनीत नारि को अग्निहोत्र के चारों ओर बैठने की आज्ञा नहीं दी।[९३] उनके अनुसार नारियां उपनीत तथा असाधारण रूप से विदुषी तथा शक्तिशालिनी हैं वे यज्ञादि कार्य करें।[९४] गोभिल मुनि के अनुसार यज्ञोपवीत धारण कर चुकी ना ही यज्ञ के आचमन आदि कार्यों को सम्पन्न करें। गोभिल विवाह मण्डल यज्ञोपवीत धारण की गयी नारी से मंत्र पाठ करवाता है।[९५] इस प्रकार कन्या शिक्षा देने से पूर्व उसका उपनयन संस्कार करवाने का स्पष्ट उल्लेख है। पु की भांति उसके लिये भी मेखला आदि बांधना विहित है। इस मेखला विवाहकाल में ही खेला जा सकता है।[९६]

स्त्री की शिक्षा का अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व :

समाज में बुद्धिमान और बुद्धिशून्य सभी प्रकार के मनुष्य निवास क हैं। यद्यपि वैदिक साहित्य के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह नीच अथ पति भी क्यों न हो शिक्षा प्राप्त करने और उसके लिये उपनयन संस्कार होना आवश्यक कहा गया है तथापि व्यवहार के अन्दर अनेक व्यक्ति अप अशिक्षा असामर्थ्य और राज्य की अव्यवस्था के कारण अपने बच्चों को शि देने में असमर्थ सिद्ध होते हैं। यही कारण है कि पारस्कर के गृह्यसूत्र में स्त्रि उपनीत और अनुपनीत दोनों प्रकार की कही गयी हैं।[९७] हारीत धर्मसूत्र में दो प्रकार की नारियों की गणना है। पहली वे जो कि ब्रह्मवादिनी है और दूस वे जो सद्योवधु।[९८] द्विविधाः स्त्रियों ब्रह्मादिन्य सधोवधू नारियों अपनी शैशवाव से ही संस्कार शून्य, अशिक्षित अर्थात् शूद्र होती हैं। हारीत के अनुसार शूद्रों सदृश जीवन भर अशिक्षित एवं संस्कार शून्य रहना स्त्रियों के लिए उचित न है।[९९] हारीत के अनुसार जिस प्रकार शूद्र जीवन भर अशिक्षित एवं संस्कार शू रहता है उसी प्रकार स्त्रियों के लिये उचित नहीं है। यदि स्त्रियों अप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैशवावस्था में शिक्षा आदि प्राप्त करने में असमर्थ रही है तो भी उनको विवाह के समय उपनयन अर्थात् यज्ञोपवीत धारण करवाकर उनमें उत्तम संस्कार भर देने चाहिए।[१००] हारीत के विचार में नारी की शिक्षा और दीक्षा पुरुष से भी अधिक आवश्यक है क्योंकि उसके गर्भ से ब्राह्म, क्षत्रिय, और वैश्य गुण सम्पन्न सभी प्रकार के बालकों और बालिकाओं का जन्म होता है क्योंकि शूद्र योनि में इन गुणों से सम्पन्न व्यक्ति जन्म नहीं ले सकते इसलिए नारी को तो सभी संस्कार कराने की चाहिए।[१०१]

कुछ विद्वानों के अनुसार हारीत का स्त्रियों के दो विभाग करने का तात्पर्य नारी शिक्षा विषय में विकल्प उपस्थित करना है। उनके अनुसार समाज में कुछ ही ऐसी ब्रह्मावादिनी नारियां सभंव है जो कि शैशवावस्था से ही उपनयन आदि संस्कार से सम्पन्न होकर विदुषी बनने में समर्थ होती है। किन्तु उनका यह कथन उचित प्रतीत नहीं होता। उसने तो स्पष्ट शब्दों में "तस्मात् दन्दसा स्त्रिय संस्कार्या:" कहकर उनके लिए शिक्षा को सर्वथा अनिवार्य कहा है मैसूर प्राच्यविद्या विभाग पुस्कालय के अध्यक्ष श्री महादेव शास्त्री ने इस विषय में ठीक ही लिखा है :

"Hārīta does not give us to undestand that he is recording the effect status of a former Yuga or Kalpa, on the contrary he insists on the observance of the laws he lays down giving same cogent reasons for his view."

आगे चलकर उन्होंने पुनः लिखा है कि–"हारीत का जीवन काल जो कोई भी हो उसका कन्याओं के उपनयन तथा वेदाध्ययन आदि विषयक विधान वेदानुकूल होने से हमारे लिए उक्त समस्त स्मृतिकारों की अपेक्षा अधिक मान्य है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कन्या को शिक्षित करने में विशेष प्रयत्न करना चाहिए। महानिर्माण तंत्र के अनुसार कन्या को अत्यन्त यत्न से शिक्षित करना चाहिए।

कन्याओं की शिक्षा के विषय :

छान्दोग्य उपनिषद् में सनत्कुमार ने नारद को शिक्षा देने से पूर्व इस बात की जानकारी की कि वह किन-किन विषयों का ज्ञान रखता है। नारद ने कहा, "भगवत्, ऋग्वेद, यर्जुवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, व्याकरण, गणित, पितृ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या, काल, विज्ञान, नीति, आचरण शास्त्र, नक्षत्र विज्ञान, निरुक्त, तर्कशास्त्र, सामाजिक शास्त्र, रूपविद्या तथा नृत्य गीत आदि कलाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर चुका हूँ।[१०३] इन विषयों के अतिरिक्त अनुशासन (छः वेदांग) आख्यानादि अनेक विषयों का उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होता है शास्त्रों में प्रायः संगीत, नृत्य, आलेखन, तण्डुल, कुसुम, बालिविकार, खाने की थाली, फूल आदि सजाने आदि ६४ कलाओं का विवरण प्राप्त होता है शास्त्रों में प्रायः संगीत, नृत्य, वात्स्यायन कामसूत्र में स्त्री शिक्षोपयोगी अनेक विषयों और कलाओं का वर्णन है। उपर्युक्त सभी विषयों का भली-भाँति ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेद ब्रह्मचारी को चाहे वह बालक हो या बालिका प्रेरित करता है। अथर्ववेद के अनुसार ब्रह्मचारी को अपने मन में ज्ञान प्राप्त करने की ज्वाला रखनी चाहिए।[१०४] वह नयी-नयी विद्याओं को सीखने के लिए सदा लालायित रहे। कन्या भी ये सभी विषय यथाशक्ति अवश्य सीखें।''

मनु ने कन्या को वेद (जो कि सभी ज्ञान विज्ञानों के भण्डार माने जाते हैं) पढ़ने का उपदेश दिया है।[१०५] इससे यह अर्थ निकलता है कि उसे वेद की भाषा एवं साहित्य को समझने में सक्षम होना चाहिए। शतपथ, ऐतरेय तथा निघण्टु ने विदुषी नारी को वाणी अर्थात् भाषा का प्रयोग करने वाली और उसके मर्म को भली-भाँति समझने वाली कहा है।[१०६]

इस प्रकार स्पष्ट है कि नारी वाणी की अधिपति हो, उसको अपने शिक्षा काल में भाषा सीखने का खूब अभ्यास करना चाहिए। वह भाषा पर अपना अधिकार रखकर सुमधुर वाणी से लोगों को शिक्षा देने में अपने को समर्थ बनाये। भाषा में कर्म को भली-भाँति समझकर समाज के लिए उसका प्रयोग करने वाली अनेक नारियों के नाम वैदिक साहित्य के साथ सम्बद्ध है। लोपामुद्रा ने ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के २३ वे अनुवाद के १९६वें सूत्र का सृजन किया था। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के १०-१३४, १०-३९, १०.४०, ८-९१, १०, १०-१०६, १०-१५४, १०-१५९, १०-१८९, ५-२८, ८-९१ आदि सूत्रों की ऋषिकाएं हैं। गोधा, धोषा, विश्ववारा, अपाला, रोमशा आदि जिनको कि वेद की भाषा पर पूर्ण अधिकार था।[१०६] ऋग्वेद की इन ऋषियों की सूची बृहद्देवता के २४ वे अध्याय में भी प्राप्त होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि कन्याओं को भाषा के मर्म को भली प्रकार सीख लेना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषदों में गार्गी, मैत्रेयी आदि विदुषी महिलाओं के नाम विद्यमान है जो कि दर्शन तथा इस प्रकार के ऐतिहासिक सिद्धातों की पण्डिता प्रतीत होती है। इस प्रकार कन्या को दर्शन और इतिहास की शिक्षा भी प्राप्त करनी चाहिए।

वैदिक साहित्य में सामगान सुप्रसिद्ध है। उसके अध्ययन के लिए गान विद्या का पंडित होना अत्यन्त आवश्यक है। कन्या को सामवेदन पढ़ने की आज्ञा दी गयी है। अतः उसके लिये सामगान तथा संगीत का सीखना अनिवार्य है। ऋग्वेद में नारियों का उत्सवों में गाने का विधान है।[१०८] एक अन्य स्थन पर स्त्रियों को अपने पतियों को संगीत द्वारा प्रसन्न करने का आदेश है।[१०९]

संगीत के साथ ही नृत्य का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः कन्या को नृत्य कला की भी शिक्षा दी जानी चाहिए। उषा का वर्णन अनेक स्थलों पर सूर्य के सामने नृत्य करने के रूप में प्राप्त होता है। इससे नारी द्वारा नृत्य करने की ध्वनि निकलती है। नृत्य करने वाला एक लड़की के समान ही उषा को कहा गया है।[११०] इस प्रकार कन्या को नृत्य कला में प्रवीण होनी चाहिए। नृत्य उसके शरीर के स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है।

कन्या को अपने ब्रह्मचर्य काल में अन्य सभी प्रकार की विद्याओं के साथ ही धार्मिक अग्निहोत्र सन्ध्या वन्दनादि की शिक्षा भी दी जानी चाहिए। ऋग्वेद ने इसी तथ्य को "नारी सभी प्रकार के यज्ञों को ब्रह्म देव यज्ञ आदि को धारण करे।" कहकर स्पष्ट किया है।[१११] एक अन्य यज्ञ स्थल पर कन्या को चरित्र सम्बन्धी शिक्षा देने के साथ साथ यज्ञ में ब्रह्म बनने के शिक्षा भी दी गयी है।[११२] इस प्रकार नारियों का धार्मिक शिक्षा प्राप्त करना भी अनिवार्य माना गया है

वेद के अनुसार नारियां युद्ध में जा सकती है। राजनीति में भाग लेकर राज्य व्यवस्था में सहायता प्रदान कर सकती है। इनसे उनका युद्ध तथा राजनीति की शिक्षा प्राप्त करना सूचित होता है।

अथर्ववेद में दो युवतियों की बुनाई की शिक्षा की उष्मा से सृष्टिक्रम को समझाया गया है।[११३] इससे कन्याएं बुनाई की शिक्षा प्राप्त करती है, ऐसा सूचित होता है।

इस प्रकार कन्या को अपने ब्रह्मचर्य काल में ही अनेक विद्याओं को सीख लेना चाहिए। उसके अध्ययन के विषय पुरुषों की शिक्षा के विषयों से भी अधिक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) ब्रह्मचर्य काल का एक महान व्रत :

इस काल में विद्यार्थी को समय पालन और नियम अथवा व्यवस्थापन में रहकर के कठोरतप, संयम और त्याग से अपने जीवन को व्यतीत करते हुए अपने तन-मन और धन को शिक्षा प्राप्ति के उद्देश्य से लगा देना होता था। बाहर की प्रवृतियों और गृहस्थाश्रम सम्बन्धी चर्चाओं से मुख मोड़ कर केवल मात्र ज्ञानों का संग्रह की उसका उद्देश्य होना। वैदिक साहित्य विद्यार्थी को इस काल में ब्रह्म अर्थात् ज्ञान के विशाल सागर की सैर करवाने के लिये अपनी जीवनी शक्ति को सुरक्षित रखने का आदेश देता है। उसके ऊपर एक कठोर अनुशासन और एक सुयोंग्य आचार्य की व्यवस्था करके सदा वीर्य रक्षा के साधनों से अवगत कराकर एक महान शक्ति को उत्पन्न करता है।

महर्षि वशिष्ठ ने कन्या को "अस्पष्टमैथुना" कहकर उसे इस काल में सभी प्रकार के मैथुनों से शक्ति होने का आदेश दिया है।[११३] गौतम ने "अनन्यपर्चा" तथा मनु ने अविलुप्त[११४] ब्रह्मचर्य इन कथनों से इसी इन्द्रिय संयम की चर्चा की है। उसे "अवतयोनि"[११५] तथा "जितेन्द्रिय" कहकर ब्रह्मचर्य का कठोर पालन करते हुए शान्तिपूर्वक शिक्षा प्राप्त करने का उपदेश दिया है। अथर्ववेद तथा ऋग्वेद में उसे "सूर्या" कहकर उसमें अद्भुत प्रबल तेजस्विता का निवास बताया है।[११६] जिससे उसका इस आयु तक सम्पूर्ण वासनात्मक प्रवृत्तियों का बचा रहना सूचित होता है ऋग्वेद के इसी सूत्र में उसे "सुअश्वा" कहकर उसकी उपमा आत्मा से दी गयी है, अर्थात् जिस प्रकार आत्मा इन्द्रियों का स्वामी होता है उसी प्रकार युवती भी उनको अपने वश में रखकर शासन करने में समर्थ सिद्ध होवे। ऋग्वेद में तू उत्तम वीर्य और बल को देने वाले ऐश्वर्य को धारण कर" "ऐसा कहकर कान्तिमती बनने को उपाय बताया गया है तथा "शुद्ध" स्वच्छाचार वाली (तू) आर्तव आदि से शुद्ध होकर रहे।" कहकर उसे अखण्ड ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया है।[११७] उसकी उषा से उपमा देकर उसे "अजुर्या" अर्थात् वयस और वलवीर्य की हानि करती हुई ब्रह्मचारिणी कहा है। अथर्ववेद में पिता को कन्या पर कठोर नियंत्रण रखने का निर्देश दिया गया है। वहाँ उसके इस स्वत: घूमने एवं इधर-उधर वृथा हाथ फैलाने का निषेध किया गया है।[११८] मनु ने भी उसे सब प्रकार की बुरी प्रवृत्तियों एवं चंचल मन से होने वाले विकारों से बचाने के लिये पिता को नियुक्त किया है।[११९] अथर्ववेद में उसके देह और आत्मा के विद्यमान सम्पूर्ण दुर्विचारों तथा क्रूरता रूप पापों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान और विद्या के उपदेश से नष्ट करने की आज्ञा दी है। क्रोध और चंचलता इन दुर्गुणों से बचने के लिए अधिक खाने का निषेध किया गया है।[१२०] ऋग्वेद के अनुसार कन्या अपने आचरण पर नियंत्रण और व्यवस्था रखकर अपने को भावी जीवन के लिए सफल बनावें।[१२१] अथर्ववेद के अनुसार कन्या "यामिनी विजायते" अर्थात् यम नियमों का पालन करने वाली होकर द्विजन्मा बनती है और इस प्रकार ब्रह्मचर्य के आदेश को पूर्ण करती है।[१२२] यजुर्वेद के अनुसार इस व्रत का पालन करके वह विदुषी और पूज्या बनती है।[१२३]

ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार "आप:" शब्द का अर्थ नारियां भी होता है ऐसा मान लेने पर अथर्व० १.४.२ का स्त्री पक्ष के अर्थ करने से भाव होगा "जिन्होंने ब्रह्मचारिणी रहकर सदुपदेश आदि से अपने आपको वीर्यशालिनी एवं शक्तिशालिनी बना लिया है"। मनु ने "मन, वाणी, देह का संयम करने वाली कन्या को ही पति लोक की अधिकारिणी कहा है।"[१२४]

इस प्रकार कन्या को इन्द्रिय संयम एवं सभी प्रकार के मैथुनों से रक्षित होने का उपदेश देकर उससे एक महान व्रत का पालन करवाया है। उसकी शोभा इसी में है कि वह धुले हुए वस्त्र के समक्ष निर्मल हो। तभी शक्ति और ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ सिद्ध हो सकती है।

(ङ) सहशिक्षा का विरोध :

ब्रह्मचर्य काल में पालन किये जाने वाले एक कठोर व्रत का पालन करने के लिए वेद महान साधना एवं कठिन नियमों के पालन पर तो बल देता ही है, साथ ही सहशिक्षा का विरोध करने उनके कौमार्य की रक्षा का उपाय बतलाता है।

युवक और युवती एक दूसरे के आकर्षण के केन्द्र हैं। एक को देखकर दूसरा अविचलित नहीं रह सकता। रूप और आयु का बिना विचार किये ये संभोग में प्रवृत्त होती हैं। नारी चंचल चित्त के कारण अपने पति से भी विकार कर बैठती है। आदि स्थलों से स्पष्ट है कि कन्या किसी कुमार को देखकर शान्ति और गंभीरतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने में असमर्थ है।[१२५] कठोपनिषद् में यम, नचिकेता के प्रश्न का उत्तर देने के स्थान पर "ये स्त्रियां गाजे-बाजे वाली हैं। ऐसी स्त्रियां मनुष्य को प्राप्त होना दुर्लभ हैं। इनसे तू सुख प्राप्त कर" कहकर उसे स्त्री के रूप और स्पर्श के आनन्द में फंसा देना चाहता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अज्ञानी युवक कन्या के रूप लावण्य को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखकर अपनी सुध बुध खो बैठता है और उसी में खोकर अपना सर्वस्व नाश कर डालता है। इसके विपरीत कन्या भी युवक को ही सर्वस्व मान अपने ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य को भुला बैठती है। नचिकेता का यम द्वारा प्रदत्त नारियों का अस्वीकार करना और तभी ज्ञान प्राप्त करना इसी बात का प्रमाण है कि नारियों के साथ रहकर (अर्थात् सहशिक्षा द्वारा) ज्ञान प्राप्ति दुर्लभ है।

मनु तो मानव की प्रवृतियों की रोकथाम के लिए छोटी-छोटी आशंकाओं से भी बचे रहने का उपदेश देते हैं। उनके अनुसार यद्यपि शिष्य को गुरु पत्नी के साथ व्यवहार आचार्यवत ही रखना चाहिए उसकी सभी प्रकार की सेवा करनी चाहिए किन्तु उसे उबटन लगाना, स्नान करवाना, देह दबाना एवं फूलों से उसके बाल गूंथने का उसे निषेध किया है। यदि गुरुपत्नी युवती है तो उसको दूर से ही अपना नाम बतलाकर नमस्कार कर दे। उसके पास जाने की और उसके पैर छूने की कोई आवश्यकता नहीं है। कई स्थलों पर कहा गया है कि वह किसी स्त्री को न माला चन्दन आदि भेजे न उससे परिहास, आलिंगनादि करें, न उसके वस्त्रादि का स्पर्श करें और न आसन तथा शय्या पर ही उसके साथ बैठे। ये सभी परस्त्री के संग्रहण के समान त्याज्य है। सहशिक्षा में ये सभी बातें स्वाभाविक एवं अनिवार्य हैं।[१२६] अतः प्रकारान्तर से इन वचनों के द्वारा सहशिक्षा का ही विरोध किया गया है।

ऋग्वेद के अनुसार ज्ञानद्रष्टा विद्वान् नारी के मन को शासन न होने योग्य अर्थात् प्रबल बताता है और आकर्षण होने की अवस्था में उसके काम एवं सामर्थ्य को अदभ्य कहता है।[१२७] अतः पुरुष को उपदेश है कि "तू किसी भी स्त्री से मित्रता न कर, क्योंकि स्त्री पुरुष की मित्रता कभी वास्तविकता नहीं हो सकती। इस मित्रता को जंगली भेड़िये आदि पशुओं के छल-क्रूरता आदि से परिपूर्ण हृदय की भांति कहा गया है।"[१२८] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार परस्त्री को अमृत ही समझना चाहिए।[१२९] मैत्रायिणी संहिता में दासी को भी परपुरुष के साथ विचरण करने पर मृत्यु की देवता से सम्बद्ध कहा है।[१३०] अतः मनु का कथन है कि विद्वान् लोग उनमें प्रमत्त नहीं होते हैं अर्थात् उनके पठन-पाठन आदि की व्यवस्था पृथक् ही करते हैं।[१३१]

इस प्रकार वैदिक साहित्य के अनुसार स्त्री और पुरुष पृथक्-पृथक् ही विद्या की प्राप्ति करें और जब सच्चे ज्ञान को प्राप्त कर चुके, सत्यासत्य का विवेक कर लेने पर स्त्री से दुर्व्यवहार की हानियों का समझ लें और उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भगिना" और "सुभगो" कहने का अभ्यास कर लें, तभी एक दूसरे के साथ मिलकर अपना जीवन सुख और शान्ति से व्यतीत करें। ऋग्वेद के अनुसार, जब कन्याएं उत्तम पुरुष द्वारा प्राप्त करने और कर्मकुशल हो जाय तब आचार्य उनकी मेखला को खोल दें और वे उत्तम हार्दिक उमंगों सहित दुष्टाचरण, पापों एवं अपराधों से रहित होकर किसी योग्य पुरुष के साथ सुखपूर्वक निवास करें।[१३३]

वैदिक काल की विदुषियां : शिक्षा में उनकी देन

वैदिक साहित्य में नारी शिक्षा के विकास में विदुषियों की देन उल्लेखनीय हैं। वैदिक ऋचाओं की रचना से लेकर साहित्य, कला नृत्य संगीत और संस्कृति की समृद्धि में उनके योगदान को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त दार्शनिक आध्यात्मिक और सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने अपने कौशल और प्रतिभा का परिचय दिया है।

भारतवर्ष के इतिहास में ऋग्वैदिक काल का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि ऋग्वेद भारत का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इसी ग्रन्थ से प्राचीन भारतीय समाज पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। इस समाज के माध्यम से मनुष्य के व्यक्तित्व का उत्कर्ष या समुचित विकास होता है मनुष्य के भीतर आत्म संयम, आत्म चिन्तन, आत्म विश्वास, आत्म विश्लेषण, विवेक, भावना न्याय प्रकृति और आध्यात्मिक वृत्ति का उदय होता है इसी कारण इस काल में पुरुष एवं नारी दोनों ने शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् समाज के विकास में समुचित योगदान दिया। वास्तव में नारी उस समय शक्ति की प्रतीक और पूज्य समझी जाती थी। आलोच्य काल में अनेक विदुषियां भारत में हुई जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में अपनी ख्याति प्राप्त कर समाज और राष्ट्र को गौरवान्वित किया जिनमें घोषा, लोपामुद्रा और अपाला के नाम उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त कई अन्य विदुषियां भी हुई जिनको भाषा एवं साहित्य के पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त था। इनमें रोमशा, विश्ववारा, वाक और इन्द्राणी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में इनका योगदान सराहनीय था जिनके कारण ऋग्वैदिक समाज उन्नति के पथ पर आरूढ़ हो सका।

उत्तर वैदिक काल में अनेक विदुषियां उत्पन्न हुई जिनका उल्लेख काव्यों ग्रन्थों में है। इस काल की नारियों ने भी शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में अपना योगदान दिया और भारतीय समाज को आगे बढ़ाया। वास्तव में इस काल की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारी शिक्षा में कई प्रतिबन्ध लगा दिये गए थे। फिर भी ऐसी अनेक विदुषियां हुईं जिन्होंने उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा को अपने कीर्ति से अमर बना दिया। इनमें गार्गी, मैत्रयी, वाजसनेयी आदि महिलाओं ने शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में विशिष्ट सम्मान प्राप्त किया था। उत्तर वैदिक कालीन विदुषियों में गार्गी और वाजसनेयी के नाम प्रकाश पुंज की तरह दिव्यमान है। यहां पर मैत्रेयी का उल्लेख करना भी आवश्यक है जिन्होंने अध्यात्मिक शिक्षा में ख्याति प्राप्त की थी तथा इनका जीवन चरित्र भी बड़ा रोचक था। जो भारतीय महिलाओं के लिए प्रेरक है।

(क) ऋग्वैदिक काल

(ख) उत्तर वैदिक काल

(क) ऋग्वैदिक काल :

ऋग्वैदिक काल में ऐसी अनेक नारियों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने कई वैदिक ऋचाओं की पूरी रचना की जिनकी संख्या संभवत: सत्ताईस थी। इन नारियों को "ऋषिका" अथवा "ब्रह्मवादिनी" कहते हैं।[१३४] परन्तु कुछ नारियां इस प्रकार की थी जो इस ऋचाओं का मात्र अपनी मधुर स्वरों में गायन करती थी। ऋग्वेद के अनेक सूत्रों में यह संकेत मिलता है कि महिलाओं की रचनाएं, संगीत और काव्य दोनों ही दृष्टियों से पुरुष रचनाकारों से किसी भी अर्थ में कम नहीं थी। इन स्त्रियों ने उस समय के प्रबल मानवता के कल्याण के लिए अपनी ऋचाओं में प्रार्थना की थी। इसके अतिरिक्त इस युग की कुछ महिलाएं शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में भी विद्वता प्राप्त करने के अनेक उदाहरण प्राप्त है।[१३५] इन ऋषिकाओं एवं विदुषियों के विवरण उपलब्ध हैं।

घोषा :

ऋग्वेद में वर्णित ऋषिकाओं में घोषा का स्थान सर्वश्रेष्ठ था क्योंकि इनका उल्लेख ऋग्वेद में बार-बार आता है। (ऋग्वेद १/११७.१०.३६) घोषा एक ऐसे राजकुल की कन्या थी जो अपनी विद्वता और पांडित्य के लिए प्रसिद्ध थी। उसके पिता का नाम कक्षीवत् था तथा पितामह का नाम दीर्घतम था। इन दोनों ने ही भगवान अश्विन (जो देवताओं के चिकित्सक हैं) के अनेक ऋचाओं की रचना की। कन्या होते हुए भी घोष अपने इच्छानुसार योग्य वर प्राप्त करने में असमर्थ थी, वह श्वेत कुष्ट रोग से पीड़ित थी। घोषा ने भगवान अश्विनी की प्रशंसा में दो ऋचाओं का निर्माण किया। परिणामस्वरूप उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थनाओं से प्रसन्न होकर अश्विनी ने उसे रोग मुक्त कर विवाह योग्य बना दिया। उसका विवाह कक्षीवान जैसे योग्यवर के साथ सम्पन्न हुआ।

घोषा का आख्यान इस प्रकार है :

महर्षि दीर्घतमा के पुत्र का नाम कक्षीवत् था। ये भी अपने पिता के ही समान यशस्वी विद्वान् थे। इनकी शादी राजा स्वनय की आयुष्मती पुत्री के साथ हुई। स्वनय ने कक्षीवत् को दहेज में प्रभूत धन-सम्पत्ति भेंट की। कक्षीवत् ऋषि को एक पुत्री उत्पन्न हुई। यह बड़ी ही गुणवती तथा चतुर थी। ऋषि ने प्रसन्न होकर अपनी कन्या का नाम घोषा रखा।

घोषा को विधाता के क्रूर अट्टहास का सामना करना पड़ा। घोषा पर क्रूर नियति ने आक्रमण किया। उसे रोग हो गया। शरीर सौन्दर्य बिगड़ गया। अंगों की सुन्दरता खत्म हो गयी। जो शरीर पहले तप्त स्वर्ण की भांति पीला था और दर्शकों की आखें बरवस जिसकी और खिंच जाती थी वहीं शरीर अब विकृत हो गया। लोग उधर देखने में सकुचाने लगे। उसे देखते ही घृणा का सञ्चार हो जाता था।

काल की गति कभी रुकती नहीं। बसन्त ऋतु अपने समय पर आती और जंगल को हरा-भरा बना देती है। आम्र मंजरियाँ महम उठती हैं, कोयल कूकती तथा प्रकृति प्रसन्न हो जाती है। इस भांति वर्षा भी अपने समय पर आकर जल थल को सराबोर करती है और शरद् ऋतु आकर निरभ्र आकाश में सौन्दर्य का चार चाँद लगाती है। काल अनायास ही अपनी लीला को दिखाता चला जाता है। उसे यह ध्यान नहीं रहता कि कौन कहाँ पड़ा क्या कर रहा है? जन्म-मृत्यु काल के लिए महत्त्व की वस्तु नहीं। कितनों को आते-जाते वह देख चुका है।

समय बीतता जाता है और घोषा की अवस्था भी बदलती जाती है। अब उसमें जवानी ने अपना रंग जमाना शुरू कर दिया है। शरीर की क्यारियां हरियाली का स्वागत कर रही है। हृदय पपीहा पी की खोज करना चाहता है। घोषा के पिता का हृदय चिन्ता की आग में जल रहा है आखिर घोषा को किसे सौंपा जाय? कौन व्यक्ति इस रोगिणी को ग्रहण करेगा? उन्होंने बहुत परिश्रम किया पर उनका सारा प्रयत्न असफल रहा। किसी ने घोषा के साथ विवाह करना स्वीकार नहीं किया। अन्त में वे "प्रभु की इच्छा सोचकर शान्त हो गये। विवाह की आशा उन्होंने छोड़ दी।"

घोषा के जीवन ने असीम काल सरिता को पार किया। कितने ग्रीष्म,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितने शरद् और कितने हेमन्त आये और चले गये पर घोषा के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उस बेचारी के मानस सागर ने कभी आनन्द चन्द्र का साक्षात्कार नहीं किया। पिता के दुःख को बढ़ाती हुई वह उन्हीं की कुटिया में पड़ी रहती। सुबह उठकर स्नानध्यान, गृह परिचर्या, अग्नि सेवन, और नियमित स्वाध्याय यही उसका जीवन है। न इस क्रम में कहीं चिराग है न कहीं व्यवधान। प्रस्तर के समान एक समान जीवन को यह व्यतीत कर रही है जो कहीं भी उबड़-खाबड़ नहीं है। उसके इस साहसिक और दैन्य जीवन पर किस प्राणी को दया नहीं आ सकती।

परन्तु इसका यह आशय नहीं कि घोषा को अपने जीवन पर दुःख नहीं था। कौन ऐसी स्त्री होगी जो इस प्रकार किसी भी व्यक्ति द्वारा स्वीकृत न होने पर प्रसन्न रहेगी। बेचारी मन हीं मन कुढ़ रही थी। विधि की विडम्बना और संसार के अपमान ने उसके हृदय को टूक-टूक कर दिया था। उसे जीवन में कभी सुख और सन्तोष मिला ही नहीं। वह दिन रात सोचती रहती कि "मेरा इस संसार में कौन है। अविवाहिता की तो सद्गति भी नहीं। मै बड़ी पापिन हूँ जिसे न पति और न तो सन्तान ही है। मेरा जीवन व्यर्थ है। इसे धिक्कार है।"

घोषा को इस प्रकार दुःख सहते-सहते साठ वर्ष बीत गये। बचपन, यौन और वृद्धावस्था के भी कुछ दिन उसने बिता दिये। उसके बाल अब सफेद हो चले, मुख पर झुरियां पड़ने लगी। शरीर में शैथिल्य का आगमन होने लगा। घोषा की चिन्ता ने दाहक अग्नि का रूप धारण कर लिया। जिसको यौवन में कोई नहीं पूछ सका उसे वृद्धावस्था में कौन पूछेगा। हाय रे अभागिनी घोषा। बिना पति और पुत्र के व्यर्थ ही तू वृद्ध हो गयी। जीवन तेरे लिये अभिशाप है।

घोषा सोचने लगी, "मेरे पिताजी ने अश्विनी कुमारों की कृपा से यौवन, दीर्घ आयु, स्वास्थ, शक्ति और शत्रुओं को नष्ट करने वाला विष प्राप्त कर लिया। नासत्यों की कृपा बड़ी फलवती होती है। मैं भी तो कक्षीवत् की ही कन्या हूँ। यदि मुझे भी अश्विनी कुमारों को प्रसन्न करने वाले मंत्र उपलब्ध हो जाते तो सौन्दर्य तथा सौभाग्य को प्राप्त कर लेती। मै भी तो तपःपूत जीवन व्यतीत कर रही हूँ। अश्विनी कुमारों की प्रार्थना करने पर अवश्य वे मुझे प्रसन्न होकर यौवन, सौन्दर्य सौभाग्य प्रदान करेंगे।

घोषा इस प्रकार सोच ही रही थी कि उसमें दिव्यदृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ। उसने सारे जीवन को तो तप और अध्ययन में ही बिताया था। उसकी साधना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफल हो गयी। अश्विनी कुमारों की स्तुति में उसके मुख से दिव्य मंत्र उसी प्रकार फूट निकले जैसे पतितपावनी भागीरथी गंगा की लहरों से कलकल रव। घोषा दिव्य अश्विनी कुमारों की स्तुति करने लगी।

"हे अश्विनी कुमारो! आप दोनों चतुर्दिक जाने वाला रथ दिन-रात यजमान के द्वारा प्रार्थनीय है। मैं भी अपने पिता की भांति उसी रथ की प्रार्थना करती हूँ। हे देवो! आप लोग पिता के घर में वृद्ध हो रही दुर्भाग्यशालिनी घोषा के भाग्य बनिये। आप लोग भूखों, निकृष्ट जाति वालों, अन्धों तथा दुर्बलों के रक्षक हैं।

आप लोगों ने वृद्ध च्यवन को नया कर दिया। आप लोगों ने तुग्र-पुत्र भुज्यु को समुद्र से उबारा। आप लोगों के ये विश्व प्रसिद्ध कर्म यज्ञों में प्रशंसित होते हैं।

हे देवो! यह घोषा आप लोगों की प्रार्थना कर रही है इसे सुनकर पिता, जैसे पुत्र को शिक्षा देता है वैसे आप लोग मुझे शिक्षा दें।

आप लोगों ने पुरूमित्र की कन्या को विमद ऋषि की पत्नी बनाया। आप लोगों ने संग्राम में हाथ जिसका कट गया है, उस वध्रिमती को स्वर्ण निर्मित हाथ दिया।

"हे नेतृभूत देवो! आप लोगों के विषय में मैं भी सभी वृद्धजनों से पूछा करती हूँ। मुझ कक्षीवत् पुत्री घोषा के दिन रात के कर्मों में आप लोग व्याप्त हो जाएँ।

भक्त की प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं जाती। भक्तों पर अनुकम्पा करना देवताओं को सहज धर्म है। घोषा ने अश्विनी की शुभस्पती रूप में स्मरण किया। उसकी प्रार्थना से अश्विनी कुमार प्रसन्न हो गये। वे दिव्य रथ पर चढ़े, दिव्य रूप को धारण किये घोषा के सामने प्रकट हो गये। दिव्य सुवर्ण की माला, दिव्य कवच-कुण्डल, स्वर्णानिर्मित उष्णीय पगड़ी यही तो उनका आभूषण है। उनके दिव्य रूप को देखकर घोषा चमत्कृत हो उठी। उसका दीर्घकालीन दुःख अब दूर हो जायेगा। अब उसकी कामना बेलि में सुन्दर सुमधुर फल लगेंगे। घोषा ने उन दिव्य पुरुषों को प्रणाम कर कहा "मेरा जीवन धन्य है। आप लोगों ने दर्शन देकर मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया।"

इसमें अनुग्रह की क्या बात? तू तो बहुत दिनों से हम लोगों की सेवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती रही। इतने दिनों तक तूने महान कष्ट उठाया इसका हमें खेद है। अब हम लोग तुम्हारे दुःख का दूर करेंगे। तुम्हें सुन्दर युवती बना देंगे और तुम्हें पति-पुत्र से सम्पन्न करेंगे।

घोषा से इस प्रकार कह कर वे दिव्य पुरुष उसके अंग में प्रविष्ट हो गये। प्रविष्ट होकर उन्होंने उसे रोगमुक्त, नवीन अवस्था वाली और सुन्दरी बना दिया। घोषा के सुन्दरी हो जाने पर नासत्यदेवों ने उसके लिए सुन्दरपति तथा सुहस्त्य नामक पुत्र दिया।

पति तथा पुत्र पाकर घोषा परम प्रसन्न होकर अश्विनी कुमारों की प्रशंसा करने लगी। घोषा की मनोवाञ्छा पूरी कर अश्विनी कुमार अर्न्तधान हो गये। (बृहद्देवता ७.४२-४८, ऋ० १.११७.७, तथा १०.३२.४०)

अपाला :

अपाला अत्रि ऋषि के कुल की कन्या थी। इन्होंने स्वतंत्र रूप से ऋग्वैदिक ऋचाओं की रचना की थी। ऋग्वेद के दसवें मण्डल की एकानवीं ऋचा की रचना इसके द्वारा ही की गई थी।। इसी ग्रन्थ के पाचँवें मण्डल में उसने अग्नि का आह्वान किया। सभंवतः अपाला चर्मरोग से पीड़ित थी, जिसके कारण पति ने उसका परित्याग कर दिया था। उसने अपनी ऋचाओं द्वारा अनूठे ढंग से भगवान इन्द्र का आह्वान किया, जिसके फलस्वरूप वह रोगमुक्त हो गई जिसका उल्लेख ऋग्वेद के आठवें मण्डल में है। ऋग्वेद (८.९१.१-७)। इन्द्र को उसने उनका प्रिय सोमरस पिलाया, जिससे तृप्त एवं प्रसन्न होकर उन्होंने उसे रोग मुक्त कर सुन्दर बना दिया। (मजुमदार, आर० सी० (सं०) : ग्रेट वीमेन ऑफ इंडिया, पृ० १३४) इन तथ्यों से अपाला की विद्वता का भी परिचय मिलता है।

सृष्टि की सारी सुन्दरता एकत्र करने पर भी यदि उसमें कोई लाञ्छन दिखायी पड़े तो लोग उसका तिरस्कार कर सकते हैं। इस पर भी यदि उसमें कोई रोग हो जाय तो बात ही क्या पूछनी? सारा किया कराया मिट्टी में मिल जाता है। विवाह प्रसंग में तो इन बातों का और भी विशेष महत्त्व होता है। कोई काना वर अपनी खराब आंख को छिपाना चाहता है तो कोई अपने बहरेपन को उलटा सिद्ध करना चाहता है। लड़कियां तो सलजता के आवरण में अपने दोषों को आसानी से छिपा लेती है और पीछे वर महोदय के ताड़न या असत्कार का शिकार होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपाला इसी प्रकार रोग से आक्रान्त है। वह महर्षि अत्रि की पुत्री है। जिस दिन अपाला ने माता के उदर कुक्षि में प्रवेश किया, उस दिन महर्षि की कामना लता बड़ी प्रफुल्लित हुई होगी। गर्भावस्था में ही नाना प्रकार के गृह्य संस्कारों से वह कन्या संस्कृत होती रही। अन्त में उसका जन्म का दिन आया। अत्रि के आश्रम में आनन्द का उत्सव होने लगा। प्रकृति ने स्वयं इस उत्सव में योग दिया। शीतल मन्द-मन्द वायु बहने लगी। पक्षियों के मधुर कल नाद से जंगल गूंज उठा। पशुओं ने भी अनुकूल हाव-भाव दिखाये। महर्षि के शिष्यों ने सब प्रकार की सुख-सुविधा का प्रबन्ध कर दिया।

महर्षि अत्रि के घर एक कन्या रत्न ने जन्म लिया। महर्षि ने अपने को धन्य माना। किसी सुयोग्य वर के हाथ में देकर कन्यादान का फल मिले। कन्या दान सभी दानों से बढ़कर है। इसी दान के बल पर सृष्टि क्रम चलता है। यदि यह दान न होता तो कभी की यह सृष्टि व्यवस्था समाप्त हो गयी होती। बड़े लाड़-प्यार से उस कन्या का पालन-पोषण होने लगा। अत्रि ने उस कन्या की सुख-सुविधा के लिए कोई कमी उठा नहीं रखी। समय आने पर उस कन्या का नामकरण संस्कार किया गया। विज्ञ पण्डितों ने उसका नाम अपाला रखा। अपने पिता-माता के लाड़-प्यार एवं पिता के शिष्यों के सत्कार से वह अपाला अत्रि के आश्रम में बढ़ने लगी।

परन्तु इसी बीच नियति ने अपनी एक दूसरी लीला दिखायी। अपाला के शरीर में बचपन में ही सफेद धब्बे दिखाई पड़ने लगे। उसका सुन्दर शरीर श्वेत धब्बों से आक्रान्त होने लगा। वैद्यों ने देखा तो श्वेत कुष्ठ के लक्षण पाये। महान अनर्थकारी रोग ने उसके शरीर में प्रवेश किया। यह तो सारी सुन्दरता को उसी प्रकार चौपट कर देता है जैसे हरी भरी खेती को पाला। अपाला के शरीर सौन्दर्य की यह महामारी थी। सभी लोग खिन्न हो गये। किसी प्रकार इस दुर्दान्त रोग से रक्षा हो इसकी चिन्ता सभी को हो गयी। परम पावन महर्षि की कन्या को यह रोग हो यह तो अनुचित घटना ही कही जायेगी।

महर्षि अत्रि ने अपाला के चर्म शोधन का उपाय करना प्रारंभ किया। वैद्य चिकित्सक आने लगे। अच्छा से अच्छा उपचार प्रारंभ हो गया। सभी मानवसुलभ औषधियों की व्यवस्था की गयी। परन्तु प्रभाव तो विपरीत ही नजर आने लगा। जैसे-जैसे चिकित्सा होती वैसे वैसे रोग बढ़ता जाता। दैव पर किसी का वश नहीं। वह अपनी लीला दिखा कर ही रहेगा। वैद्य चिकित्सक हार मान गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने महर्षि से कह दिया कि यह रोग वश की बात नहीं। अब यह औषधि से अच्छा नहीं हो सकता। अत्रि निराश हो गये।

महर्षि अत्रि अपाला के रोग के निदान के प्रति तो निराश हो गये पर उन्होंने अपनी आशा को दूसरी ओर मोड़ा। उनकी कन्या तो किसी न किसी शास्त्र में प्रवीण होनी चाहिये। शरीर की कमी की पूर्ति किसी दूसरे गुण से होनी चाहिए। उन्होंने अपाला को शिक्षा देनी प्रारंभ कर दी। अपाला भी मेधाविनी निकली। महर्षि जितना विषय उसे पढ़ाते थे उतना वह तुरन्त रट लेती थी। महर्षि के अन्य शिष्यों में उसका मान बढ़ने लगा। वह पठन-पाठन में सबसे आगे थी। उसकी सहज मेधाविनी शक्ति ने मुनि को भी चमत्कृत कर दिया। उन्होंने उसे सारे वेद-वेदांग, शास्त्र-पुराणादि पढ़ा दिये। सरस्वती उसकी जिह्वा पर विराजने लगी। विरले पुरुष ही इस प्रकार शास्त्र-ज्ञान में निपुण थे। अपाला परमविदुषी हो गयी।

इस प्रकार आश्रम में रहते-रहते अपाला के शरीररूपी उपवन में यौवन ने पर्दापण किया। यौवन ऐसी असीम शक्ति है कि कुरूप वस्तु भी थोड़े समय के लियें सुन्दर दिखायी पड़ने लगती है। यौवन का काम ही कुरूपता में सौन्दर्य का संचार है। कौन ऐसी स्त्री होगी जो थोड़े दिन तक सुन्दर न लगे। यह प्राकृतिक क्रम है। अपाला पर भी इस सौन्दर्य ने अपना प्रभाव दिखाया। उसकी अंगवल्ली सौन्दर्य पुष्पों से लद गयी। श्वेत धब्बे भी उस समय अपने महत्त्व को कम कर बैठे। पर महर्षि अत्रि पर इस यौवन ने उलटा ही प्रभाव दिखाया। उनकी चिन्ता बढ़ने लगी। कौन इस रोगिणी कन्या को ग्रहण करेगा। सभी लोग तो प्रायः इसके रोग को जान चुके हैं और यदि कोई अनजाने इसे स्वीकार कर भी ले तो पीछे इसका त्याग कर ही देगा। उस समय तो और तकलीफ होगी। मेरी पुत्री को महान उपहास और तिरस्कार का सामना करना पड़ेगा। इन विचारों ने महर्षि अत्रि को व्यथित कर दिया।

किन्तु आखिर किया ही क्या जाये? कन्या को तो अब किसी के हाथों सौंपना ही पड़ेगा। वर भी उपयुक्त होना चाहिये। भले लोगों को सदा यह सोच रहता है कि "कन्या किसे दी जाये, वहां यह प्रसन्न रहेगी या नहीं? महर्षि अत्रि ने वर ढूंढ़ना प्रारंभ कर दिया। कोई गुणवान तथा सुन्दर वर उन्हें चाहिये। अत्रि को उपयुक्त वर मिल गया। सुन्दर सुगठित शरीर, ललाट पर ब्रह्मचर्य की दीप्ति, तपश्चर्या से पूत जीवन और ब्रह्मवेत्ता की सन्तान ये सभी तो गुण ही गुण हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनसे सुन्दरतर वरणीय वर कौन हो सकता है? इनका नाम कृशाश्व है। ये महर्षि अत्रि को सब प्रकार से योग्य जँचे। अत्रि ने शादी की बात पक्की की। कृशाश्व को भी अत्रि-कन्या के उस दुस्साध्य रोग का पता नहीं। वे राजी हो गये। अत्रि जैसे पावन मुनि की कन्या से बढ़कर चित स्त्री उन्हें कौन मिल सकती है? उन्होंने प्रसन्नता से शादी की बात स्वीकार कर ली। उनकी मनोरथबेलि सफल हो गयी। प्रसन्नता से वे खिल उठे।

महर्षि अत्रि भी शादी की बात पक्की कर घर लौटे। विवाह की तैयारियां होने लगीं। जंगल में मंगल का दृश्य उपस्थित हो गया। सुन्दर विवाह मण्डप की रचना की गयी। मण्डप में इस की वेदियां अक्षतों से सुसज्जित थी। प्रज्ज्वलित अग्नि को साक्षी बनाकर अत्रि ने कुश हाथ में लेकर कृशाश्व को अपनी कन्या का दान दिया। सप्तपदी के अनन्तर विवाह कार्य सम्पन्न हुआ। कृशाश्व कई दिनों तक सत्कृत होकर अत्रि के आश्रम में रहे। वहाँ अत्रि ने सब प्रकार की पूजा अर्चा से उन्हें सन्तुष्ट किया। फिर अपनी नवपरिणीता वधू के साथ कृशाश्व महर्षि अत्रि से विदा लेकर अपने आश्रम को लौट आये।

अपने आश्रम में आकर कृशाश्व ने सुखपूर्वक जीवन बिताना प्रारंभ कर दिया। नवीन यौवन, समर्थ व्यक्तित्व और सुन्दरी गुणवती पत्नी इन सभी की एकत्र संघटना तो हो गयी थी। अब और कृशाश्व को क्या चाहिये। उनके राग रंग में दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि होने लगी। कृशाश्व सब प्रकार से अपनी धर्मपत्नी को सन्तुष्ट रखते। उधर अपाला भी उनके सुख सन्तोष का सदैव ध्यान रखती है। दोनों का गार्हस्थ्य जीवन परम सुखमय था।

किन्तु! देव ने अपनी लीला पुनः दिखायी। अपाला का श्वेत कुष्ठ नष्ट थोड़े ही हो गया था। यह तो यौवन की रंगीनी थी जो उधर से ध्यान हटा देता था। इसके अतिरिक्त कृशाश्व का अज्ञान भी उनके जीवन की सुखी बनाये था। एक दिन कृशाश्व की दृष्टि उस पर पड़ ही तो गई। अब क्या था? कृशाश्व को अपाला से घृणा हो गयी। उनका सारा प्रेम समाप्त हो गया। जिस पत्नी का पाणिग्रहण उन्होंने आजीवन निर्वाह करने के लिये किया था। उसके साथ उन्हें अब रहना भी मुश्किल हो गया। साथ छूटे भी तो कैसे? अपाला से कह तो सकते थे नहीं। किन्तु ''वैर प्रीति नहिं दुरई दुराये''-तथा शत्रुता छिपाने से नहीं छिप सकती। ये दोनों चीजें तो प्रकट हो जाती है। कृशाश्व का विराग बढ़ने लगा। अपाला उनके लिये अब बोझ हो गयी। वे किसी प्रकार पिण्ड छुड़ाना चाहते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृशाश्व का यह भाव अपाला से न छिपा रहा। वह भी भोंडी तो नहीं थी। सम्पूर्ण विद्याओं का उसने भी तो अध्ययन किया था। महर्षि अत्रि के सान्निध्य और प्यार ने उसे भी व्यवहार में दक्ष बना दिया था। उसने कृशाश्व के भाव को ताड़ लिया। अब क्या उपाय था।? वह अपने रोग को तो अच्छा कर नहीं सकती थी। जिस रोग को दूर करने में बड़े-बड़े वैद्य चिकित्सक असफल रहे अब वह अच्छा होने को थोड़े ही था।

अपाला ने पितृ गृह में लौटने का निश्चय किया। जहां कोई व्यक्ति विरोध करने लगे वहां से अन्य उपाय न होने पर चले जाना ही श्रेयस्कर होता है अपाला ने अब पिता के यहां शरण ली। वह दूसरा करती भी तो क्या? जब धर्मतः अंगीकार करने वाले महात्मा कृशाश्व ने ही रखना पसन्द न किया तो दूसरा उपचार क्या था?

पिता के घर आकर उसने पुनः घोर तपस्या प्रारंभ कर दी। नियमित भोजन, नियमित शयन, नियमित पूजा पाठ सब तरह से वह संयम करने लगी। प्रातः ही उठकर पुण्यसलिला नदी में स्नान कर सूर्यदेव को अर्घ्य देना उसका नियमित व्रत हो गया। भगवान देवराज इन्द्र की उपासना उसका मुख्य धर्म था।

एक दिन वह जल भरने की गगरी लेकर जल लाने गयी। जल के तीर पर उसे सोमलता दिखायी पड़ी। सोमलता देखकर अपाला का मन प्रसन्न हो उठा। उसने इन्द्र को प्रसन्न करने का सर्वोत्तम साधन प्राप्त कर लिया। सोमरस ही तो इन्द्र का प्रिय पेय है। इसी रस को पीकर ही वह असुरों का संहार करते हैं। सोम चुवाने के लिये जब अपाला को वहां पत्थर नहीं दिखाई पड़े तो उसने दांतों से ही सोमन निकाला। उसके सोम अर्पण से इन्द्रदेव प्रसन्न हो गये और साक्षात् वहां उपस्थित हुये। उन्हें आया देख अपाला गद्गद होकर उनकी स्तुति करने लगी।

"हे इन्द्रदेव! मैं आपके लिये सोम सवन कर रहीं हूँ। इसे ग्रहण कीजिये। देवराज। आप सोम के लिये घर-घर जाते हैं। आप मेरे स्तुतियुक्त सोम को ग्रहण करें। शक्र। आप मुझे केश राशि से परिपूर्ण कर दें, मेरे अंगों को स्वस्थ कर दें तथा मेरे चर्म रोग को दूर कर दें।"

इन्द्र अपाला की प्रार्थना से प्रसन्न हो गये। अपाला को सुन्दरी बनाने के उद्देश्य से रथ के चक्रों के बीच से तीन बार उन्होंने निकला। ऐसा करने में रगड़ से अपाला के शरीर का पुराना चमड़ा निकल गया। उस पुराने चमड़े से तीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव उत्पन्न हुये-शल्यक (शाही), गोधा (गोह), और कृकलास (गिरगिट)। पुराने चमड़े के स्थान पर अब अपाला के शरीर में नये चमड़े उग आये जो रोग हीन तथा सुन्दर थे। अपाला अब परम सुन्दरी तथा सर्वगुणसम्पन्न हो गयी। (ऋ० ८.११, बृहद्देवता ६.११-१०६ भेतिमञ्जरी, सायण भाष्य आदि)

उर्वशी :

उर्वशी ऋषिका इन्द्रलोक की अभिन्न सुन्दरी अप्सरा थी। इसका विवाह राजा पुरूरवा के साथ हुआ था। जिससे उन्हें एक पुत्ररत्न की भी प्राप्ति हुई थी। संगीत तथा नृत्य में पारंगत होते हुए भी उसने ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं को रचना की (ऋग्वेद, १०.९५)। उनमें दसवें मण्डल के ऋचा संख्या ९५ की पंक्ति संख्या-२, ५, ७, ९, ११, १३, १५, १६ एवं १८ उल्लेखनीय हैं।

ऋग्वेद में संकेतित इस आख्यान को शतपथ ब्राह्मण चित्रित करते हुए लिखता है कि जिस पुरूरवा ने श्रांत-अग्नि की स्थापना का रहस्य जानकर याज्ञिक क्रिया का विस्तार किया, उसका उर्वशी नामक अप्सरा से प्रेम होता है पत्नी बनने से पहले उर्वशी राजा पुरूरवा से कुछ प्रतिज्ञाएं करवाती है। पत्नी बन जाने पर उर्वशी, राजा द्वारा प्रतिज्ञा भंग होने पर, गन्धर्वों द्वारा राजा परूरवा को छोड़ देने के लिए बाध्य कर दी जाती है। उर्वशी जब राजा को छोड़कर चली जाती है, तब राजा उसके विरह-दुःख में व्याकुल होकर कुरुक्षेत्र में इधर-उधर विलाप करता हुआ घूमता रहता है।

एक दिन राजा कमल-पुष्पों से सुसज्जित तालाब में स्वर्णाभूषणों से सुसज्जित हंसिनी के रूप में उर्वशी को देखता है। उर्वशी राजा की दयनीय दशा देखकर उससे कहती है कि इस वर्ष की अन्तिम रात में तुम मेरे साथ रह सकोगे तभी तुम्हें एक पुत्र होगा एक वर्ष बाद दोनों का मिलन होता है तब उर्वशी राजा से कहती है कि प्रातः कुछ गन्धर्व तुम्हारे पास आकर वर मांगने के लिए कहेंगे, तुम अपनी अभीष्ट वस्तु उनसे मांग लेना। राजा उर्वशी से ही वर मांगने के लिए पूछता है। उर्वशी राजा से कहती है कि तुम गन्धर्वों से यही वर मांग लेना कि तुम अपने ही समान मुझे भी गन्धर्व बना लो।

गन्धर्वों से राजा जब गन्धर्व होने का वर मांगता है तब गन्धर्व उसे एक अभीष्ट अग्निहोत्र यज्ञ की विधि बताते हैं, जिसके सम्पादन से एक मानव भी गन्धर्व बन सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरूरवा और उर्वशी की कहानी इस प्रकार है :

मानव सृष्टि के प्रारंभ हुये थोड़े ही दिन बीत थे। अभी-अभी मानव ने अपने कार्य-कलापों का नया-नया ताना-बाना फैलाया था। इसी आरंभिक अवस्था में प्रतिष्ठानपुर में इल नाम के राजर्षि राज्य कर रहे थे। इल बड़े ही प्रतापी तथा शूरवीर थे। एक समय राजा इल शिकार करते हुये देवीक्रीड़ नामक स्थल पर पहुँचे। देवीक्रीड़ भगवान शंकर और भगवती पार्वती का निवास स्थान था। किसी समय पार्वती ने सर्वभाव से भगवान् शंकर को सन्तुष्ट किया और कहा कि इस स्थान पर जो पुरुष आयेगा वह स्त्री हो जायेगा। भवितव्यता बड़ी प्रबल है। संयोगवश इल वहीं पहुँच गये और पहुँचते ही स्त्री हो गये। सब वृतान्त ज्ञात होने पर वे भगवान शंकर की शरण में गये जिस पर शंकर ने उन्हें पार्वती की शरण में जाने के लिये कहा। पार्वती इला (स्त्रीरूप हुये इल) से प्रसन्न हुयी और उन्हें पुरुष बना दिया। इस अवधि में स्त्री रूप में राजा के छः महीने रहना पड़ा। इसी बीच दैववशात् एक दिन बुध की दृष्टि इला पर पड़ी और वे काम के वशीभूत हो गये। इन्हीं इला और बुध ने पुरूरवा को जन्म दिया।

महाराजा पुरूरवा पिता से भी बढ़कर वीर तथा पराक्रमी हुय। इन्द्रलोक तक उनके शौर्य तथा पराक्रम का डंका बजने लगा। देवता तक युद्ध में उनकी सहायता के लिये भूखे रहते थे। देवराज इन्द्र उनके अन्यतम मित्र थे। एक बार पुरूरवा देवसभा में बैठे थे। उस समय अप्सराओं में लालमभूता उर्वशी के नृत्य का कार्यक्रम होने वाला था। उर्वशी रंगमंच पर आयी और उसने अपने लालित्य से सबको विस्मित कर दिया। उसकी अंगभंगी ने सारी सभा के हृदय को भंग कर दिया। सारी सभा रस-सागर में गोता खाने लगी। उसके कलरव कष्ठ से मानव नृपति पुरूरवा का हृदय भी झंकृत हो उठा। उसके स्वर के साथ ही पुरूरवा के हृदय के भी तार बजने लगे। महाराज पुरूरवा उस अप्सरा के इन्द्रजाल के सामने अपने धैर्य को खो बैठे। अन्त में उनसे नहीं रहा गया। वे उर्वशी से पृथ्वी पर चलने का आग्रह कर ही बैठे।

प्रतिष्ठानपुर के प्रतापी नरेश का प्रस्ताव! उसका प्रस्ताव जिसके शौर्य सूर्य से तीनों लोक प्रोद्भासित हो रहे थे। भला नहीं कैसे हो? किसमें ऐसी सामर्थ्य है जो उसका प्रत्याख्यान कर सके। सारी सभी असमंजस में पड़ गयी। स्वर्ग की अप्सरा मानव नरेश के साथ पृथ्वी पर जाय और वह भी उसी के साथ रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु, नहीं, उसे चलना ही पड़ेगा। महाराज पुरूरवा की इच्छा पूरी ही होगी। देवताओं की सम्मति मिल गयी।

इधर उर्वशी की अवस्था भी विचित्र थी। उसका मन भी पृथ्वी पर चलने के लिए डोलायमान हो रहा था। पृथ्वी का द्वन्द्वात्मक जीवन-सुख और दुःख का संयोग-क्या तुच्छ है। दैवी प्राणियों का मन केवल सुख के उपभोग से घबड़ा उठता है। उन्हें जीवन नीरस प्रतीत होने लगता है। अन्त में उर्वशी भी पृथ्वी पर आने के लिये प्रस्तुत हो गयी। मित्रावरुण का शाप भी तो उसे मानुषी होने का था।

उर्वशी राजा के आग्रह से पृथ्वी पर आने को तो राजी हो गयी पर उसने उनसे तीन शर्तें रखी। पहली शर्त के अनुसार वह सदा घी पियेगी। दूसरी शर्त के अनुसार वह दो भेड़े (मेष) रखेगी जो कभी उससे अलग नहीं होंगे। तीसरी शर्त के अनुसार वह राजा को शय्या से अन्यत्र नंगा नहीं देखेगी। शर्तें कोई मुश्किल न थी। घी की राजा के पास क्या कमी और भेड़े उनके यहां से हटाने की किसमें सामर्थ्य थी। नंगा भी कोई स्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति नहीं घूमेगा। इनमें से एक भी शर्त के टूट जाने पर उर्वशी ने स्वर्ग चले जाने को कह दिया था।

उर्वशी महाराज पुरूरवा के साथ पृथ्वी पर चली आयी। दोनों का जीवन बड़े चैन से बीतने लगा। महाराज और महारानी के प्रेम में दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि होने लगे। प्रतिष्ठानपुर की सारी प्रजा इस दैव मनुष्य संयोग से बड़ी प्रसन्न थी। दिन यों जल्दी-जल्दी बीतने लगे। कि किसी को पता भी नहीं और चार वर्षों का दीर्घ समय अनायास ही व्यतीत हो गया। राजा के दिन प्राणप्रिया उर्वशी के आलिंगन पाश में कटने लगे। उर्वशी का मान सारी सपत्नियों में बढ़ गया। थी भी तो वह सौन्दर्य की राशि! लोकोत्तर सौन्दर्य की अधिष्ठातृ!!

किन्तु अमरावती में कितने दुर्भाग्यपूर्ण वे दिन रहे होंगे। उस सौन्दर्य राशि के बिना सारा वैभव सूना सा प्रतीत हो रहा था। देवलोक में खलबली मच गयी। वह अमोघ अस्त्र जो यति मुनियों के वज्र कठोर हृदय पर चलाया जाता था अब न रहा। सारा राग-रंग सारी साज-सज्जा बेकार हो उठी। अन्त में उन्होंने उसे फिर से लाने की ठानी, सूने नन्दनवन में कलकण्ठ का संचार करना चाहा। पर आवे तो कैसे? पुरूरवा और उर्वशी के प्रेम में कोई कसूर नहीं है। मर्त्यलोक में आकर उर्वशी तो मानों स्वर्ग सुख को भी भूल गयी। उस पार्थिव राजा ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके हृदय को जीत लिया था। अन्त में सुरलोक के स्वामियों ने छल का प्रश्रय लिया। यह वह अस्त्र है जिसका वे मौके-बेमौके उपयोग किया करते हैं। उर्वशी की शर्त को उन लोगों ने तोड़ने का निश्चय किया।

एक दिन प्रतिष्ठानपुर प्रतापी नरेश पुरूरवा रात के समय अपनी प्यारी पत्नी उर्वशी के पास सोये थे। इसी बीच गन्धर्वों ने चारपाई के पास बंधे भेड़ों में एक को चुरा लिया। वह बकरा चिल्लाने लगा। किन्तु राजा धैर्यपूर्वक शय्या पर लेटे रहे। अपने स्वार्थ को सिद्ध होता न देख गन्धर्वों ने दूसरे भेड़े को भी चुरा लिया। यह भेड़ा जोर-जोर से चिल्लाने लगा। इधर उर्वशी भी कुहराम करने लगी। उसकी प्रिय वस्तु उसके सामने से ही चुरायी जा रही थी। अब राजा के धैर्य का बाँध टूट गया। उस वीरता और तेजस्विता की मूर्ति के सामने से कोई उसकी प्रिया की प्रिय वस्तु को चुरा ले जाय यह असह्य था। वे दौड़ पड़े। समय असमय का ध्यान नहीं दिया। शरीर के वस्त्रों का ध्यान नहीं किया—नंगे ही दौड़ पड़े। गन्धर्वों से बलपूर्वक उन्होंने भेड़ों को छुड़ा ही लिया। इधर वे भेड़े छुड़ाकर लाते हैं उधर देवता बिजली चमकाकर उनके नंगे शरीर को उर्वशी को दिखा देते हैं। बस, अब क्या था? शर्त टूट गयी। जो होना चाहिए वही हुआ। उर्वशी राजा की शय्या को सूनी कर आकाश में उड़ गयी। सब माया का खेल हो गया।

उर्वशी अपनी सखियों के साथ चली तो गयी पर राजा पुरूरवा उसके प्रेम में पागल हो गये। जिसको उन्होंने सर्वसुखों का आधार बना लिया था वही भला न रहे तो जीवन कैसा होगा? उसमें कोई आनन्द न रह गया—वह नीरस तथा दुःखपूर्ण हो गया। वे घर द्वार छोड़कर निकल पड़े। दीवाने बने घूमने लगे। दिन-रात, नदी-नाले, वन-पहाड़ पार करते गये और अन्त में मानसरोवर के पास पहुँचे। उस मानसरोवर में उन्होंने अपनी उर्वशी प्रियतमा को हंसिनी का रूप धर कर सखियों के साथ विहार करते देखा। अद्भुत दृष्टि थी। देखते ही पहचान लिया उन्होंने अपनी प्रियतमा को। प्रेमियों की सूझ-बूझ कुछ अलौकिक ही हुआ करती है। उनमें बाह्य उपकरणों का अभाव और आन्तरिक उपकरणों का प्राधान्य हुआ करता है। उसी प्रेम पूत दृष्टि से हंसिनी के रूप में स्थित उर्वशी को उन्होंने पहचाना। उन्हें फिर उर्वशी के मिलने की आशा हो चली। वे उर्वशी से कहने लगे प्रिये। तू बड़ी कठोर है। क्षणभर रुक कर जरा बातें तो कर लो यदि आज हम लोग खुलकर बातें नहीं करेंगे तो ये बातें पीछे संताप देंगी। मेरे प्रति तू प्रेम कर!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी ने राजा की ये प्रेमपूर्ण बातें सुनकर निःस्पृह रूप से उत्तर देते हुये कहा, "महाराज! मिलन के अभाव में अब इन कोरी बातों से क्या होने को है? अब तो मैं आपके पास से उसी प्रकार अलग हो गयी हूँ जैसे पुरानी उषायें नयी उषाओं से अलग हो जाती हैं। मेरा और आपका अब संयोग होने को नहीं।"

पुरूरवा ने उर्वशी से कहा, "प्रिये! वियोग में मेरी बड़ी विचित्र हालत हो गयी है। अब तरकस से बाण भी नहीं निकल रहा है राज्य कार्य में मेरा मन नही लगता। मेरे सैनिक भी अब युद्ध गर्जना नहीं कर रहे हैं। शत्रुओं के धन हरण की भी सामर्थ्य अब मुझमें न रही।"

उर्वशी ने कहा "महाराज! पहले आप मेरा बड़ा सत्कार किया करते थे। तीन बार मेरा आलिंगन किया करते थे। जिस भांति राजा लोग क्रम से सपत्नियों के यहां जाते हैं वैसे मेरे पास न जाकर सदा मुझे सन्तुष्ट किया करते थे। पर, अब इन बातों से क्या लाभ? अब आप घर जाइये।"

पुरूरवा ने कहा "उर्वशी। तू अपनी सुजूर्णि, श्रेणि, सुम्नआपि तथा हृदेचक्षु नाम वाली सखियों के साथ चलीं गयी। और जिस प्रकार नवप्रसूता गाय दौड़कर बछड़े के पास आती है वैसे नहीं आती।"

उर्वशी ने कहा "महाराज! आपके यज्ञ में देवपत्नियां आ जाती हैं। आपकी वृद्धि स्वयंगामिनी नदियां किया करती हैं तथा देवता समर भूमि में आपकी सहायता किया करते हैं। इस तरह आप कातर न होइये। इन बातों से अब कुछ होने को नहीं आप घर जाइये।"

पुरूरवा ने कहा "जब मैं इन दैवी अप्सराओं को पकड़ना चाहता था तो वे उसी प्रकार भाग जाती थीं जैसे व्याध को देखकर मृगी या सारथी को देखकर घोड़ा भाग जाता है"

उर्वशी ने कहा "महाराज। आप ठीक कहते हैं। ये अप्सरायें आपको अपना रूप नहीं दिखाती थीं और खेलते हुए अश्वों के समान क्रीड़ा किया करती थीं। पर अब आप इनके फेर में क्यों पड़े हैं? इन मायाविनियों का आप ध्यान क्यों करते हैं?

पुरूरवा बोले "उर्वशी मेरे घर को प्रकाशित करती थी। वह दिन कब आयेगा जब इसका पुत्र उत्पन्न होकर मेरी आयु को बढ़ायेगा।"

उर्वशी बोली "महाराज! आप पृथ्वी के पालक हैं। आप मेरे उदर में गर्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापित कर चुके हैं। मैं सदैव आपको भविष्य के विषय में चेतावनी देती थी। पर आपने मेरे कहे का ध्यान न किया और शर्त पूरी करने में असमर्थ होने पर मुझे कठोर कह रहे हैं।

पुरूरवा ने कहा ''उर्वशी! कब तुम्हारा पुत्र मुझे चाहेगा? यदि वह मेरे पास आयेगा तो क्या रोयेगा नहीं? परस्पर प्रेमयुक्त स्त्री-पुरुष में विच्छेद करने की किसकी इच्छा होगी? तुम्हारे श्वसुर के घर में तेजस्वी गर्भ प्रदीप्त हो रहा है।''

उर्वशी ने कहा ''राजन्! आपका पुत्र आपके पास न रोयेगा न आंसू गिरायेगा। मैं उसकी कल्याण कामना करूंगी और उसे आपके पास भेज दूंगी। अब आप मूर्खतापूर्ण बातों को न कीजिये और घर जाइये।''

पुरूरवा ने कहा, ''(उर्वशी!) तेरे साथ रमण करने वाला यह पति यहीं गिर जाय अथवा महाप्रस्थान करें। यह निर्ऋति (मृत्यु) के पास चला जाय या भेड़िये इसे खा जायें।''

उर्वशी ने कहा, ''राजन्! इस तरह आप मृत्यु का आह्वान न कीजिये और न तो यहां गिरिये ही। आपको भेड़िये भी न खायें। स्त्रियों की मित्रता स्थायी नहीं होती। वे भेड़ियों के सामन कठोर होती है।''

''मैं अपने सहज अप्सरा रूप को छोड़कर नाना प्रकार से आपके पास रमण करती हुई चार वर्ष तक रही। उस समय मैं दिन में एक बार घी पीकर विचरण किया करती थी।''

पुरूरवा ने कहा, ''अपने तेज से अन्तरिक्ष को प्रकाशित करने वाली तथा जल की निर्मात्री उर्वशी को मैं शोभनकर्मा पुरूरवा वश में करना चाहता हूं। उसके बिना मेरा हृदय जल रहा है। अतः हे उर्वशी। तू मेरे साथ लौट चल।''

उर्वशी ने कहा, ''महाराज! ये सारे देवता आप से कह रहे हैं कि आप मृत्युजयी होकर आज्य से देवताओं को तृप्तकर सतत उन्नति करते हुये स्वर्ग में जाकर आनन्द उठायेंगे।''

उर्वशी के इन कथनों को सुनकर राजा का हृदय निराश हो गया। उन्होंने अपने प्राण की बलि लगा दी। वे वहीं बैठ गये। किन्तु, यह दुःख अब गन्धर्वों से न देखा गया। वे भी सदय हो गये और राजा के हाथों में अग्नि देकर बोले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आप इन अग्निदेव की आज्य-होमों से पूजा कीजिये। इनके सन्तुष्ट होने पर उर्वशी आपको मिल जायेगी।"

राजा अग्नि को लेकर चले। पर वे निराश हो चुके थे। "भला जब वह सामने से मेरे पास नहीं आयी तो अब अग्नि की आराधना से मिलेगी।" यह सोचकर अग्नि को उन्होंने जंगल में छोड़ दिया और घर चले आये। घर आने पर उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि क्यों उन्होंने अग्नि को छोड़ा। फिर दूसरे दिन अग्नि लाने वन में गये। पर, अग्नि अब शान्त हो गयी थी। केवल लकड़ियां ही ईंधर-उधर बिखरी थीं। उन्हें ही उठा लाये और उन्हें मथकर अग्नि तैयार किया।

पुरूरवा ने अग्नि को दाक्षिणाग्नि, गाहर्पत्याग्नि तथा आह्वानीयाग्नि तीन रूपों में विभक्त कर उनकी विधिवत उपासना की और समय आने पर सुरलोक को अलंकृत किया। महाराज पुरूरवा ही अग्नि को तीन रूपों में विभक्त करने वाले हैं। (ऋ० १०.९४ श०ब्रा०; विष्णु पु० ९.६)

यमी :

यमि एक शक्तिशाली ऋषिका रही है जो अपने सगे भाई से प्रेम करती है और उसे कायर कहती है। वह अपने भ्राताओं के सहयोग से दसवें मण्डल के दसवीं ऋचा की रचना की है। इसकी मुख्य गायिका स्वयं यमि थी। (ऋग्वेद १०.१५१)। ऋग्वेद संहिता में उसका उल्लेख अपने ढंग से एक स्त्री के रूप में हुआ है जो उन्मुक्त और अद्वितीय है। छंदों में आया हुआ उसका संवाद, जिसमें वह मुख्य वक्ता है। इसकी कहानी इस प्रकार है :

संसार की गति बड़ी विचित्र है इसमें अनेक विचित्र विचित्र घटनायें घट जाती है-ऐसी घटनायें जिनका घटित होना कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा जा सकता। इन्हीं विचित्र घटनाओं में कामदेव की लीला भी है। कामदेव का प्रभाव सभी प्राणियों पर पड़ा करता है पर, उस प्रभाव में एकरूपता नहीं रहती। वह भिन्न-भिन्न रूपी में लक्षित होता है कहा जाता है भगवान शंकर ने कामदेव को जला दिया, उन्हें अनंग अशरीरी बना दिया। वह घड़ी कितनी भली रही होगी, कितनों ने मुक्ति की सांस ली होगी। परन्तु हुआ विपरीत ही पहले से भी अधिक लोग काम से आक्रान्त होने लगे। पहले तो शरीर धारण करने के कारण कामदेव का आक्रमण प्रत्यक्ष होता था। पर अब शरीर न रहने पर उन्हें कौन देखता है। जिस किसी पर छिपे-छिपे आक्रमण कर देते हैं। और हैं ऐसे दुर्घर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योद्धा कि यदि एक बार आक्रमण कर दिया तो जल्दी वे फिर लौटते नहीं। उन्हें भी प्राणियों का शिकार करने में आनन्द आता है।

कामदेव के बाण भी बड़े विचित्र हैं। वे कहे तो पुष्प निर्मित हो जाते हैं। भला फूलों से भी कहीं किसी को चोट लगती है। किन्तु आश्चर्य यह है कि उन पुष्प बाणों की चोट तेज बाणों से भी अधिक होती है। उन पुष्प बाणों की चोट ऐसी है जो सारी मर्यादाओं को धूल में मिला देती है। काम पीड़ित प्राणी उचित अनुचित धर्म-अधर्म सभी विवेक खो देता है। उसे अपना पराया नहीं सूझता। त्याज्य-अत्याज्य की भावना नष्ट हो जाती है। उसे केवल स्वार्थ ही सूझता है—केवल अभीष्ट को ही वह चाहता है। इसके लिए लाखों तकलीफे उठाता है। कामी के लिए अभीष्ट के अतिरिक्त सारी संसार मिथ्या हो जाता है काम उसे अन्धा बना देता है। धन्य है काम की लीला। सारे सुरासुर उनके भृकुटि विलास से नाच उठते हैं।

एक बार उन्हीं दुर्घर्ष योद्धा कामदेव ने अपनी दृष्टि यमी पर डाली। यमी दैवी प्राणी है और विवस्वान् सूर्य की कन्या है। विवस्वान् सूर्य की दो सहोदर सन्तानें हैं। एक है वैवस्वत यम जिनका कार्य संसार का नियमन शासन करना है। ये ही धर्मराज के भी नाम से विख्यात हैं। संसार की धर्मपुरी इन्हीं के शासन पर चलती है। सूर्य की दूसरी सन्तान यमी है। एक बार मानव सृष्टि के उस आदिम निर्जन प्रदेश में अन्य व्यक्ति को लक्ष्य न देखकर काम ने अपने पुष्पबाणों को इन्हीं यमी पर चलाया। उन बाणों की चोट अमोध थी। बिना चोट पहुंचाये वे बाण लौटते ही नहीं। यमी का चित्त चंचल हो गया वह यमराज के प्रति ही आसक्त हो गयी। उसके मन ने धैर्य के बांध को तोड़ दिया। वह युग को किसी प्रकार अपनी ओर आसक्त करने के फेर में पड़ गयी। अन्त में उसने अपने मनोगत भावों को यमराज से प्रकट कर दिया।

यमी ने कहा "यम! तुम गर्भावस्था से ही मेरे साथ रहे हो, अतः इस निर्जन प्रदेश में मैं तुम्हारा मिलन चाहती हूँ। विधाता का यही अभीष्ट था कि तेरे द्वारा मेरे गर्भ से सन्तान उत्पन्न हो।"

यमराज यमी की इन अधर्मयुक्त बातों को सुनकर सहम गये। उन्होंने अपना मुँह फेर लिया और घृणापूर्वक कहा, "यमी! मैं तेरे साथ इस प्रकार का सम्बन्ध नहीं चाहता क्योंकि सहोदर बहन होने से तुम अगन्तव्या हो?

यम के प्रतिबोधात्मक उत्तर को सुनकर यमी का मन सन्तुष्ट नहीं हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने फिर अपने आग्रह को दुहराते हुये कहा, ''यमराज! यद्यपि यह सम्बन्ध मनुष्यों में त्याज्य है तथापि अमर देवता लोग इस प्रकार के सम्बन्धों की कामना करते हैं। अतः तुम अपने को मन को मेरे में लगाओं और पति के रूप में मेरे शरीर में प्रवेश करो।''

यम ने कहा, ''यमी! मैंने ऐसा कुकर्म कभी नहीं किया है। मैं सत्यवक्ता हूँ झूठ कभी नहीं बोलता। अन्तरिक्ष में रहने वाले सूर्य और सरण्यू हमारे पिता और माता हैं। हम दोनों का सम्बन्ध उत्तम कोटि का है। हम दोनों में पति-पत्नी सम्बन्ध असंभव है। तू अपने मन को मेरी ओर से लौटा ले।''

यमी ने कहा, ''यम! रूप के निर्माता एवं शुभाशुभ के प्रेरक् विधाता ने गर्भ में ही हम दोनों को पति-पत्नी बना दिया। (हम दोनों गर्भ से ही साथ-साथ रहने वाले हैं)। उस विधाता के नियम को कोई मिटा नहीं सकता। अन्तरिक्ष और पृथ्वी भी हम दोनों के इस सम्बन्ध को जानते हैं। हे यम! हम लोगों के इस सम्पर्क को कौन जान और देख सकता है?''

यम ने कहा, "यमी! देवों के गुप्तचरों की आंखें कभी बंद नहीं होती। वे दिन-रात घूमते तथा प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को देखते रहते हैं। तूने मुझसे न कहने योग्य बातें कही हैं। इन बातों से मुझे बेहद चोट लगी है। अब तू अन्यत्र चली जा और किसी अन्य के साथ रथ के चक्कों की भाँति साथ मिल कर रहें।"

यमी से इन बातों को कहकर यम स्वतः अपने से कहने लगे–''दिन-रात के जो भाग यम के लिये कल्पित है उन्हें यजमान देता रहे। सूर्य का तेज यमराज को सदा प्रकाशित करता रहे। यमी अपने भाई यम को छोड़कर अन्यत्र चली जाये।''

यम ने पुनः यमी से कहा, ''यमी! वह समय भविष्य में आयेगा जब बहनें भाई की कामना करेंगी। तू मुझे छोड़कर दूसरे को पति बना और उसका आलिंगन कर।''

यमी ने कहा, ''यम! मैं तुम्हारी बहन और तुम मेरे भाई हो। वह भी व्यर्थ है जिसके रहते बहन का दुःख दूर न हो और वह बहन भी व्यर्थ है जिसके रहते भाई का दुःख दूर न हो। मैं काम-पीड़ित हूँ तू मेरा उपभोग कर।''

यम ने कहा, ''यमी! मैं तेरा सम्पर्क नहीं चाहता। बहन का सम्पर्क करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला पापी कहा गया है। तू मुझे छोड़कर अन्यत्र चली जा। मैं तेरे से अनुचित सम्बन्ध को नहीं स्थापित कर सकता।"

यमी को यम का उत्तर सुनकर बड़ा अफसोस हुआ। उसने दुःख प्रकट करते हुये कहा, "यम! तुम बड़े दुर्बल हो। तुम्हारे मन और हृदय का मैं थाह नहीं जमकर पा रही हूं। जैसे रस्सी थोड़े को बांधती है, तथा लता वृक्ष को पकड़ती ही है अन्य स्त्री तेरा आलिंगन करेगी पर तू मुझे नहीं चाहता।"

यम ने यमी को अंतिम रूप से समझाया। यम ने कहा "यमी! तू यहां से चली जा और अन्य पुरुष का वरण कर। उसी व्यक्ति के चित्त को तुम चुराओ। इसी में हम दोनों का भला है। अब ऐसी अनुचित बातों को मुझसे न कह।"

यम को धर्मयुक्त तथा तर्कपूर्ण बातों को सुनकर यमी की काम-भावना नष्ट हो गयी। उसे प्रबोध हो गया। यम ने यमी के माध्यम से सारे संसार को मर्यादा का पाठ पढ़ाया। यम का मनुष्यों के प्रति यह स्पष्ट उपदेश है कि प्राणियों के कर्तव्यों को विधाता के गुप्तचर सदा देखा करते हैं। विवेक का आश्रय कभी नहीं छोड़ना चाहिये। मर्यादा का उल्लंघन कभी भी नहीं करना चाहिये। इसी में सभी का हित है और संसार की मर्यादा भी इसी में चल सकती है, अन्यथा पतन अवश्यम्भावी है। (ऋ० १०.१० और बृहद्देवता ६.५४.)

सूर्या :

सविता अथवा सूर्य की पुत्री सूर्या भी इस युग की एक महान ऋषिका थी। सोम के साथ अपने विवाह गाथा की उसने स्वयं ही ऋग्वेद में प्रस्तुत किया है। यह ऋचा पारस्परिक शैली के सैतालिस पंक्तियों के नियोजित है। (ऋग्वेद १०.८५)।

सूर्य की पुत्री सूर्या ही किन्हीं के मन में यह उषा ही है। विवाह सूत्र में सूर्या के विवाह का विस्तार से वर्णन है। सूर्या की बहन करने वाले अश्विनी है। वैदिक दर्शन विज्ञान के ये क्रिया शक्ति है, इसका सम्पूर्ण रूपक मंत्रों में इस प्रकार है–

मनो अत्या अन् आसीत् द्यौरासीदुत्छदिः।
शुक्रावनड़वाहावास्तां यदयात् सूर्या गृहम्।
ऋकसामक्याभिहितौ यातौ ते ते सामनावितः।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिति पन्थाऽचराचरः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुची ते चक्रे यात्या व्यानोरे अक्ष आहतः।
अनो मनस्मयं सूर्याऽडरोहत प्रयतो पतिम्।

अश्विनी सूर्या को द्विचक्र प्रकट रूपी मन में आते हैं, तब आत्मा और इन्द्रियाँ अश्विनी से पूछते हैं, यह तीसरा चक्र कहाँ है। "क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्टाय तस्युतुः।" इस तृतीय चक्र को ज्ञानी या योगी ही जान पाते हैं–

अयैक चक्रं यद् गुहा तद्धातय इङ्गद्विदुः। –ऋ० १०.८५.१६

वेद में सूर्य को स्थावर-जङ्गम जगत् को आत्मा कहा गया है "सूर्या आत्मा जगतस्तस्थुषश्च"। –ऋ० १.१.५.१

इसी तथ्य को आचार्य शौनक ने व्याख्यान किया है। "जो कुछ था और आगे होगा और जो कुछ चराचर जगत् है, उसका मूल और प्रलभ सूर्य में है। सत् और असत् की योनि (मूल) यह प्रजापति सूर्य ही है, इसी को अक्षर, शाश्वत ब्रह्म ओर वाच्य कहते हैं।" –बृहद्दे० १.६१-६१

यही तीनों लोकों में अग्नि-वायु और सूर्य के रूप में स्थित है इसी को विभिन्न रूपों में ऋषिगण अर्चना करते हैं। इसी को वेद में आदित्य, वरुण, विवस्वान् वेन, वैश्वानर सविता, दधिका, अश्व, वृषाकवि, विष्णु आदि नामों से स्तुत किया गया है। यही सूर्य त्रयी विद्या के रूप में तप रहा है-"यदेतन्मण्डलंतपति...... सैषा त्रभेद विद्या तप्तति" (श० ब्रा० १०.५.२) मृत्यु और अमृत का श्रौत सूर्य ही है, सूर्य ही अश्व है वही रथ है। -ऋ० १.२२.८.२

एक ही सात नामों वाला अश्व इस रथ को चलाता है, इस रथ चक्र को तीन नाभियाँ हैं, यह चक्र दृढ़ और अजर है। इसी में समस्त विश्व समाहित है। यही सूर्य काल है, यही ऋतुचक्र का प्रवर्त्तक प्रजापति है यही सवत्सर है, यही प्रजापालक परमात्मा है।

वाक :

वाक ऋषि अंम्रिना की पुत्री थी। इसने ऋग्वेद के दसवें मंडल की कुछ ऋचाओं की रचना की थी, जो आज "देवीसूक्त" के नाम से प्रसिद्ध है। (ऋग्वेद १०, १२५)। संभवतः शाक्त उपासकों की यह अराध्य देवी है किन्तु उत्तरवैदिक कालीन ग्रन्थों का विवरण इससे भिन्न है। इसके अनुसार इस प्रकार की कोई ऋषिका नहीं, वरन् ऋग्वेद में इस शब्द का प्रयोग अलंकार के रूप में किया गया है और इसी आधार पर कालान्तर में विद्या की देवी सरस्वती के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में इसकी कल्पना की गयी है। (मजुमदार, आर० सी०, ग्रेट वीमेन ऑफ इंडिया, पृ० १३०-१३३)।

मनुष्य की चेतना या बुद्धि की तीन देवियाँ वेद में स्तुत हैं–

सा नो यज्ञं भारती मनुष्यवदिह चेतयन्ती।
तिस्तो देवी बंहिरिद स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु।

–ऋ० १०.११०.८

ये तीनों ही बुद्धि की देवियाँ–भारती, इला और सरस्वती हैं और सबसे बढ़कर वाक्रूपी सरस्वती का दर्शन वेद का एक गूढ़ तत्त्व है।

वाक्, माया और अदिति–वेद में ये तीनों नाम प्रकृति या शक्ति के हैं जैसे कि निम्न मंत्रों से प्रकट है।

वाक्-अहं रूद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्व देवैः।

× × × ×

परो दिवापर एना पृपिकै तावतोमहिमाना संबभूव।

–ऋ० १.९२.२.८

वाक् ही रूद्र, वसु, आदित्य और विश्वदेवों के साथ विचरती है। आकाश और पृथ्वी से परे यह शक्ति के रूप में व्याप्त है। इसी को असुर वरुण की माया देवमाया भी कहा गया है यह माया संसार की निर्माण शक्ति या सांख्य की प्रकृति ही है। माया का वर्णन वेद के अनेक मंत्रों में बिखरा हुआ है। यथा ऋग्वेद १०, ७७ तथा १, १६४ इत्यादि माया की उत्पत्ति माया से ही होती है। "माया जज्ञे मायया मातलीपरि" (अथर्व० ८.९.५)।

समस्त नाम रूप संसार वाक् या माया का ही विकार है। वेद में वाक् तत्त्व का दर्शन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वाक् को ब्रह्म की पराशक्ति का सृष्टि का परम तत्त्व माना गया है वाक् का आकाश और श्रोत्रेन्द्रिय से सम्बन्ध है। वाक् के वेद में ५७ नाम प्रसिद्ध हैं जो यास्क के निघण्टु में पढ़े गये हैं। इनमें से "सरस्वती" शब्द वाक् के लिये बहुधा प्रयुक्त हुआ है, यह बुद्धि की देवी मानी जाती है।

निम्न मंत्र में वाणी या भाषा का एक रूपक बनाया है, जिसे विद्वान अनेकार्थक मानते हैं–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षसप्तहस्तासो अस्य।।
त्रिधा वद्धो वृषभोरोर रीति महादेवी मर्त्या आविवेश।।

इस मंत्र में वाक् या शब्द को महान् देव बताया है। इसके नाम आख्यातादि विभिन्न अंग हैं। वेद के मत में वाक् चार प्रकार की है–

चत्वारि वाक् परिमितापदानि तानि विदु ब्राह्मणा मनोविणः।
गुहा त्रीणि निदितानेङ्ग यति तुरीमं वाचो मनुष्या वदन्ति।।

–ऋ० १.१६४.४५

वाक् के ब्रह्मण्ड में चार रूप हैं–परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी। इनमें तीन रूप गुहाकाश में निहित है और चतुर्थ बैखरी रूप को प्राणी बोलते हैं।

जिस प्रकार विश्व ब्रह्म का वैवर्त्त है उसी प्रकार वेदत्रयी वाक् का वैवर्त्त है, लिखा है–"त्रयी या विद्या तपति इति। वागेव तत्पश्यन्ती वदति" (श० ब्रह्म० १०.५.२)। यह त्रयी विद्या ही तप रही है। यह एक ही वाक् के तीन रूप ही तीन वेद हैं। श्रुति में कहा है–

ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः।
सर्वा गतिर्याजुषी द्वैव शश्वत्।
सर्वं तेजः सामरूपं हि शश्वत्।
सर्वं हृदि ब्रह्मणा हैव सृष्टम्।। –तै० ब्रा० २.१२

वाक् से ही सर्वरूप और सर्वपिण्डों की उत्पत्ति होती है, ऐसा वैदिक सिद्धान्त है। वाक्, प्राण और मन वाक् के ही तीन रूप हैं। वेदों की उत्पत्ति पुरुष (ब्रह्म से) हुई, ऐसा पुरुष सूक्त में वर्णित ही है।

लोपामुद्रा :

ऋग्वेद की द्वितीय ऋषिका लोपमुद्रा (१०.३९-४०) अगसत्य मुनि की पत्नी थी। उसने पति के साथ मिलकर ऋग्वेद की एक उत्कृष्ट ऋचा की रचना की। इनके दो छन्दों (१.१७९.१-२) की रचना स्वयं लोपामुद्रा ने की है। इन छन्दों में उनके प्रेमपूर्ण वार्तालाप का वर्णन है। लोपमुद्रा अपने पति से विनम्रतापूर्वक याचना करती है कि वह उसके प्रति प्यार एवं सौहार्दपूर्ण व्यवहार करें। इस ऋचा के अंतिम छन्द से यह प्रतीत होता है कि लोपामुद्रा की याचना निष्फल नहीं हुई और कलान्तर में अगस्त्य मुनि ने अपने धार्मिक अनुष्ठानों के साथ गृहस्थ धर्म, का भी पालन किया। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सूक्त १७९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के १-६ मंत्रों में उसने कहा है "अनेक वर्षों तक दिन-रात लगातार काम करने के कारण स्त्री बुढ़ापा आने पर थक जाती है और उस समय वह बुढ़ापा उस स्त्री की सारी सुन्दरता और शोभा हर लेता है और उस समय उसमें प्रजनन शक्ति भी नहीं रह जाती। इसलिए संतान की प्राप्ति की इच्छा करने वाले स्त्री पुरुषों को चाहिए कि वे तरुणावस्था में ही संतान की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करे। काम का प्रभाव इतना तीक्ष्ण है कि इसके प्रभाव से कोई भी अछूता नहीं रहा। बड़े-बड़े महर्षि भी ब्रह्मचर्य का पालन करने में असमर्थ रहे। तब साधारण मनुष्यों की तो बात की क्या? उन समर्थ ऋषियों से उनकी पत्नियाँ मिलीं। दम्पतियों का परिश्रम वृथा नहीं होता, क्योंकि उनको देवगण रक्षा करते हैं। यदि परस्पर प्रेमपूर्वक व्यवहार करने वाले तथा उत्तम मार्ग से जाने वाले दम्पति उत्तम पुत्र पैदा करे, तो उस उत्तम पुत्र के कारण वे दोनों इस संसार में हर तरह से कठिनाई को जीत सकते हैं। जिस प्रकार रोक दी गई नदी का पानी इधर-उधर चारों ओर फैल जाता है। उसी प्रकार मनुष्य में काम सभी और फैलता है। इस समय स्त्री-पुरुष का मन चंचल हो जाता है और उसकी सांस तेज होने लगती है और हृदय की धड़कन भी तेज हो जाती है। तब स्त्री वीर्यशाली पुरुष के साथ होती है। मनुष्य की कामनायें अनेक होती हैं, और उन कामनाओं को पूर्ण करने के लिए वह अनेक तरह के पाप भी कर सकता है। अतः यदि कोई पाप वह कर भी दे, तो ज्ञानी जन उसे क्षमा करें। प्रजा उत्पन्न करने के बाद अनेक भरण-पोषण के लिए अगस्त्य ने अन्नादि उत्पन्न करके अपने सन्तानों को पुष्ट किया और इस प्रकार देवों का आशीर्वाद उसने प्राप्त किया। प्रजा को उत्पन्न करके उसका भली प्रकार पालन-पोषण करना चाहिए। तभी देव प्रसन्न होते हैं।

विश्ववारा :

अत्रि ऋषि के कुल की द्वितीय कन्या विश्ववारा भी वैदिककाल की प्रसिद्ध ऋषिका थी।[१३६] उसके ऋग्वैदिक ऋचाओं की रचना पांचवें मंडल में मिलती है। जो छः पंक्तियों में निबन्ध है। इन ऋचाओं में वह सफल वैवाहिक जीवन की प्रार्थना करती है। एक अन्य ऋचा में भी उसने अपने पारिवारिक जीवन के सुख-दुःख का विवरण प्रस्तुत किया है। विश्ववारा ने मात्र भावपूर्ण ऋचाओं की रचना ही नहीं की, वरन् अपने अधिकारों के आधार पर वह स्वयं यज्ञ आदि भी सम्पन्न करती थी। ऋग्वेद की जितनी भी ऋषिकाओं ने ऋचाओं के माध्यम से अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया है, उसमें विश्ववारा की अभिव्यक्ति विद्वतापूर्ण ही नहीं वरन् अति प्रशंसनीय है। इससे यह परिलक्षित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है कि प्राय: सभी ऋषिकाएं भावनाओं को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने में निपुण थीं।[१३७]

इन्द्राणी :

इन्द्र की शक्ति इन्द्राणी थी। उसने भी ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं की रचना की थी। जिसमें ऋग्वेद के दसवें मंडल की ऋचा संख्या ८६ की २, ४-२, ९, १०, १५, १८, २२ और २३ पंक्तियां उल्लेखनीय हैं क्योंकि उनका पाठ उसने स्वयं किया था। उसने स्वतंत्र ऋषिका के रूप में भी एक महत्त्वपूर्ण ऋचा की रचना की थी, जिसका विषय "इर्ष्यालु पत्नी का वशीकरण था।[१३८] इन्द्र एक अन्य स्त्री पर आसक्त थे। एतदर्थ, उनको अपने वश में करने के लिए एक विशेष जड़ी की खोज करते हुए इस मंत्र की रचना की। शचीपोलोभी भी संभवत: इन्द्राणी का ही नाम था तथा इस नाम से उसने एक और ऋचा की रचना की थी।[१३९] इस मंत्र में उसने उन प्रतिध्वनियों पर विजय का वर्णन किया है, जो इन्द्र को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहती थी। इन्द्राणी रचित ये दो ऋचाएं अलंकार एवं भाषा की दृष्टि से ओजस्वी हैं तथा गायन योग्य हैं। इन्द्र की माताओं ने भी ऋचाओं की रचना की थी।[१४०] यह विदित होता है कि इन्द्र परिवार के सभी सदस्य काव्य रचना में निपुण थे। इन तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि ऋग्वैदिक काल में उच्च कुलों में नारी शिक्षा चरमोत्कर्ष पर थी।[१४१]

रोमशा :

रोमशा कक्षीवान की दूसरी पत्नी थी। रोमशा के पिता स्वानय और पितामह भाव्य थे। उसने अपनी सुन्दर कल्पनाओं एवं कोमल भावनाओं की सहायता से ऋग्वेद के एक अंश की रचना की थी, जो अतीव प्रशंसनीय है। वह अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करती हुई कहती है कि "वह गंधार की मेमनों की तरह कोमल और सौम्य है।" विवाहोपरान्त उसने इस अंश को अपने श्वसुर को सुनाया।[१४२] उसने पति को अपने यौवनावस्था में प्रवेश करने की सहर्ष सूचना दी और भोग-विलाश की कामना की। इस प्रकार की स्पष्ट अभिव्यक्ति उसकी ऋचाओं में परिलक्षित होती है। अतएव रोमशा भी एक मान्य विदूषी थी।

गोधा :

यह ऋषि वसुकर की पत्नी अगस्त्य मुनि की पुत्री थी। इसने मानधात की अधूरी रचना को पूर्ण किया। यह ऋग्वेद के दसवें मंडल की ऋचा संख्या १३४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की छठी पंक्ति का उत्तरार्द्ध भाग है। संभवतः इसकी सातवीं पंक्ति की रचना भी गोधा ने ही की थी।[१४३]

मानधातृ :

मानधातृ ने दसवें मंडल की संख्या १३४ की प्रथम पंक्तियों की तथा छठी पंक्ति के अधोभाग की रचना की है। इन पंक्तियों की रचना इन्द्र की अराधना में की गई हैं।[१४४]

ममता :

ऋग्वेद के छठे मंडल के दसवें ऋचा की द्वितीय पंक्ति की रचना इस ऋषिका ने की थी।[१४५]

जुहू :

ब्रह्मा की पत्नी जुहू ने ऋग्वेद के दसवें मंडल की ऋचा की संख्या १०९ की रचना की है।[१४६]

उपर्युक्त प्रमुख ऋषिकाओं के अतिरिक्त ऋग्वैदिक काल की विदुषियें भी थीं जिनको भाषा एवं साहित्य में पूर्ण पांडित्य प्राप्त था। इनमें अरून्धति, अदिति, मेधा, दक्षिणा, जरिता, सागा, वागाभृती, रात्रि, सरमा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।[१४७]

इन तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि ऋग्वैदिक काल में भाषा और साहित्य के क्षेत्र में नारियों ने यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किया था। जिसका उदाहरण ऋग्वेद की ऋचाओं की रचना पर प्रदर्शित किया है। इनको ब्रह्मवादिनी की संज्ञा दी गई हैं। संभवतः ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करने की भी नारियों को स्वतंत्रता थी। इस काल में ऐसी अनेक नारियां हुई थी, जिन्होंने ब्रह्मचारिणी के रूप में शिक्षा ग्रहण किया और शिक्षोपरान्त विवाह किया।[१४८] इसके अतिरिक्त कुछ अविवाहित कन्याओं का भी उल्लेख मिलता है। जिन्होंने विद्या की अराधना में जीवन समर्पित कर दिया। इस प्रकार इस युग की विदुषियों की योग्यताएं बहुमुखी थी। वे मात्र मंत्रों व ऋचाओं की रचना ही नहीं वरन् सैनिक शिक्षा, संगीत, नृत्य, काव्य एवं नाटक की रचना में भी प्रवीण थी। धार्मिक क्षेत्र में उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी, परिणामस्वरूप पति के साथ वे धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थी। निष्कर्षतः नारी शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में अग्रगण्य थी। एतदर्थ ऋग्वैदिक भारत में नारी शिक्षा जितनी आज विकसित है, उससे कहीं अधिक उन्नत ऋग्वैदिक काल में थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरवैदिक काल :

उत्तरवैदिक काल में नारी शिक्षा के क्षेत्र में कुछ आमूल परिवर्तन हुए फिर भी साक्ष्यों के आधार पर इस काल की महिलाएं शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में प्रवेश ले चुकी थी और समाज में विदुषी के रूप में सम्मानित होने लगी थी। अतः यह कहना अक्षरशः सत्य है कि धर्म और शिक्षा दोनों में वे अग्रणी थी। इस काल की विदुषियों में प्रमुख हैं :

गार्गी :

उत्तरवैदिक विदुषियों में गार्गी का व्यक्तित्व देदीप्यमान प्रकाश पुंज की तरह है तथा विद्वतारूपी आकाश-गंगा में तेजस्वी नक्षत्र के समान सुशोभित है। उसकी विद्वता के संदर्भ में अनेक कथाएं प्रचलित हैं। बृहदारण्यक उपनिषद्[१४९] के अनुसार विदेह राजा ने एक बार अश्वमेघ यज्ञ आयोजित किया, जिसमें उन्होंने विद्वानों की एक सभा बुलायी। इस सभा के आयोजन का उद्देश्य यह जानना था कि सर्वश्रेष्ठ विद्वान् कौन है। इस हेतु शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया। सर्वश्रेष्ठ विद्वान् को स्वर्णमंडित शृंग वाली एक सहस्त्र गाय पुरस्कार स्वरूप देने की योजना थी। फलस्वरूप देश-देशान्तर से अनेक विद्वान् इस सभा में भाग लेने आए। विद्वानों की इस सभा में अनेक ऋषिकाओं के साथ गार्गी भी उपस्थित थी। महर्षि याज्ञवल्क्य ने सभा-भवन में प्रवेश करते ही अपने शिष्यों को यह आदेश दिया कि वे सभी गायों को खोलकर ले जाएं तथा उसकी देख-रेख करें। यह देख विद्वानों की उस मंडली में खलबली मच गई और तुरंत उनकी विद्वता की चुनौती दी गई। इस विरोधी मंडली में गार्गी भी सम्मिलित थी। अन्य विद्वानों के साथ गार्गी ने भी दर्शन एवं ज्ञान संबंधी अनेक प्रश्न महर्षि याज्ञवल्क्य से किये। किन्तु, तत्त्व ज्ञान सम्बन्धी ये प्रश्न इतने सूक्ष्म एवं कठिन थे कि उन्होंने सार्वजनिक सभा में इनका उत्तर देना अस्वीकार किया। अन्त में महिर्ष याज्ञवल्क्य को यह कहना पड़ा—"ओ गार्गी अब और अधिक नहीं, मेरी इतनी कठिन परीक्षा न लो।"[१५०] तदुपरान्त गार्गी शान्त हो गईं। वे सहस्त्र गायों को महर्षि याज्ञवल्क्य को दे दी गईं, क्योंकि गार्गी ने भी अन्त में स्वीकार किया, वे ही सर्वश्रेष्ठ विद्वान् है और उनको पराजित करना असंभव है। इस प्रकार निःसंदेह गार्गी को उत्तरवैदिक कालीन विदुषियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था तत्त्व ज्ञान एवं मीमांसा संबंधी उसके ज्ञान अलौकिक थे।[१५१]

मैत्रयी :

बृहदारण्यक उपनिषद्[१५२] में एक अन्य सुसंस्कृत एवं विदुषी महिला को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवरण मिलता है, जिसका नाम मैत्रयी था। वह याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रयी विख्यात दार्शनिक थी जिसकी रूचि अलंकारों में न होकर दर्शनशास्त्र में थी, मैत्रेयी को सभंवतः कोई संतान नहीं थी। फलस्वरूप वह संसार की ओर उदासीन थी। यही कारण था कि उसे आध्यात्मक शिक्षण में विशेष प्रवृत्ति हुई। इस तथ्य की पुष्टि एक कथानक द्वारा होता है जिसका वर्णन उपर्युक्त ग्रन्थ में है।

महर्षि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियां थी। एक का नाम कात्यायनी और दूसरे का मैत्रयी था। गृहस्थ जीवन समाप्त कर जब याज्ञवल्क्य ने वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहा तो, उन्होंने अपनी दोनों पत्नियों के बीच अपनी संपत्ति के विभाजन की इच्छा व्यक्त की। मैत्रयी ने निःसंकोच महर्षि से पूछा कि संपत्ति सिर्फ विलासता का जीवन दे सकता है, अमरत्त्व की प्राप्ति नहीं इन उत्तरों को सुनकर मैत्रेयी ने सम्पत्ति लेने से इन्कार कर दिया और तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति को प्राथमिकता देते हुए उसने महर्षि के सहचर्य की कामना की। याज्ञवल्क्य ने प्रसन्न होकर उसे अपने साथ वानप्रस्थ आश्रम में जाने की अनुमति दी। इस वानप्रस्थ आश्रम में महर्षि ने उसे तत्त्व ज्ञान की शिक्षा दी जिसे प्राप्त कर वह विदुषी बन गई।[१५३] इससे गह प्रमाणित हो जाता है कि मैत्रेयी ने धन, सम्पत्ति की प्राप्ति से अमरत्त्व की प्राप्ति को अधिक महत्त्व दिया। इससे यह परिलक्षित होता है कि इस युग में ऐसी भी महिलाएं थी जो धन सम्पत्ति की अपेक्षा शिक्षा को अधिक महत्त्व देती थी। किन्तु दूसरी ओर याज्ञवल्क्य की द्वितीय पत्नी कात्यायनी का भी उदाहरण है जिसने धन-सम्पत्ति की प्राप्ति को मुख्य उद्देश्य माना। फिर भी इन तथ्यों से यह प्रदर्शित होता है कि इस काल में नारी शिक्षा चरमोत्कर्ष पर थी।

पश्यास्वरित :

कोषीतकि ब्राह्मण[१५४] में पश्यास्वरित नामक विदुषी का उल्लेख है। उसने समस्त उत्तर भारत का परिभ्रमण किया था ताकि वह विशिष्ट शिक्षा प्राप्त कर ऐसी विदुषी बन जाय कि विद्वता के आधार पर "वाक्" की उपाधि ग्रहण कर सके। यह विद्या देवी सरस्वती के गुणों से अपने को विभूषित करना चाहती थी। इससे भी ज्ञात होता है कि इस काल में नारी-शिक्षा पराकाष्ठा पर थी।

उमा हेमवती :

इस विदूषी के विषय में विशेष जानकारी तो उपलब्ध नहीं है किन्तु केन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषद्[१५५] में इसका उल्लेख है। इस उपनिषद् में हेमवती द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थों पर की गई वार्ताओं का वर्णन है जिससे यह परिलक्षित होता है कि उसने इन ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था और उस काल की विदुषियों में उसका स्थान प्रमुख था।

आश्वलायन[१५६] और शांख्यायन[१५७] गृह्यसूत्रों में भी ऋषिकाओं का नाम है, जो उस काल की प्रसिद्ध विदुषियां थी। गार्गी, बड़वा, प्रातीयेयी तथा सुलभा मैत्रेयी ही तीन ऋषिकाएँ थीं जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की थी। इनमें गार्गी और सुलभा मैत्रेयी का विस्तृत विवरण तो तत्कालीन ग्रन्थों में उपलब्ध है, किन्तु बड़वा प्रतीयोयी का कोई विशेष वर्णन नहीं मिलता। फिर भी, इन साक्ष्यों के आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि नारी-शिक्षा इतनी अधिक विकसित थी कि इस युग में अनेक विदुषियाँ उत्पन्न हुईं।

उत्तरवैदिक कालीन शिक्षा सम्बन्धी सभी साक्ष्यों के विवेचन से यह ज्ञात होता है कि इस काल में बालक और बालिकाओं को शिक्षा ग्रहण करने के समान अधिकार थे। किन्तु, दोनों की शिक्षा पद्धति भिन्न थी, जबकि ऋग्वैदिक काल में इस प्रकार का कोई अन्तर नहीं था। बालक और बालिकाओं के उपनयन भी समान रूप से होते थे। महिलाएं सभी प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर सकती थी तथा गुरु आश्रम में भी पुरुषों की तरह शिक्षोपार्जन के लिए जाती थीं। लेकिन उत्तरवैदिक काल में नारी शिक्षा पद्धति में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। अब बालिकाओं को घर में ही माता-पिता से शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती थी। संभव है, उच्च शिक्षा के लिए बालिकाओं को गुरु आश्रम में भी भेजा जाता हो, किन्तु इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता। इस युग की विदुषियों की कुछ विषयों में विशिष्टता एवं निपुणता रहने के कारण ही ऐसा भ्रम होता है फिर भी, यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि अब सैनिक शिक्षा प्राप्त करने में नारियों पर प्रतिबंध लगा दिया। किन्तु, इस युग में भी दार्शनिक, आध्यात्मिक, ललित कला आदि विषयों में शिक्षा ग्रहण करने की उन्हें पूरी स्वतंत्रता थी। इस तथ्य की पुष्टि अनेक विदुषियों से हो जाती है। अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि उत्तर वैदिककाल में नारी शिक्षा तो प्रचलित अवश्य थी, किन्तु उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में उतनी स्वतंत्रता नहीं थी जितनी की पूर्व वैदिक काल में थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदर्भ

१. ऋग्वेद, ३.५३.४
२. उपरिवत्, ३.५३.६
३. उपरिवत्, १.१२२.२
४. उपरिवत्, १.६६.३
५. दास, अविनाश चन्द्र : ऋग्वैदिक कल्चर, पृ० २३९
६. मैकडॉनल और कीथ : वैदिक इण्डेक्स, भाग-१, पृ० ४८४-८५
७. ऋग्वेद, २.१७.७
८. ऋग्वेद, ४.५.५
९. अथर्ववेद ६.११.३
१०. दास, अविनाश चन्द्र : ऋग्वैदिक कल्चर, पृ० २४८
११. ऋग्वेद १.११७ (१०.३८-४०)
१२. ऋग्वेद १.११८.१० : ११७.११, ११८.८, १०, ३९.८
१३. उपरिवत्, १०.१०२
१४. उपरिवत्, १०.१०२, ११
१५. ऋग्वेद, १०, २३, ११
१६. ऋग्वेद, ३.५५.१६
१७. शतपथ ब्राह्मण, ५.२.१.१० : मनु ९.४५
१८. महाभारत, आदि पर्व, ७४.४०
१९. तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.७५
२०. मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ० ३४०
२१. अथर्ववेद, ११.५.१८
२२. शुक्ल यजुर्वेद ८.१
२३. मनु ९.३ : पिता रक्षिति कोमारे भर्ता रक्षयति यौवने।
रक्षान्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वतनपमहर्ति।
वेदव्यास स्मृति २, ५४ सर्ववस्थासु नारीणां न युक्तंस्यादरक्षणम्।
तर्देवानुक्रमात कार्य पितृभतृं स तादिभिः।।
२४. मैत्रायिनी संहिता ३.६.३; शतपथ ब्राह्मण १०.१.१.३
२५. तैत्तिरीय संहिता, ६.८.२
२६. शतपथ ब्राह्मण : ४.४.२.१३
२७. पारस्कर गृह्यसूत्र, २.२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८. रामायण, २.२०.१५
२९. महाभारत, ३.५.२०
३०. अथर्ववेद ११.८.५.१८
३१. मनु, २.६६
३२. रामायण ७.१७
३३. महाभारत ४.१.१४, ३.१५५
३४. बृहदारण्यक उपनिषद् २.४, ४-५
३५. उपरिवत्, ३.६.१
३६. उत्तररामचरित अंक २
३७. आश्वलायन गृह्यसूत्र ३-४.४
३८. तैत्तिरीय उपनिषद् १.९-२
३९. हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र १.१९.२
४०. गोभिल गृह्यसूत्र ३.४.६
४१. गौतम धर्मसूत्र १८.२९-२३
४२. त्रिशद्ववेषेहिर्दत्कथा हृदयां द्वादश वार्षिकीय।
पयष्ट वर्षे द्रष्ट वर्षे वा धर्मे सीदति सत्वरः।। -मनुः ९.९४
४३. गौतम धर्मसूत्र, १८.२२; पराशर स्मृति ७.७.८
४४. उपरिवत्, १८.४-१४
४५. महाभारत, १३.१८.१९
४६. मनु, ९,५९
४७. महाभारत, आदि पर्व ९५, १०३, १०४, अनुशासन पर्व ४४.५२-५३
४८. गोभिल स्मृति ३.१०
४९. अथर्ववेद २.३०-१-३
५०. गोभिल गृह्यसूत्र १.४.२३-२६
५१. अथर्ववेद, ३.३०.२
५२. गौतम धर्मसूत्र, २.५०
५३. दशैव तु सदाऽऽचार्यः श्रोत्रयानति रिच्याते।
दशाचार्यानुपाध्याय आध्यायन पिता दश।।
पितृज्ञ दश तु मातेका सर्वावोपृथवीमपि।
गुरुत्वनाभि भवति नास्ति मातृसमोगुरुः।। -महाभारत, शान्तपर्व, १०८.१७
५४. वशिष्ठ धर्मसूत्र १३.४८
५५. आपस्तम्ब धर्मसूत्र १.१०.२९.९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५६. नास्ति मातृसमा छाया नास्ति मातृसभा गतिः।
नास्ति मातृसमं श्रणं नास्ति मातृसमा प्रिया।। –महाभारत, १२.२६६.३१
५७. उपरिवत्, १.१.३७.१३.७.७८.१६
५८. मनु० २.१४५; याज्ञवल्क्य १.३५
५९. महाभारत, १.७४.४१.५३
६०. शतपथ ब्राह्मण १.९.२१–२५; तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.३.३.१
६१. रामायण ९.९२.२.५
६२. शतपथ ब्राह्मण १४.३.१.८५
६३. मनु० ११.३६
६४. उपरिवत्, ५.१३९, याज्ञवल्क्य स्मृति १.२९
६५. बौधायन धर्मसूत्र, १२१.११–१२
६६. महाभारत १३.४०.४–५, संहिता १.१.११, मनु० ९.१६
६७. तैत्तिरीय ब्राह्मण ३३.१
६८. महाभारत ३३.१, नित्यमा०
६९. मनु० ९.१३
७०. महाभारत, १.८०.९–१०
७१. उपरिवत् ३.२२.६५
७२. निरुक्त ४१२
७३. ऋग्वेद ८.३१.८
७४. वही ६.७५.५
७५. वही ३.३१.१
७६. मनु ९.१३०
७७. ऐतरेय ब्राह्मण ३३१
७८. आ० प० सू० १.११.३१
७९. ऋग्वेद १.१८१.५
८०. ऐतरेय उपनिषद् २.३
८१. छान्दोग्य उपनिषद् ४.२.५
८२. आपस्तम्ब धर्मसूत्र।
८३. अथर्ववेद ८.६.२५
८४. वही।
८५. अथर्ववेद ३.२८.१
८६. वही ५.२८.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८७. मु० ७.१५२
८८. आ० श्रौ० सू०।
८९. मनु २.६९
९०. मनु० २.६९
९१. हारीत धर्मसूत्र, अ० २१.२२
९२. आश्व० गृ० सू० १.९.३.८.११
९३. कर्मप्रदीप, १.८.७
९४. कर्मप्रदीप, १.८.८
९५. गोभिल गृह्यसूत्र, ११.२
९६. ऋग्वेद, ३.३३.१४
९७. आपतस्तम्ब।
९८. पारस्कर।
९९. हारीत प० सू० २१.२०-२४
१००. वही (हारीत भूमिका)।
१०१. हारीत प० सू० २१.२०-२५
१०२. हारीत प० सू० भूमिका।
१०३. द वैदिक लॉ ऑफ मैरिज, पृ० ३०
१०४. छान्दोग्य उपनिषद् ७
१०५. अथर्व० ११.५.४
१०६. मनु० ३,२
१०७. शतपथ, ७.५.१.३१ एतरेय, ३.२ निघण्टु २.११
१०८. बृहद्देवता २४.८५.८६
१०९. ऋग्वेद ९.६६.८
११०. वही ९.५६.३
१११. वही १.९२.४
११२. वही १.३.११
११३. वही ८.३३.१९
११४. वही ८. अथर्ववेद.१०.७.४
११५. ऋग्वेद १.४८.३.१.४८.१२.४.५१.६
११६. अथर्ववेद १.१८.२
११७. मनु० ९.३
११८. अथर्व० १.१८.३.१.१८.४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११९. ऋग्वेद १.४८.३
१२०. अथर्व० ३.२८.१
१२१. यजु० ८.४३
१२२. वशिष्ठ ८.११
१२३. गौ० ४.१ मनु० ३.२.५.१७६
१२४. अथर्ववेद काण्ड १४, ऋग्० १०.८५
१२५. मनु० ५.१६६
१२६. मनु० ९.१४.९.१५
१२७. कठोपनिषद् १.२५
१२८. मनु० २.११०.२.१११.२.२१६.८.३५७
१२९. ऋग्वेद ८.३३.१७
१३०. वही १०.९५.१५
१३१. शत० ब्रा० १४.११.३१
१३२. मैत्रा सं० १.१०.११
१३३. मनु० २.२१३
१३४. मनु० २.१२९
१३५. ऋग्वेद ३.३३.१३
मुखर्जी, आर० के०, एन्सियन्ट इंडियन एजुकेशन, पृ० ५१;
गुप्ता, पी० सेन : द स्टोर ऑफ वीमेन ऑफ इंडिया, पृ० ४२-४३
१३६. ऋग्वेद ५.२८.३
१३७. मजुमदार, ऑर० सी०, ग्रेट वीमेन ऑफ इण्डिया, पृ० १३३
१३८. ऋग्वेद १०.१४५
१३९. वही १०.१५९
१४०. वही १०.१५३
१४१. उपाध्याय, बी० एस०, वीमेन इन ऋग्वेद, पृ० १८२
१४२. ऋग्वेद १.१३६.७
१४३. वही १०.१३४.६
१४४. वही.१०.१३४
१४५. वही ६.१०.२
१४६. वही १०.१०९
१४७. वही २.६.८.१० मजुमदार, आर०सी०, ग्रेट वीमेन ऑफ इंडिया, पृ० १३०
१४८. ऋग्वेद ५.७.९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४९. बृह० उप० ३.६.३.८
१५०. मजुमदार, आर० सी०, ग्रेट वीमेन ऑफ इंडिया, पृ० १३८-१३९
१५१. वही पृ० ९५
१५२. बृहद० उप० २.४.३
१५३. मजुमदार, आर० सी० : ग्रेट वीमेन ऑफ इंडिया, पृ० १३८
१५४. कौषितकि ब्राह्म० ७.६
१५५. केन० उप० ३.१२
१५६. आश्वलायन गृह्यसूत्र ३.४
१५७. शांख्यायन गृह्यसूत्र ४.१०

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय : सप्तम

वैदिक सभ्यता

सभ्यता सभा के योग्य बनने का भाव है। सभा के अभाव में यह भाव उत्पन्न ही नहीं होता। विकासवाद को मानने वाले प्रश्न को उलट देते हैं। उनके मतानुसार मानव का विकास हुआ है और उसके साथ कलाओं का। सभ्यता का सीधा संबंध कलाओं से है। जब कलाओं का विकास ही नहीं हुआ था, तब सभ्यता की बात कहना निरर्थक ही है। सृष्टि के प्रारम्भ में अथवा आज से लाखों करोड़ों वर्ष पूर्व सभ्यता का नाम भी नहीं था। मानव असभ्य था। न उसे पहनना आता था, न घर बना कर रहना। भोजन के लिए जो कुछ प्रकृति दे देती थी, उसी पर संतोष करना पड़ता था। सभ्यता में परिगणित इन तत्त्वों का विकास शनैः-शनैः हुआ है। अतः वैदिक सभ्यता की बात करना व्यर्थ है।

आस्तिकवादियों के मत में वेद सांस्कृतिक तत्त्वज्ञान की तो बात कह सकता है, भौतिक सभ्यता, रहन-सहन, वस्त्र परिधान, कृषि, वाणिज्य आदि की नहीं। इनका संबंध ज्ञान के साथ नहीं, मानव व्यवहार के साथ है। वेद ज्ञान है। व्यावहारिकता की बातें उसके क्षेत्र के बाहर है। प्रश्न कुछ जटिल सा है, पर जब हम व्यवहार पर विचार करते हैं, तो वह भी ज्ञान पर आश्रित जान पड़ता है और जब ज्ञान व्यवहार के लिए अपेक्षित है तथा उसके मूल में है, तो उसका वेद में विद्यमान होना व्यर्थ क्यों, सार्थक ही समझा जायेगा। अतः आस्तिकों का प्रश्न वैदिक सभ्यता के संबंध में निराधार हो जाता है विकासवादियों का प्रश्न भी साधार नहीं है। यदि वेद सभ्यता के अंगों पर प्रकाश डालता है, तो वे क्यों चौंकते हैं? यदि वेद आधुनिक विज्ञान के आविष्कारों की ओर संकेत करता है, उसमें नाव, विमान, प्रकाश की लहर, वैद्युत चमत्कार, विशाल भवन आदि की चर्चा है, तो उससे उनका मत निराकृत क्यों हो सकता है? वे समझ लें कि वेद कालीन सभ्यता इस प्रकार की थी। हाँ, इससे यह निष्कर्ष कोई भी विद्वान् नहीं निकाल सकेगा कि वर्तमान सभ्यता पुरातन काल की सभ्यताओं से श्रेष्ठतर रहा है। संभव है, पुरातनकाल में सभ्यता का रूप आधुनिक सभ्यता से श्रेष्ठतर रहा हो। मानव इतिहास अनेक उतार-चढ़ाव देख चुका है। हो सकता है, सभ्यता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकसित होकर ह्रास हो प्राप्त हो गई हो और अब पुनः उसका विकास हो रहा हो।

यह सभ्यता धर्म पर आधारित हैं आज जिस प्रजातंत्रीय सभ्यता की घोषणा की जाती है, वह भी श्लाघनीय है, पर यदि प्रजातंत्र के प्रतिनिधि अधर्म का आश्रय लेकर स्वार्थ साधन करने लगे, तो वह प्रजातंत्र हमें कथमपि स्वीकार्य नहीं है। मनु की स्पष्ट आज्ञा है–

एकोऽपि वेदविद् धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽपुतेः॥

एक देववेत्ता धर्मात्मा जिस कर्तव्य का निर्णय कर दें, वही करणीय है। भेड़ धसान खाने वाले हजारों अज्ञानी जिसके लिए हांथ उठा दें, स्वीकृति दे दें, वह माननीय नहीं हो सकता–

अव्रता नाममंत्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
सहस्रशः समेता नां परिषत्वं न विद्यते॥

सभा अव्रतियों से नहीं, व्रतसम्पन्न पुरुषों से शोभित होती है। जो व्यक्ति मंत्रहीन है, मनशक्ति से शून्य है और दीक्षा रहित है, जातिमात्र से उपजीवी है अर्थात् जन्मना अपने को बड़ा मानकर दूसरों का धनहरण करते और जीविका चलाते हैं–वे यदि सहस्रों की संख्या में ही क्यों न हों, परिषद् का महत्त्व तब भी उनसे स्थापित नहीं हो सकेगा। ऐसे व्यक्ति सभा या परिषद् को मार डालेंगे। अथर्ववेद इसीलिये कहता है :–सभ्य समां में पाहि ये च सभ्याः सभासदः। (कांड १९) हे सभ्य! तू सभा की रक्षा कर। हे सभ्य सभासदों? तुम सब इस सभा की रक्षा करो। यह रक्षा तभी संभव है, जब सभासद धर्मात्मा हों, सदाचारी और कर्तव्यनिष्ठ हों।

धर्म हमारी समस्त जीवन प्रणाली में ओत-प्रोत है। कलायें जो इस प्रणाली की बाह्य अभिव्यक्ति है, धर्म से पृथक् नहीं जाती। ललित कलायें तो धार्मिकता के सौन्दर्य से मंडित है ही, उपयोगी कलायें भी धर्म का नाम लेकर ही प्रारंभ हुई हैं। भव्य भवन नहीं, क्योंकि वे वास्तुकला में परिगणित होंगे जो ललितकलाओं में सबसे निम्न स्तर पर हैं, साधारण घर भी प्रभु का नाम लेकर ही बनाये जाते हैं और उनकी नींव में शेषनाग की मूर्ति रखी जाती है। कृषक हल चलाता है तो ईश्वर का नाम लेकर। व्यापारी उद्योग-धन्धों में हाथ डालता है तो उसी परम सत्ता के विश्वास पर। जिधर दृष्टि डालिये, उधर ही धर्म का कोई न कोई रूप आपको दृष्टिगोचर हो जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभ्यता से धर्म का यह रूप आज तिरोहित होने लगा है। पाश्चात्य भौतिक विचारधारा ने सब नेत्रों को ऐसा आक्रान्त कर लिया है कि मानव का परोक्ष सत्ता की ओर ध्यान हीं नहीं जाता। जो प्रत्यक्ष है, बस वही उसके लिये सब कुछ है। पीछे क्या हो चुका है, इससे तो उसका कोई प्रयोजन ही नहीं रहा, आगे क्या आने वाला है, भविष्य हमारे प्रत्यक्षवाद से बनेगा या नहीं, इस ओर से भी वह उपेक्षित है। हमारी संस्कृति की छाप हमारी सभ्यता पर जब पड़ती थी, तो हम सोचते थे शत हस्त समाहर सहस्रहस्त सँकिर। पर आज समाहर समाहर, एकत्र करो, घर भरो की ध्वनि ही चतुर्दिक व्याप्त है, सँकिर, वितीर्ण कर का घोष कोई करना तो दूर सुनना भी नहीं चाहता। सभ्यता का वर्तमान रूप इसीलिये सबको खाये जा रहा है क्रान्ति पर क्रान्ति हो रही है, पर मानव शान्त नहीं, आश्वस्त नहीं, स्वस्थ नहीं है। ऊपर से देखिये, मानव सभ्य दिखाई देता है, अच्छे वस्त्र पहने हैं, वाणी भी आकर्षक है, पर उसका मन और हृदय अज्ञात है। पता नहीं किस दुर्भावना को छिपाये वह घूम रहा है आज की इस असंस्कृत सभ्यता को क्या नाम दिया जाए?

असंस्कृत व्यक्ति भी समाज बनाकर रहते हैं, पर उनके व्यवहार सभ्यता की श्रेणी में नहीं आते। जिस सभ्यता पर हम लिखने जा रहे हैं, वह संस्कृत समाज की सभ्यता है। संस्कृति पर प्रकाश डालते हुये हम सभ्यता को, बाह्य व्यवहार को उसका परिधान या बाह्य परिवेश लिख चुके हैं। हमारी सभ्यता का लक्ष्य संस्कृत जीवन ही है। संस्कृति हमारा आन्तरिक विकास करती है। सभ्यता हमारे बाह्य रूप को संवारती है। इस बाह्य रूप का अलंकरण किस क्षेत्र में किस प्रकार का हुआ है, हमारी भौतिक आवश्यकतायें किन कलाओं द्वारा सम्पादित हुई हैं, कौन-कौन से बाह्य प्रयोग हमें अभ्युदय के लिये करने पड़े हैं, वेद अपने शब्दों में हमें इस विषय की किन दिशाओं का संकेत देता है, यही हमारे लेखन का लक्ष्य है, हमारी गन्तव्य भूमि है। पाठक इसी दृष्टिकोण के साथ आगे आई सामग्री का अवलोकन करें।

कला कौशल :

कला मस्तिष्क की अपेक्षा हस्त लाघव से अधिक सम्बन्ध रखती है। जितनी कलायें हैं, सब में हाथ का प्रयोग होता है कलाकार के हाथ मिट्टी को ऐसा आकार प्रदान कर देते हैं जो सजीव सा प्रतीत होता है मिट्टी ही नहीं, काष्ठ, प्रस्तर, लोहा, चांदी, तांबा आदि को भी अनेक आकर्षक रूप कलाकार के द्वारा प्राप्त होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद कलाकारों को ऋभु संज्ञा देता है और कहता है "शन्नऋभवः सुकृतः सुहस्ताः।" ऋभुओं के हाथ सुन्दर हैं, उनकी कृतियां सुन्दर हैं, उनकी रचनायें सुन्दर हैं, वे हमें शान्ति दें। ऋभु शिल्पी है और सुन्दर कलाकृतियों को जन्म देने वाले हैं। जैसे सूर्य की किरणें अनेक प्रकार के पुष्पों को विकसित करती है, भूमि को हरित दूर्वा के कोमल मखमली गद्दों से सुसज्जित कर देती है, खेतों को स्वर्ण शालियों से मण्डित कर देती हैं, वैसे ही कलाकार अपने हाथ की कला द्वारा असुन्दर को सुन्दर और कुरूप को सुरूप बना देते हैं। कतिपय भाष्यकारों ने ऋभुओं को सूर्य की किरणों का रूप माना भी है।

ललित कलाओं में सबसे प्रथम प्रासाद, मंदिर अथवा हर्म्य आते हैं। प्रासंगिक रूप से इनका उल्लेख भी हुआ है। भवन और मन्दिर के उपरान्त मूर्तिकला आती है। प्रभु ने इस ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार की मूर्तियों की रचना की है जिनमें "पुरुषों वाच सुकृतम्" पुरुष की मूर्ति सबसे सुन्दर है। तेज में सूर्य मूर्ति की समता कोई नहीं कर सकता। उसमें साक्षात् ब्रह्म कान्ति भरी पड़ी है। चन्द्र को धवल ज्योत्सना की समता किस कलाकार की रचना कर सकती है? नक्षत्रों की उज्ज्वलता भी प्रख्यात है। इन्हीं के साथ प्रकृति और भी अनेक रूपों की रचना किया करती है। श्यामलमेघ, कड़कती हुई बिजली, सप्तरंगी इन्द्रधनुष क्या कम आश्चर्यकारी हैं। वर्षा के दिनों में वीरवधूटियों को देखिये। उस लघुकीट की लालिमा अवर्णनीय है। रात्रि में खद्योतों की जगमगाहट भी अद्भुत एवं विचित्र है। पार्वत्य प्रदेश की कुछ वनस्पतियां भी इस तरह का प्रकाश देती हैं। ये मूर्तियां प्रभु की ओर प्रकृति की दी गई हैं। "न तस्य प्रतिमा अस्ति" कहकर वेद प्रभु की प्रतिमा का तो निषेध करता है, पर साथ ही प्रतिमा का नाम भी लेता है। उसने प्रभु को त्वष्टा, तक्षा, वास्तोष पति, विश्वकर्मा आदि नाम भी प्रदान किये हैं। वह कारू है, कवि है। यह शब्द कलाकारों तथा उनकी कलाओं की ओर स्पष्ट संकेत है। मानव ने इन कलाकारों की कलाओं के रूप में मानों प्रभु का ही अनुकरण किया है :-

देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुष्योप्रजाः पुरुधा जजान।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद् देवानाम सुरत्वमेकम्॥
ये त्रिषप्तापरियन्ति विश्वा रूपाणि विभ्रतः।
इन्दों मायाभिः पुरूरूप ईयते।
जना नाम धेना अवचाकशद्वृषा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन मंत्र पदों में प्रभु की महती शक्ति का अभिव्यंजन है। वह त्वष्टा रूप में विविध प्रकार मूर्तियों को उत्पन्न कर रहा है और सविता रूप में वि रूपा प्रजाओं को पोषण प्रदान कर रहा है। माया कला कौशल ही है जो प्रकार के जादूगर जैसे दृश्यों एवं चित्रों की रचना करती है।

मूर्तिकला के ऊपर चित्रकला है। उससे भी ऊपर संगीत है और क कला ललितकलाओं में सबके ऊर्ध्व स्थान पर है। काव्य कला के अति अन्य सभी कलायें मानव के हाथों का कौशल हैं। तो क्या मानव ने बिना कि आदर्श या सांचे के इन कलाओं को जन्म दिया होगा? नहीं। आदर्श विद्य थे। मानव ने केवल उनका अनुकरण किया। पर्वत, सरिता, वृक्ष, पशु विद्यमान है, कलाकार केवल इनके अनुकरण पर मूर्ति या चित्र का नि करता है कभी-कभी कलाकार मानव निर्मिति का भी अनुकरण करता है। हम उसे अनुकरण का अनुकरण कहते हैं। जब कलाकार किसी भवन का खींचता है, तब वह अनुकरण कर रहा है यह अनुकरण ज्यों का त्यों हो, नहीं है। कलाकार के मस्तिष्क और हृदय भी उसके साथ सक्रिय रहते उसकी कल्पना भी निर्माण में सहयोग देती है और इसी हेतु प्रायः देखा है कि कलागत सौन्दर्य यथार्थ से कुछ पृथक् है या आगे बढ़ गया है म बुद्ध की मूर्ति की मूर्तिक का दर्शन कीजिए अथवा सूर्य के चित्र को दे इनमें जो भाव मुद्रा आ गई है, बुद्ध के मस्तिष्क के चतुर्दिक जो दीप्ति अंकित किया गया है अथवा सूर्य को जो रथ में आसीन किया है, वह सब में नहीं है। वह कलाकार के हृदय और मस्तिष्क की देन है। अतः कल अनुकरण के साथ कलाकार की कल्पना भी सम्मिलित हो जाती है और क को ऐसा रमणीय रूप दे जाती है जिससे वह दर्शकों तथा भावकों को दे आकृष्ट किये रहे।

अलंकरण प्रवृत्ति में भी है। फूल की बनावट पर विचार कीजिये। उ पंखुड़ियाँ एक दूसरी के साथ कैसी सटी, अनुक्रम में गुम्फित तथा श्रेणि विभाजित है। "को वोऽध्वरं तुविजाता अरंकरद्यौ"–कौन है वह कल जिसने अलंकरण किया है? मानव कलाकार! तुम तो अपनी कला या रचन पृथक् दिखाई देते हो। यद्यपि उस रचना में तुम्हारा अन्तस्तल भी हाथों के लगा था, पर कला को जन्म देकर तुम उससे पृथक् हो गये। फूल में ऐसी नहीं है। उसका कलाकार उसके अन्तस्तल में ही विद्यमान है। वह अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इत्यादि सभी कमनीय कृतियों में विराजमान है। घड़ी को देखकर हम घड़ी बनाने वाले का अनुमान करते हैं, पर वह कहीं दूर बैठा है। सूर्य चन्द्रादि के तथा मानव शरीर के निर्माता का भी हम अनुमान करते हैं। पर वह निर्माता दूर नहीं, निकटतम है। वह नेदिष्ट है। हम सबका अन्तर्यामी है। वह निरन्तर निर्माण कर रहा है और निर्माण को अलंकृत कर रहा है मानव अलंकरण के प्रसाधन भी वही जुटा रहा है। यहाँ जो कुछ है, सब उसी का है।

वेद प्रतिमा और रूप का ही नहीं, चित्र का भी नाम लेता है। 'चित्र इत राजका इत् अन्य के', "चित्रं देवानामु दगादनींक", "वसोः चित्रस्य सः, "यज्ञेषु चित्रमाभर", "भुवनेषु चित्रं दिम्वं विम्वं विशे विशे" आदि अनेक मंत्र पदों मे चित्र का नाम आता है। चित्र विचित्र हैं, अद्भुत है। कलाओं में जिस चित्र का हम दर्शन करते हैं, वह भी विचित्र होता है उसे चित्र कहते हैं इसी कारण है। अनुकरण कला का प्राण है। छाया यथार्थ की अनुकृति होती है, पर वह यथार्थ से कितनी सुन्दर होती है। सरिता के जल में तट पर खड़े, वृक्षों के प्रतिबिम्ब को, सरोवरों या निर्झरों के जल में पर्वत-श्रेणियों की प्रतिच्छाया को, यमुना के प्रवाह में ताजमहल की रूप छवि को देखिये, मूल से कहीं अधिक वह सुन्दर जान पड़ेगी। वह चित्र है, विचित्र है, अद्भुत है, आश्चर्यकारक है। मानव मन अनुकारिणी कला में मग्न होकर इसीलिये मनोरंजन प्राप्त करता है।

वेद में गान है, संगीत है। सामवेद तो सहस्रवर्त्मा संगीतों का कोष ही है। संगीत जिन सप्त स्वरों के आरोह पर अवलम्बित है, उनके तथा उनके आधार पर बने छन्दों के नाम वेद के प्रत्येक पंत्र के ऊपर आज तक लिखे चले जाते हैं। यजुर्वेद के प्रथम मंत्र के ऊपर लिखा है, परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः सविता देवता (१) स्वराट् बृहतों छन्दः मध्यमः स्वरः (२) ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः, ऋषभः स्वरः। स्वर सात हैं—षडज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद। इनके आधार पर तीन मुख्य छन्द बनते हैं—गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती। यजुर्वेद ४-२४, ८-४७, १२-५, १३-५३ आदि कई स्थानों पर इन छन्दों के नाम आये हैं। यथा-उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसं गृह्णामि। इन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णामि। अनुष्टुप्तेऽभिगरः। ८-४७।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्द आरोह पृथिवीमनु
विक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्द आरो-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हान्तरिक्षमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो
हन्ता जागतं छन्द आरोह दिवमनुविक्रमस्व
विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतांहन्तानुष्टुभं छन्द
आरोह दिशोऽनु विक्रमस्व॥ १२॥ ५॥

इन मंत्रों में उपर्युक्त तीन छन्दों के अतिरिक्त अनुष्टुप् छन्द का नाम भी आया है। इसके पूर्व चतुर्थ मंत्र में त्रिवशत, गायत्र, बृहत, रथन्तर स्तोम, छन्दान्सि, वामदेव साम, यज्ञायज्ञिय तथा घृष्ण्य आदि नाम आये हैं जो विविध प्रकार के गानों के द्योतक है। यजु० १४-९, १० तथा १८ में भ्रा, प्रमा, पंक्ति, उष्णिक्, बृहती, अनुष्टुप्, विराट, गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती आदि छन्दों के नाम आये हैं। यजु० १५-३ में षोडशी, चत्यारिशत स्तोभों के नाम आये हैं। आगे मंत्र चार और पांच में विविध प्रकार के छन्दों के नाम दिये हैं, यथा—वरिवः, शम्भू, परिभू, सिन्धु, समुद्र सरिर, ककुप, काव्य, अंकुप, अक्षर पंक्ति, पद पंक्ति, विष्टार पंक्ति, निकाय, विवध, संयत, वियत, आच्छत, प्रच्छत, गिरः, भ्रजः, संस्तुप, अनुष्टुप्, वयस्कृत, वयस्कृत, विषपर्धा, विशाल, छदि, दूरोहण, तंद्र, अंकांक आदि।

इन छन्दों का लोकों के साथ भी सम्बन्ध स्थापित किया गया है, जैसे वरिवः का सम्बन्ध अन्तरिक्ष से है और शम्भु का सम्बन्ध द्यौः से है। यजुर्वेद ९-३२ में गायत्री को अष्टाक्षर पदवाली तथा ९-३३ में त्रिष्टुप् को एकादश और जगती को द्वादशाक्षर का छन्द माना गया है। यजुर्वेद अध्याय २१ के मंत्र १२ से २२ तक छन्दों के नाम तथा उनका सम्बन्ध पशुओं के साथ स्थापित किया गया है। इन छन्दों में द्विपदा तथा अतिच्छन्दा भी है। मंत्रों का क्रम गायत्री, उष्णिहा, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, विराट्, द्विपदा, ककुप, अतिच्छन्दा, इस प्रकार है। यजुर्वेद २३-३३ में गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती अनुष्टुप् पंक्ति, बृहती, उष्णिक् और अन्त में ककुप छन्द का उल्लेख है। यजु० २३-३४ में द्विपदा, चतुष्पदा, त्रिपदा, षट्पदा, विच्छन्दा और सच्छन्दा नाम आये हैं जो सूचित करते हैं कि कुछ मंत्र विच्छन्दा अर्थात् छन्द रहित भी हैं। अतिछन्दा तो है ही। छन्दों में घृति, अष्टि, शक्वरी और जगती में अति शब्द के प्रारंभ में जुड़ने पर अतिघृति, अत्यष्टि, अतिशक्वरी और अतिजगती छन्द बन जाते हैं जिनमें मूल छन्दों से चार-चार अक्षर अधिक होते हैं। आगे मंत्र २३ से २८ तक रथन्तर, बृहत, वैरूप वैराज, शक्वरी तथा रेवती सामों का सम्बन्ध क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर ऋतुओं, त्रिवृत् पंचदश, सप्तदश, एकविंश, त्रिणव और त्रयस्त्रिंश स्तोमो, वसु, रूद्र, आदित्य, ऋभु, मरुत और अमृत देवों तथा तेज, यश, ओज, श्री, सहः और क्षत्र शक्तियों के साथ स्थापित किया गया है। यह सब अद्भुत विज्ञान है और अनुसन्धान के योग्य है। संगीत में नृत्य, वाद्य और गान की प्रमुखता है। यजुर्वेद अध्याय ३० के मंत्र उन्नीस और बीस में इनका भी इस प्रकार उल्लेख है–

महसे वीणावादम् क्रोशाय तृणवध्मं अवरस्पराय शंखध्मम्॥

महसे वीणावादम् पाणिध्नं तूणवध्ययम् तान् नृताय आनन्दाय तलवम्।

इन मंत्रों में वीणा-वादन, ढोल, ढक्का या तुरही बजाना, शंख बजाना, हाथ से तबला आदि बजाना, तलब अर्थात् करताल बजाना और नृत्य का संकेत स्पष्ट रूप से हैं। इसी अध्याय के मंत्र ६ में नृत्ताय सूतम, गीताय शैलूषम अर्थात् नृत्य के लिए सूत और गीत के लिए शैलूष का नाम आया है। वाल्मीकि ने रामायण में कुश और लव को संगीत सिखाने का उल्लेख किया है। इन दोनों के नाम पर गाने वालों की संज्ञा ही कुशीलव पड़ गई है। शैलूष नटों का एक भेद है। गाने बजाने का काम अब भी ये किया करते हैं। सूत पौराणिक युग में ऐतिहासिक तथा कथा वाचक के रूप में दिखाई देते हैं। संभव है प्राचीन काल में उनका सम्बन्ध नृत्य कला के साथ रहा हो। वर्तमान समय में कथक या कत्थक यही कार्य करते हैं। किसी-किसी कोषकार ने सूत का अर्थ कथक किया भी है।

संगीत के उपरान्त काव्य कला आती है। काव्य कला भी है और विद्या भी। हमारे यहाँ ६४ कलाओं में समस्या पूर्ति, प्रहेलिका, कूट काव्य आदि को कला के अन्तर्गत स्थान दिया गया है इसमें वैदग्व्य-भंगी-भणिति भी आ जाती है। परन्तु काव्य जिन विचारों और आदर्शों का बोध देता है, वह विद्यालय के अन्तर्गत है। समस्या पूर्ति जैसे मंत्र वेद में अनेक हैं। 'कस्मै देवाय हविषा विधेम, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः अप नः शोशु वदधम्, अर्चन्ननुस्वराज्यम्' आदि वाक्य अन्तिम टेक के रूप में अनेक सूक्तों से सम्बद्ध है। प्रहेलिकायें यजु० अ० २३ में आई हैं। औषधियों का वैद्यों से वार्तालाप, द्यावा पृथिवी का बोलना, जल- वायु-यज्ञ सोमलता आदि का वरदायी होना वह चलता भी है और न भी चलता आदि बातें प्रहेलिकाओं के ही समान हैं। साधारण जनों के लिए नक्षत्रों का रात्रि में निकलना और दिन में अदृश्य हो जाना पहेली ही है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसे ऋग्वेद १.२४.१० में इसी रूप में प्रकट किया गया है कूट काव्य भी वेद में विद्यमान है। प्रहेलिका गंभीर रूप धारण करके कूटकाव्य में परिणत हो जाती है। "किं स्विद्वनं कउस वृक्ष आसं", "किस्विदासीदधिष्ठानम्" को "अद्धा वेद कइह प्रवोचत" आदि पद कूट काव्य के द्योतक है। "त्रय केशिन ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्। विश्वमेको अभिचष्टे शचीभिः ध्राजिः एकस्य ददृशे न रूपम्।" ऋ० १.१६४.४४ मंत्र विशुद्ध रूप से कूट काव्य है।

जहाँ तक विद्या का सम्बन्ध है, वेद में कवि और उसके काव्य की महिमा मुक्त कण्ठ से स्वीकार की गई है निम्नलिखित मंत्रों पर विचार कीजिये:

मुर्द्धानं दिवोऽरतिम् पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कवि सम्राजमतिथिं जनाना मा सन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥

—यजु० ७.२४

देवताओं ने अपने मुख से मनुष्यों में योग्य एक पूज्य पात्र, योग्य व्यक्ति को उत्पन्न किया। यह सचमुच पात्र है, परमपूज्य है। कौन है यह व्यक्ति? मंत्र कहता है, यह कवि है। इस कवि के गुण क्या है? यह सम्राट है, सम्यक् प्रकार से दीप्त होता है, चमकता है। यह अतिथि है, कभी-कभी उत्पन्न होता है, देवदूत के रूप में इसका जन्म विशेष अवसरों पर ही होता है यह ऋतजात वैश्वानर अग्नि है। अग्नि सब का अग्रणी या नेता है। वैश्वानर सब नरों का हितकारी है। ऋतजात ऋत में, मर्यादा पालक है, आदर्शों के लिए प्रख्यात है, वही आदर्श मर्यादा का उपदेष्टा बन सकता है। भारतीय इतिहास में कवि के वचनों का प्रत्याख्यान किसी से नहीं किया। अकबर ने नरहरि की बात मानी और राज्यभर में गोवध बन्द कर दिया। जयपुराधीश ने बिहारी की आज्ञा शिरोधार्य करके राजकाज संभाला। पृथ्वीराज ने चन्दवरदायी की प्रेरणा पर संयोगिता के सहवास का सुख छोड़ा और गौरी के साथ युद्ध किया। कवि की यह प्रतिष्ठा क्यों थी? क्योंकि उसे "पृथिव्या अरति" किसी भी पार्थिव ऐश्वर्य में आसक्ति नहीं थी। वह "दिवो मूर्धानं" द्यौ की मूर्धा, प्रकाश का शिरस्थानीय, दिव्यता का धनी था। यथार्थवाद की पीठ पर पैर रखकर वह अपना शिर आदर्शवाद में स्थापित करता था। जो है, वह तो है ही, क्या होना चाहिये, क्या करणीय है, किधर बढ़ना है, इसकी ओर वह इंगित किया करता था। प्रत्येक कवि को, जो वस्तुतः कवि है, इसी दिशा का निर्देश करना चाहिये। कवि आशीर्वाद के रूप में भवितव्य गुणों का जो वर्णन किया करते हैं, उससे भी यही प्रयोजन सिद्ध होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उशिगसि कविः अन्धारिरसि वम्भारिः
अवस्यूरसि दुदस्वान् शुन्धयूरसि
मार्जालीयः सम्राऽसि कृशानुः परिषद्योसि
पवमानः ऋतधामासि स्वज्योतिः॥ यजु० ५.३२

कवि उशिक् है, कमनीय है, सब उसे चाहते हैं, आबालवृद्ध सबको उसकी बातों में रस आता है। वाणी ही तो कवि का बल है। वाणी आग्नेय है। अतः कवि की वाणी में अग्नि निवास करती है, वह तेजस्विनी, प्रेरणावती तथा अग्नि के समान पापों को भस्म करने वाली होती है। वह भरण-पोषण करने वाली भी है। कवि अपनी इसी वाणी के सत को संरक्षण देता है और इसी रूप में वह जनतात्मा की सेवा करता है वह विकारों का मार्जन करके जनता को, व्यक्ति या वर्ग को, पवित्रता की ओर ले जाता है वह सम्राट है, विप्रो में विशेष रूप से विराजमान होता है वह कृशानु है, दुर्बल का प्राण है। कृशानु की भांति वह ऊर्ध्वगामी है और इसी हेतु अन्यों को भी उठाने वाला, ऊपर ले जाने वाला है। वह परिषद् के योग्य है। वाग्मी कवि के बिना परिषद की शोभा नहीं होती। वह पवमान है, पवित्र है, प्रगतिशील है तथा अन्यों का पथ प्रदर्शक है। उसे ऋत का धाम, सत्य का तेज प्राप्त है। वह निर्भय है। जब सम्राट से ही वह नहीं डरता, तो सामान्य जन से क्यों भयभीत होगा? उसके मस्तिष्क में स्वज्योतिः=आनन्द और प्रकाश है।

कवि वाग्देवी सरस्वती का वरद पुत्र है। "मनो वा सरस्वान् वाक् सारस्वती" ऐसा शतपथ ७.५.१.२१ का वचन है। सरस्वती का पुत्र सारस्वत कवि मानों अनेक भाव प्रवाहों का स्रोत है। ऐसा स्रोत जिस देश के पास है, वह सदैव सुरक्षित रहेगा। "सारस्वती त्वा उत्सौ प्रावताम्" यजु० १३-३५। राष्ट्र वही पथ भ्रष्ट होता है, जिसके पास सिद्ध सारस्वत कवि न हो।

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दार वृषभाय वृष्णे।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रूक्ममुरुव्यंजचमश्रेत्॥

पवित्र गुणों एवं आचरणों से परिपूर्ण क्रान्तदर्शी, मेधावी, श्रेष्ठ कवि के लिए हमें वन्दना योग्य, सम्मानपूर्ण वचनों का प्रयोग करना चाहिये। कवि गविष्ठिर=वाणी में स्थिर होता है वह नम्रभाव से अग्नि में, आग्नेय क्षात्रभाव में, अपने स्तोमों, स्तुतियों का वैसे ही विस्तार करता है जैसे दिवि=द्युलोक में, गविष्ठिर=किरणों में स्थित, सूर्य रूक्मम् उरूव्यञ्चम् अश्रेत=अपने प्रकाश का विस्तार करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य लोक लोकान्तरों को प्रकाश देता है, कवि जन-जन के मानस को आलोकित करता है कवि राज्याश्रम में पलता है, सूर्य प्रभु के आश्रय में पल रहा है साथ ही दोनों स्वाधीन भी है। सूर्य अपने प्रकाश के लिये किसी का ऋणी नहीं बनता। वह दूसरों को ऋणी बनाता है। कवि भी फक्कड़ होते हैं, किसी के अंकुश को स्वीकार नहीं करते। निरंकुशाः हि कवयः, पर साथ ही अपनी क्रांन्तदर्शिता से सब को उपकृत भी करते रहते हैं।

काव्ययो राजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे।
रिशादसा संघस्थडआ। —यजु० ३३-७२

हे रिशादजी! मित्र और वरुण। तुम वरुण रूप में पापों के निवारक और मित्र रूप में संदर्भ के सहायक हो। तुम दोनों साथ-साथ रहकर दक्ष के दुरोण में, जल के भवन में, दोनों प्रकार के काव्यों (दृश्य तथा श्रव्य) में निष्णात विद्वानों के ज्ञान तथा संकल्प के अनुकूल व्यवहार करो।

यहाँ दो प्रकार के काव्य का उल्लेख है। भरतादि परवर्ती आचार्यों ने काव्य के दो प्रमुख भेद किये हैं :–श्रव्य और दृश्य। फिर इन दो के भी अनेक भेद हैं। दोनों ही प्रकारों के काव्य जनता तथा राजवर्ग दोनों के लिये अनेक हितकारी उपदेश देते हैं। काव्यगत उपदेश आचार्य मम्मट के अनुसार कान्तासम्मित होना चाहिये : उपदेश मिल भी जाय और प्रतीत न हो कि उपदेश दिया जा रहा है काव्य की यही विशेष पद्धति है।

काव्य की दो दिशायें और हो सकती हैं : लौकिक एवं आध्यात्मिक। लौकिक काव्य व्यवहारोपयोगी उपदेश दे सकता है। आध्यात्मिक काव्य पाठक को निःश्रेयस की ओर प्रवृत्त करेगा। एक से अभ्युदय और दूसरे से मोक्ष की सिद्धि होगी। स्वार्थ और परमार्थ दोनों दिशाओं में मानव के पुरुषार्थ का उपयोग होना चाहिये। पूर्णता के लिये यही अभिवांछनीय है। अध्वर अथवा यज्ञ का यही उद्देश्य है। "सोऽध्वराय परिणीयते कविः"–यजु० ३३.७५। कवि इसी अध्वर के लिये परिणीत होता है अर्थात् नियुक्त होता है जैसे परिणय में वधू वर के साथ ग्रन्थिबद्ध होती है, वैसे ही कवि इस अध्वर के साथ संयुक्त होता है जीवन यज्ञ है। वह सुक्रतु, शोभनकर्मा है।

काव्य ग्रन्थों में सर्वप्रथम आदि कवि वाल्मीकि की रामायण का नाम आता है। रामायण महापुरुष राम के पावन चरित्र से उद्भासित हो रही है। उसके प्रकृति वर्णन, नगर वर्णन, युद्ध वर्णन आदि सभी उच्च कोटि के तथा मानव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंगल के साधक हैं। व्यासकृत महाभारत भी साहित्य तथा इतिहास का भूषण है और "यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्" उक्ति उस पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। रामायण और महाभारत के आख्यान आगामी काव्यों के उपजीव्य बने हैं। भास, कालिदास, बाण, श्रीहर्ष, माघ आदि सबके काव्य इन्हीं पर आधारित हैं।

अश्वघोष का बुद्धचरित तथा जैनकवि रविषेण का पद्म चरितम् जैसे अनेक काव्य संस्कृत में लिखे गये हैं। प्राकृत, अपभ्रंश और वर्तमानकालीन काव्य ग्रन्थों की बात रहने दीजिये, अकेले संस्कृत भाषा के ग्रन्थों को ही लिया जाय तो वे परिणाम में, रेप्सन के कथानुसार लैटिन तथा ग्रीक साहित्य के सम्मिलित परिणाम से भी अधिक बैठेंगे। इस विपुल साहित्य में हमारे ऋषियों, मूर्तियों, कवियों तथा दार्शनिकों ने जो भाव ज्ञान सम्बन्धी अमित भण्डार सग्रंथित कर दिया है, वह मानव जाति की अतुल सम्पदा है। हम सभी इस विषय में अपने पूर्वजों के ऋणी हैं। वे कोरी कल्पना को प्रश्रय नहीं देते, कौटिल्य के अर्थशास्त्र के समान यथार्थवाद की ठोस भूमि पर भी प्रतिष्ठित हैं। मैक्समूलर ने जैसे अपना जीवन इस साहित्य की सेवा में समर्पित कर दिया था, हमें भी वैसे ही इसके अनुशीलन में संलग्न हो जाना चाहिए।

सभ्यता और संस्कृति से सम्बन्धित मूर्त प्रमाण

(क) कला का विकास :

भारतवासियों पर लौकिक विषयों से पराङ्मुख रहने का आक्षेप लगाया जाता है इसका एकमात्र कारण है, उस संस्कृति की विशेषता जिसे भारतीय या वैदिक संस्कृति कहा जाता है जैन, बौद्ध आदि नामों से प्रचलित संस्कृतियों वैदिक संस्कृति से भिन्न नहीं है। हम पीछे लिख चुके हैं कि वैदिक संस्कृति विश्ववारा संस्कृति है। भूमण्डल भर के लिए संस्कृति एक है, सभ्यतायें पृथक्-पृथक् हैं। लौकिक विषयों का समावेश सभ्यता में होता है, संस्कृति में नहीं। सभ्यता क्या है, इसी का विवेचन हम इस ग्रन्थ में संस्कृति के अनन्तर करते रहे हैं।

वैशेषिक दर्शन ने निःश्रेयस को जिस अभ्युदय के साथ संयुक्त किया है, वह सभ्यता था लौकिक उन्नति का हीं अर्थ देता है। वेद से जो उपवेद चले, वे भी अभ्युदय के ही परिचायक हैं। अथर्ववेद का जो अर्थवेद है, उसका सम्बन्ध दण्डनीति, स्थापत्य तथा अर्थपरक कला आदि से हैं। मोक्ष को छोड़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थ ऐहिक उत्थान से सम्बन्धित है। ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, बृहस्पति और उशना के नाम, अर्थशास्त्र के रचियताओं में, महाभारत तथा कौटलीय अर्थशास्त्र में आये हैं। कौटल्य विशलाक्ष तथा बाहुदन्ती पुत्र के नाम भी लेता है। इन्द्र के ग्रन्थ का नाम बाहुदन्तक था। संभव है बाहुदन्तक तथा बाहुदन्ती पुत्र में कोई सम्बन्ध हो। मनु तो धर्मशास्त्र के रचियता है ही। बृहस्पति का नाम अर्थशास्त्रियों में ऊपर आया है। काम का वर्णन, कहते हैं, नन्दी ने किया।

कौटिलीय अर्थशास्त्र चन्द्रगुप्त मौर्य के मंत्री, प्रसिद्ध प्रकाण्ड पण्डित, नीति विचक्षण चाणक्य का लिखा हुआ है। इस बृहत् ग्रन्थ में १५ अधिकरण तथा १८० प्रकरण हैं। इसमें राजनीतिक के सभी अंगों का व्यावहारिक विवेचन है। एक-एक अंग का इतना विशद् विवरण है कि पढ़कर चाणक्य के बुद्धि वैभव पर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। आग पर चलना, अन्धकार में देखना, अदृश्य बन जाना आदि विषयों का प्रतिपादन चाणक्य कालीन वास्तुविद्या की प्रखरता प्रकट करता है। कामन्दक, शुक्र, सोमदेवसूरि, हेमचन्द्र, राजा भोज आदि के नाम भी नीतिकारों तथा कला विवेचकों में प्रख्यात हैं।

कलायें ६४ या उससे भी अधिक हैं, नृत्य, गीत, बाद्य, चित्र, शैय्या प्रसाधन, माल्यग्रन्थन, पुष्पास्तरण, मणिकुट्टिमता (फर्श पर मणि आदि का जड़ना) शेखर, योजन, कर्ण, पत्रभंग, भूषण योजन, हस्तलाघव, सूदकार्य, सूचीकर्म, प्रहेलिका, अन्त्याक्षरी, दुर्वाचन या कूट पाठ, समस्यापूर्ति, पट्टिका-पीढ़ा आदि का निर्माण, तक्षण कार्य, वास्तुविद्या, धातुशोधन, पक्षि युद्ध, शुक्र-सारिका को पढ़ाना, तनमर्दन, बहुभाषा ज्ञान, यंत्रनिर्माण, अभिधानकोष, छन्दोज्ञान, द्यूत, मल्लकला, लिपिकला, रूपापह्लव आदि कलायें हैं।

कलाओं का विकास किसी देश में तभी होता है, जब वह सभी प्रकार से सुरक्षित, समृद्ध और उत्साह सम्पन्न हो। कलायें सौन्दर्य की बोधिकायें हैं जो जाति अपने पौरुण से सौन्दर्य को सम्मान न दे सके, उसका रक्षण तथा पोषण न कर सके, वह कलाओं को जन्म नहीं दे सकती। वेद इस दिशा मे मानव मात्र को स्फूर्ति तथा शक्ति की घुट्टी पिलाता है। जब तक वेद की शिक्षा भारतीयों को अनुप्राणित करती रही, तब तक उन्होंने कला के क्षेत्र में जो उन्नति की उसके निदर्शक चिह्न आज भी या तो अपने सजीव रूप में या ध्वंसावशेष रूप में खड़े दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर रहे हैं। हड़प्पा की खुदाई में जो मूर्तियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकली हैं, मोहनजोदड़ो की खुदाई में जो मूर्तियां, पात्र, नगर निर्माण की स्थिति आदि प्राप्त हुए हैं, वे हमारे पूर्वजों की कला प्रियता के सुन्दर उदाहरण हैं। महात्मा बुद्ध, महावीर, पार्श्वनाथ, शिव आदि की जो मूर्तियां विभिन्न प्रदेशों में उपलब्ध हुई हैं, सारनाथ, सांची और भरहुत में जो स्तूप आज भी विद्यमान हैं, और इन पर जो चित्र चित्रित हैं तथा शिलालेख मुद्रित हैं, वे कला क्षेत्र में किसी भी जाति के शिर को गौरव से ऊँचा उठा सकते हैं। पर्वतों को काटकर जो गुफायें बनाई गई हैं और उनके बाहर शेर, हाथी, अप्सरा आदि की जो चित्रकारी है, उसका चमत्कार देखते ही बनता है। काली की गुफा लगभग १२४ फीट लम्बी है। उदयगिरि की गुफा तथा जोगीमारा गुफा के चित्र भी भव्य है। अजन्ता में कई गुफायें हैं। उनके चित्रों में भावों का प्रदर्शन भी उत्तमता से किया गया है ग्वालियर के बाघ ग्राम की गुफाओं में भी अजन्ता कला वाले चित्र पाये गये थे अब उनका स्वल्प अंश ही बचा है।

आबू पर्वत पर सफेद संगमरमर के जैन मन्दिर, कोणार्क में सूर्य का मन्दिर, ऐलोरा की गुफायें, कैलाश मन्दिर पर अंकित शिव का ताण्डव नृत्य आदि को देखकर भारतीय कलाकारों की भूरि-भूरि प्रशंसा करनी पड़ती है। महमूद गजनवी के साथ अलउल्वी ने जब मथुरा के मन्दिरों को देखा, तो वह चकित रह गया। उसके शब्द हैं—मथुरा के मध्य में स्थित इस मन्दिर का चित्र खींचा नहीं जा सकता। वह अवर्णीय है। सुल्तान ने स्वयं कहा—ऐसी इमारत एक अरब सोने के दीनार खर्च किये बिना नहीं बन सकती। बड़े से बड़े अनुभवी कारीगर इसे दो सौ वर्ष में बना सकेंगे। मूर्तियों में ५ मूर्तियां स्वर्ण निर्मित, पाँच-पाँच गज लम्बी और हवा में लटक रही थी। चांदी की मूर्तियां दो सौ थी। यह था भारत का वैभव जिस पर विदेशियों की गिद्ध दृष्टि पड़ी और उनसे जितना लूटा जा सका लूटा गया। पर क्या वे इस लूट को सदैव के लिये भोग का साधन बना सके।

चित्र के साथ लिपिकला का भी घनिष्ट सम्बन्ध है। हमारे पूर्वजों ने लिपिकला का भी विकास किया था। यजुर्वेद ५.४३ में "द्यां मा लेखी" और अथर्ववेद २०.१३२.८ में क एषां कर्करी लिखित वाक्य आते हैं जिनसे लेखनकला का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है ऋग्वेद १.७१.४ में उतत्वः पश्यन्न ददर्श वाचम् पद आता है जिसमें वाणी को देखने (पढ़ने) और सुनने का वर्णन है। यह देखना या पढ़ना वाणी के लिखित रूप का सन्देश देता है। यास्क भी वाणी के लिखित रूप से परिचित हैं। निरुक्त १.९ में वह लिखते हैं : अथ ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवृते अर्थ अमिताक्षरेषु ग्रन्थेषु वाक्य पूरणा आगच्छन्ति, परपूरणास्ते मिताक्षरेषु। अमिताक्षर गद्य तथा मिताक्षर पद्य है। अक्षर, वाक्य, ग्रन्थ सभी शब्द वाणी के लिखित रूप में निर्देशक है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी के प्रारंभ में ही लिपि के लिखित रूप वाले अक्षर गिनाये हैं। वात्सायन ने अपने वार्तिक में यवन लिपि का नाम लिया है। अशोक के समय में ब्राह्मी तथा खरोष्ट्री दो लिपियां प्रचलित थीं। ब्रह्मो वाम से दक्षिण और खरोष्ट्री दक्षिण से वाम ओर लिखी जाती थी। बौद्ध साहित्य में भिक्षुओं के कई लिपियों में लिखने का उल्लेख है। अशोक के शिलालेख ब्राह्मी लिपि में लिखे मिलते हैं। पाणिनी के अक्षरों वाले सूत्र माहेश्वर-सूत्र कहलाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि हमारे पूर्वज लिपि को भी ब्रह्मा या शिव द्वारा उत्पन्न मानते थे। वर्तमान देवनागरी लिपि ब्राह्मी लिपि का ही रूपान्तर है। भारत की अन्य लिपियां भी इसी का प्रतिरूप है। केवल लिखावट में किंचित् अन्तर आ गया है।

ध्वंसावशेषों का उत्खनन

(ख) हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो :

साहित्य तो सभ्यता का परिचायक है ही, कलाओं के रूप भी अपनी जीवित जाग्रत अवस्था में सभ्यता का परिचय देते हैं। ध्वंसावशेष, शिलालेख, ताम्रलेख, स्तूपलेख, मुद्रायें आदि प्राप्त हो सकें तो उनसे भी तत्कालीन समाज की सभ्यता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। अंग्रेजों को व्यापारियों की जाति कहा जाता रहा है, पर ज्ञान की उपलब्धि एवं तत्त्वजिज्ञासा में भी वे किसी से कम नहीं है। जब से उन्हें भारतीय सभ्यता की उत्कृष्टता का बोध हुआ, तभी से वे अधिक-से-अधिक उसके उपकरण प्राप्त करने में जूट गये। प्राचीन विभाग की स्थापना करके उन्होंने ढूहों, ध्वसावशेषों आदि की खुदाई कराई और प्राचीन भारतीय सभ्यता से सम्बद्ध अनेक वस्तुयें प्राप्त की।

इन खुदाइयों में हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो के नाम प्रख्यात हैं। हड़प्पा पंजाब के पश्चिमी विभाग में रावी नदी के दक्षिण की ओर ऊंचे टीले पर बसा हुआ है। तीस फुट से साठ फुट तक ऊंचे ढूह हैं। अंग्रेजों ने १९२०-२१ ई॰ में यहां खुदाई कराई। परिणामस्वरूप जो वस्तुयें निकली, उनसे सभ्यता के उच्च स्तर का ज्ञान होता है इन वस्तुओं में पात्र, मूर्तियां तथा मुहरें भी हैं। १९२२ में मोहनजोदड़ो स्थान पर खुदाई हुई। यह स्थान जिला लरकाना के ढाकरी स्टेशन से ८ मील दूर है। यह खुदाई १९३१ तक चलती रही। इस खुदाई में पात्र,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्तियां, मुहरें, मकान, मंदिर, सरोवर, स्नानागार आदि प्राप्त हुए। पात्र या बर्तन पकाई मिट्टी के बने है और रंगे हुए हैं। मूर्तियां मिट्टी पत्थर या तांबे की बनी हुई हैं। मुहरें वैसी ही है जैसी हड़प्पा की खुदाई में मिली थी। मकान पक्की ईंटों के बने हैं। ईंट १० इंच लम्बी, ५ इंच चौड़ी तथा ढाई इंच मोटी है और आजकल की ईंटों के समान है। मकानों में नालियों का प्रबंध है। मार्ग चौड़े हैं। राजपथ के दोनों ओर दूकानें हैं। मकान दो मंजिल का है। ऊपर जाने के लिये सीढ़ियां है। मकान सीधी लाइन में बने हैं। दीवाले गारे से चुनी गई हैं, जिन पर चूने की टीप है, पलस्तर नहीं है। नालियां ढकी हुई हैं। मकान के दोनों मंजिलों में स्नानगृह हैं, जिनमें पानी निकलने का ढलाव है। प्रत्येक गृह में कुआं है जो पक्का है। बौद्ध स्तूप भी मिले हैं जिनके समीप सरोवर है। एक सरोवर ३६ फुट लम्बा और २३ फुट चौड़ा है। पानी तक पहुंचने के लिये सीढ़ियां बनी हैं। तालाब की दीवालों पर पलस्तर है।

मंदिरों में जगदम्बा की मूर्तियां मिली हैं। ऐसी मूर्तियां मैसोपोटामिया तथा एशिया माइनर में भी मिली है। त्रिमुख शिव की मूर्ति भी मिली है। शिव की एक मूर्ति योगासन मुद्रा में है जिसके सामने नाग बैठे हुए हैं। पुजारी की एक प्रस्तर मूर्ति मिली है जिसकी दाढ़ी बढ़ी हुई है और वाम स्कंध के ऊपर से एक दुशाला दक्षिण स्कंध के नीचे तक लटक रहा है

बच्चों के खिलौना में मिट्टी के बने बैल, हाथी और पक्षियों के खिलौने हैं। बैल की पूंछ हिलाने से शिर भी हिलता है। हाथी और पक्षी शब्द करते हैं। बर्तनों में मटके, प्याले, थाली, चम्मच आदि मिले हैं। उखल, मूसल, चक्की, ताम्बे के औजार, सोने, चांदी आदि के हार, रूई के कपड़े आदि भी मिले हैं। जो मुद्रायें मिली हैं, वे वैसी ही है जैसी हड़प्पा से लेकर एशिया के पश्चिमी भाग में स्थित सुमेर और एलम में मिली हैं। मुद्राओं पर कुछ लेख भी अंकित है जो अभी तक निश्चित रूप से पढ़े नहीं जा सके। एक भारतीय विद्वान् का कथन है कि ये लेख वैदिक देवताओं के नाम उसी प्रकार रखते हैं जिस प्रकार बोगाजकोई की खुदाई में प्राप्त संधि पत्र मिले हैं। मुद्राओं पर सींग वाले बैल का चित्र है अथवा सांड, गेंडा, भैंसा, हाथी या बाहरसिंगे का।

गले में हार पहने एक स्त्री की मूर्ति मिली है। एक नर्तकी की धातु की मूर्ति है, जिसकी ग्रीवा में हंसली है और हाथ में चूड़ियां हैं। सवारी की गाड़ियां वैसी ही है जैसी आजकल के ग्रामों में है। इनमें दो पहियें हैं, ऊपर छत और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे हांकने वाले का स्थान है। हथियारों में धनुष बाण, भाले, खड्ग, कुल्हाड़ी, गदा आदि मिले हैं जो हमारे साहित्य के परिचित अस्त्र हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि भारत के मध्य प्रदेश से लेकर अरब और एशिया के पश्चिमी भाग तक एक ही प्रकार की सभ्यता फैली हुई थी, क्योंकि हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, बलोचिस्तान, ईराक आदि में जो खुदाई हुई है उसमें एक जैसी वस्तुयें प्राप्त हुई हैं अब जो कालपी के आस पास खुदाई हुई है, उसमें भी वैसी ही वस्तुयें हैं। संभव है कि मानव जाति, जैसा महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है, तिब्बत और पामीर के पठार पर बसी हो और वहां से सप्तसिन्धु को केंद्र बनाकर उसके पूर्व तथा पश्चिम में फैल गई हो। दिति की संतान पश्चिम की ओर और अदिति की संतान पूर्व की ओर रही, ऐसी कल्पना भी की जा सकती है। दोनों में बहुत कुछ समानता थी। दोनों वेद पढ़तें थे, यज्ञ करते थे, अर्थ भले ही भिन्न-भिन्न लगाते हों। कम-से-कम पुराणों का साक्ष्य तो यही सिद्ध करता है द्रविण भाषा जिनकी एक शाखा ब्राहूई बलोचिस्तान में पाई गई है, इन्हीं में से हैं। पुराणों के अनुसार वे विश्वामित्र की संतान तथा अगस्त्य के शिष्य हैं। ऐतरेय ब्राह्मण की शुनः शेष कथा के आधार पर जब विश्वामित्र ने शुनः शेष को देवरात के रूप में अपना पुत्र बना लिया, तो उनके ५० पुत्रों को बुरा लगा और वे पिता का विरोध करने लगे। विश्वामित्र ने उन्हें अभिशाप दिया जिसके परिणामस्वरूप वे मध्य देश को छोड़कर आन्ध्र, पुलिन्द, पौण्ड्र आदि दक्षिणात्य देशों में बस गये। दक्षिण में विश्वामित्र तथा अगस्त्य गोत्र आज तक प्रचलित हैं। अतः द्रविणों को हम आर्येतर नहीं मानते। द्रविण या द्रविड़ धन का द्योतक है। दक्षिण में हीरे आदि की खानें हैं। लंका तो स्वर्णमयी थी ही। इसी आधार पर देश वहां के निवासियों का नाम द्रविड़ पड़ गया।

(ग) तक्षशिला :

तक्षशिला भारत का शिर है। इसी के विश्वविद्यालय से पाणिनि सदृश अद्वितीय वैयाकरण, चाणक्य सदृश नीतिवेत्ता तथा जीवन सदृश राजवैद्य उत्पन्न किये। प्राप्त सूत्रों के आधार पर यहां वेद, वेदांग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, धनुर्वेद, शिल्प, सैनिक, शिक्षा, ज्योतिष, तंत्र तथा आयुर्वेद की उच्च कोटि की शिक्षा दी जाती थी। भारत ही नहीं, विदेशों से भी विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के लिये यहां आते थे। धनवानों को एक सहस्त्र कपार्पण शुल्करूप में देना पड़ता था। निर्धन विद्यार्थी गुरु गृह सेवा करके पढ़ा करते थे। कुछ ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी विद्यार्थी पढ़ते थे जो शिक्षा समाप्ति के उपरांत अर्जन करके विश्वविद्यालय का शुल्क चुकाते थे। सदाचार परायण जीवन को प्रमुखता दी जाती थी। आचार्य तथा शिष्य का पिता-पुत्र के सदृश संबंध था।

बर्बर यवन, शक तथा हूणों के अनवरत आक्रमणों ने इस विश्वविद्यालय तथा नगर को ध्वस्त कर डाला। चीनी यात्री फाहियान ने अपने यात्रा वृत्तांत में इसका विवरण प्रस्तुत किया है जो ईसा की चौथी-पांचवीं शताब्दियों में यहां आया था।

तक्षशिला रावलपिंडी से २० मील दूर सरायकाला स्टेशन के पास है। चारों ओर पहाड़ियों से घिरी हरियाली भूमि है। अंग्रेजों ने यहा एक विपुलकाय टीला देखा, तो १९१२ ई. में उन्होंने इसकी खुदाई प्रारंभ कर दी। परिणामतः वहां तीन नगर निकले जिनमें मीरमन्द प्राचीनतम है। मौर्यकाल में यह उत्तर पश्चिम प्रदेश की राजधानी थी। कुछ भवन ध्वस्त हैं, पर कुछ अभी तक ज्यों के त्यों खड़े हैं। जिन पर भगवान बुद्धदेव के चित्र अंकित हैं। यवन आक्रमणों में मीरमन्द नष्ट हुआ। उससे थोड़ी दूर पर सिरकप नगर बसाया गया। खुदाई में एक बड़े भवन के खण्डहर दिखाई दिये जिनके उत्तर की ओर एक समान कई कक्ष बने प्रतीत होते हैं। बीच में एक बीथी है। इन्हीं कक्षों को विशेषज्ञ तक्षशिला विश्वविद्यालय का रूप देते हैं। खरोष्ट्री लिपि में लिखा यहां एक शिलालेख भी प्राप्त हुआ है। यह नगर कुशाल या कुषाण वंश की राजधानी रहा है जब कनिष्क ने पेशावर को राजधानी बनाया, तो इस नगर का महत्त्व जाता रहा। टीले के पास वाले मैदान में भी खुदाई हुई तो वहां तीसरा नगर निकला जिसे सिरमुख कहा जाता है यहां ईसा के द्वितीय सदी की मुद्रायें निकली हैं, जिन पर कनिष्क का नाम अंकित हैं।

तक्षशिला में भगवान बुद्ध के कई स्तूप मिले हैं, जिनमें कुछ भग्न हैं और कुछ पूर्ण। इनमें से एक स्तूप का नाम धर्मराज स्तूप है जिस पर संस्कृत भाषा परंतु खरोष्ट्री लिपि में एक लेख मिला है। कुषाण काल में किसी बौद्ध यात्री ने इसे लिखवाया था। दो सौ फुट ऊंचे इस स्तूप पर मूर्तियां बनी हुई हैं जिनमें से कुछ की ग्रीवा में मालायें भी पड़ी हैं। दूसरे स्तूप को बाल्हार स्तूप कहा जाता है। जो महाराज अशोक का बनवाया हुआ है और तक्षशिला से उत्तर की दिशा में है। इस स्थान का बड़ा महत्त्व माना जाता रहा है और यहां बड़े-बड़े मेले लगते रहे हैं। महाराज अशोक के पुत्र कुणाल के नाम पर एक कुणाल स्तूप भी यहां मिला है जो १०० फुट ऊंचा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक्षशिला की खुदाई में आभूषण, पात्र, मुद्राएं और सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। आभूषण सोने और चांदी के बने हैं। पात्रों में मिट्टी और पत्थर के बने मटके, गिलास, थालियां आदि मिले हैं। सिक्के विदेशी जान पड़ते हैं। जो मुद्रायें मिलीं, उन पर कनिष्क, हविष्क और वासुदेव के नाम अंकित हैं। बौद्धकाल का यह विशेष स्थान रहा है आचार्य कुमार लुब्ध ने अपने ग्रंथ यहीं बैठकर लिखे थे।

(घ) नालन्दा :

नालन्दा बिहार में हैं। इसकी दो बार खुदाई हो चुकी है। १२वीं शती में इसे बख्तियार खिलजी ने नष्ट-भ्रष्ट किया था। खुदाई में कुछ कमरे, एक स्तूप और चौड़ी-चौड़ी दीवालें मिली हैं। स्तूप ऊंचा है और उस पर मूर्तियां बनी हुई है, पर विकृत हैं। स्तूप के शिखर पर भी एक मूर्ति हैं। कमरे चौड़े हैं और उनमें तीन ओर की दीवालों में फर्श से कुछ ऊपर गच की हुई पट्ट शिलाओं के समान सोने बैठने के स्थान हैं। द्वार में कुछ रखने के लिये लम्बे तिखाल बने हुए हैं। दो कमरों के बीच में बीथियां हैं जो प्रवेश तथा निष्क्रमण का कार्य करती होगी। एक बीथी ढ़ाल है। एक बड़ा आंगन भी है जो संभवतः सभा-स्थान के रूप में रहा होगा। कुछ कूप भी मिले हैं वे गोल न होकर अठपहलू हैं। शिल्प कला के सुन्दर नमूने पात्र, गहने, अस्त्र, चित्र, मूर्ति के रूप में मिले हैं। कुछ शिलालेख भी प्राप्त हुए हैं।

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इस विद्यालय में रहकर अध्ययन किया था। उसके विवरण के अनुसार यहां दश सहस्त्र विद्यार्थी अध्ययन करते थे। बड़ी-बड़ी दीवालों पर सधे चौतल्ले मठ थे जिनके कंगूरे आकाश चुम्बी थे। ऊंची-ऊंची खिड़कियों से मेधमाला चलती-फिरती दृष्टिगोचर होती थी। सबसे ऊपर की छत पर सूर्य-चन्द्र मिले जान पड़ते थे। कक्ष रंगीन शिल्प से मंडित थे। छायादार कुंज और उद्यान, निर्मल सरोवर, नीलकमल, लाल-लाल कर्णिकार और हरीतिमा आभा से रभ्याकृति वाले आम्रवृक्ष मन को आनन्दित करते थे।

ह्वेनसांग के इस विवरण से मिलता-जुलता इत्सिंग का भी लेख है जिसके अनुसार नालन्दा विश्वविद्यालय में आठ हाल तथा तीन सहस्त्र कक्ष थे। विद्यार्थी निःशुल्क शिक्षा लाभ करते थे। व्यय का सम्पूर्ण भार राजाओं तथा धनिकों के दिये दान, ग्राम आदि से चलता था। अध्यापक लगभग एक सहस्त्र थे। प्रवेश से पूर्व एक द्वार भट्ट सबकी परीक्षा लेता था। प्रबंध तथा अनुशासन दोनों ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चकोटि के थे। प्रधानाचार्य शीलभद्र के अतिरिक्त धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, प्रभामित्र, जिन्मित्र, ज्ञान चन्द्र आदि प्राध्यापक थे जो अपने अपने विषय के पारंगत विद्वान थे। श्री पद्म संभवतः जिन्होंने तिब्बत में लामा सम्प्रदाय को जन्म दिया, इसी विश्वविद्यालय में पढ़े थे। पुस्तकालय नौतल्ला विशाल भवन में स्थित था। कितनी विस्तृत ग्रंथ राशि इसमें रही होगी, इसका केवल अनुमान किया जा सकता है। पर जिन्हें ज्ञान भण्डार से कोई प्रयोजन नहीं, उनके लिये नालन्दा तथा सिकन्दरिया के पुस्तकालय एक जैसे निरर्थक हैं।

(ङ) सारनाथ :

सारनाथ वाराणसी से चार मील उत्तर की ओर है। महात्मा बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश यहीं दिया था। उनके धर्म चक्र का प्रवर्तन भी यहीं से प्रारंभ हुआ। अतः सारनाथ का बौद्ध धर्म की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है।

जब काशी नरेश के दीवान जगतसिंह ने अपने नाम से नगर बसाने के लिये सारनाथ के एक स्तूप को खुदवाया तो उसमें मसाले के साथ बुद्ध की एक मूर्ति भी मिली डिप्टी कमिशनर ने इसकी सूचना एशियाटिक सोसायटी बंगाल को दी। परिणामतः कनिंघम साहब ने यहां खुदाई प्रारंभ की। १९०४-०५ में खुदाई का काम फिर शुरू हुआ जिसमें अशोक स्तम्भ, सिंह शिखर तथा कई मूर्तियां मिलीं।

यद्यपि स्तूप नष्ट हो गया, फिर भी उसकी उत्तर दिशा में मुख्य मंदिर के कुछ अंश अब भी सुरक्षित हैं। दीवालें हैं और दीवालों पर छत भी है। एक और स्तूप है जो बहुत ऊंचा है। उसी के पास मठ हैं, समाधि हैं और पत्थर में कटी सीढ़ियां हैं।

अशोक स्तम्भ के सिंह शिखर पर सिंह की त्रिमुखी मूर्ति हैं। इस स्तम्भ पर ब्राह्मी लिपि में अशोक का एक लेख भी खुदा है जो बौद्ध संघ के भिक्षु भिक्षुणियों को प्रेम की शिक्षा देता है।

सारनाथ से पूर्व प्राप्त मूर्तियां तो कलकत्ता के संग्रहालय में रख दी गई थीं, पर बाद में जो वस्तुयें प्राप्त हुई, वे सारनाथ के संग्रहालय में ही सुरक्षित हैं।

इनके अतिरिक्त राजगृह और वैशाली भी प्रख्यात ऐतिहासिक स्थान हैं। राजगृह महाभारत का गिरिव्रज है तो जरासंध की राजधानी रहा है महात्मा बुद्ध तथा महावीर वर्धमान दोनों ने इसे बौद्ध धर्म तथा जैनधर्म ने प्रचार का केन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाया था। यहां अशोक की ६० फीट ऊंची लाट, पर्वत शिखर पर निर्मित जैन मंदिर तथा सोन भाण्डार गुफा अब भी दर्शनीय हैं।

वैशाली लिच्छिवियों की राजधानी रही है। आजकल इसे बसाढ़ कहते हैं जो बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में है। यहाँ अशोक निर्मित एक स्तूप है जिस पर सिंह खड़ा है। १९०४ ई. में खुदाई होने पर प्राचीन भवन निकले। कुछ मुद्रायें भी प्राप्त हुई जो चौथी-पांचवीं शताब्दियों की हैं।

जबलपुर से दक्षिण की दिशा में जहां नर्मदा बहती है, एक स्थान धुआंधार कहलाता है। नर्मदा का पाट चौड़ा नहीं है। दो पहाड़ उसकी धारा का घेरे हुए हैं। यह दृश्य धुआंधार से ही प्रारंभ हो जाता है एक किनारे पर श्वेत पत्थर की श्रेणी है तो दूसरे पर श्यामल पत्थर की। धुआंधार के समीप ही नर्मदा ने इन पर्वतों के बीच से अपना मार्ग बनाया है। धुआंधार के ऊपर समतल प्रदेश है, जहाँ नर्मदा का प्रवाह तीव्र पर उथला है। जब नर्मदा नीचे गिरती है तब भयंकर शोर होता है और जल के झाग के झाग ऊपर उठते हैं जो धुआंधार का दृश्य उपस्थित करते हैं। मार्ग में एक मन्दिर है जिसमें अनेक मूर्तियां रखी हैं। कहते हैं ये ६४ योगिनियों और वेतालों की मूर्तियां हैं, पर आक्रान्ताओं ने सबके अंग विच्छिन्न कर दिये हैं।

(च) कला सम्बन्धी अन्य प्रमाण

प्राचीनतम ऐतिहासिक मूर्तियों में अजातशत्रु की प्रतिमा परखम ग्राम में मिली थी। यह आठ फीट आठ इंच ऊंची है और मथुरा के संग्रहालय में सुरक्षित है। भास के प्रतिभा नाटक से ज्ञात होता है कि मृत्यु के उपरान्त राज-प्रतिमायें देवकुल में पूजा के निमित्त प्रतिष्ठित की जाती थी। जोधपुर में यह दृश्य आज भी दिखाई देता है राजाओं की समाधियों पर मन्दिर (चैत्य) बने हैं और बीच के मन्दिर में पुजारी प्रतिदिन पूजा करता है अजातशत्रु की मृत्यु ५२५ ई० पूर्व में हुई थी। अजातशत्रु के पौत्र अजउदयी ने पाटलीपुत्र बसाया था। उसकी मृत्यु ४६७ ई० पूर्व में हुई। उसके पुत्र नन्दिवर्धन की मृत्यु ४१८ ई० पूर्व में हुई। दोनों की मूर्तियां पटना के पास मिली जो अब कलकत्ता के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

रायकृष्ण दास ने भारतीय मूर्तिकला नामक ग्रन्थ में इन्हें भावमूर्ति माना है। उन्हीं के शब्दों में उनके रूप में इतनी मानवता है कि ये देवयोनि (या यक्षयोनि) की मूर्तियां नहीं हो सकती। मौर्यकाल में अशोक के स्तम्भ और उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अंकित मूर्तियों की चर्चा हम पीछे कर चुके हैं। दिल्ली, कौशाम्बी, प्रयाग, सारनाथ, लुम्बिनी, सांची, संकिया आदि के स्तम्भ भी अपनी कला के लिये प्रख्यात है। इन स्तम्भों के निर्माण में चुनार के पत्थर का प्रयोग हुआ है, जिसकी घुटाई अथवा उस पर वज्रलेप के प्रभाव ने अद्भुत कान्ति पैदा कर दी है। इन स्तम्भों की ३०-४० फीट की ऊंचाई, हजारों मन की तौल, करने में चढ़ाव उतार की आनुपातिकता, अलंकरण, इनका एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना, गढ़ना और देना, खड़े करना, परगहे बिठाना आदि ऐसे आश्चर्यात्पादक कारीगरी के कौशल हैं जो आजकल के बड़े-बड़े यंत्राधीक्षकों के भी वश के बाहर जान पड़ते हैं।

गया जिले की पहाड़ियों में तैलिया पत्थर को काट कर जो गुफाएं बनाई गई हैं, उनकी दीवारों पर कांच सदृश कान्ति भी उत्पन्न की गई है। वह भी अद्भुत है। अशोक के पौत्र दशरथ ने इन्हीं पहाड़ियों में एक गुफा कटवाई थी जिसे आजकल लोमश ऋषि की गुफा कहा जाता है इसके महरब्बी दरवाजे में हाथियों की कई मूर्तियां बनाई गई हैं जो देखने में अतीव आकर्षक हैं।

कलाकारों में भय असुर का नाम अग्रगण्य है। रावण का लंका भवन मय शिल्पी ने ही बनाया था। युधिष्ठिर ने राजसूयकालीन राजभवन का निर्माण भी एक मय जातीय शिल्पी ने ही किया था। मय किसी के मतानुसार अमरीका का निवासी था और कुछ विद्वान उसे असीरिया (लघु एशिया) का निवासी मानते हैं। संभव है, यह अद्भुत कला बाहर से ही इस देश में आई। कतिपय पौराणिक मूर्तियां जैसे नर-मकर, नर-सिंह, एगज-मकर, मनुष्य पक्षी इसी मय शिल्प की उपज है। मत्स्य-पुराण के अनुसार मन्दिरों के तोरणों पर गन्धर्व मिथुन, सिद्ध यक्ष या अप्सराओं की मूर्तियां होनी चाहिए।

शुंगकाल में आन्ध्र राजवंश ने सह्याद्रि की पहाड़ियों पर कुछ गुफाएं बनवाई जिनमें भाजा (पूना), वेदसा (पूना), पीथलाखोरा (खानदेश) और कौण्डिल्य की गुफायें मुख्य हैं। (भारतीय मूर्तिकला, पृष्ठ ७४) इन गुफाओं का सम्बन्ध बौद्ध धर्म से है, यद्यपि निर्माता राजवंश ब्राह्मण था। उड़ीसा के उदयगिरि और खण्डगिरि में अनेक जैन गुफायें हैं जिनमें से रानी गुफा की गुफा दोतल्ला है और उसके द्वार पर सुन्दर मूर्तियां अंकित हैं। हाथी गुफा नाम की भी एक गुफा है जिस पर खारबेल का लेख खुदा हुआ है। खारवेल जैनधर्म का अनुयायी था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस युग की जो मूर्तियां मिली हैं, उन्हें विद्वानों ने तीन शैलियों में विभक्त किया है : गांधार शैली, मथुरा शैली तथा आन्ध्रशैली। गांधार शैली पर यूनानी प्रभाव की चर्चा कतिपय विद्वानों ने की है, पर ग्रीककला में जो वास्तविकता है, वह गांधार शैली की विशेषता नहीं जान पड़ती है, उसमें भारतीय कला की भाव प्रधानता है। बुद्ध की मूर्तियां इसी युग की बनी हुई हैं। बुद्ध प्रतिमा की पूजा ब्राह्मण तथा जैन मूर्तियों के अनुकरण पर प्रचलित हुई। अतः उसकी मुद्रा विशुद्ध भारतीय है। मथुरा शैली में भरहुत की लोककला तथा सांची की नागरिक कला का सम्मिश्रण है। मूर्तियां भरतपुर के आसपास की खदानों से निकले सफेद चितीवाले लाल रवादार पत्थर की बनी हुई है। बुद्ध प्रतिमायें कुछ पद्मासनस्थ है और कुछ खड़ी है। यक्ष, यक्षिणी आदि की मूर्तियां भी मन्दिरों, विहारों तथा स्तूपों पर बनी हैं। गांधार शैली का कोई प्रभाव इन मूर्तियों पर नहीं है। आन्ध्रशैली में अमरावती की कला भक्तिभावना के लिये प्रख्यात है। बुद्ध के चरण चिह्नों के सामने विनत उपासिकाओं की मूर्तियां भक्तिभाव का उद्रेक करने वाली हैं। आन्ध्रों ने अपने दूत रोम तक भेजे थे। संभव है, उसके परिणामस्वरूप वहां का कुछ प्रभाव आन्ध्रशैली पर भी पड़ा हो। कार्ले और नासिका की गुफायें इसी काल की है। गुफाओं की भीतो पर आन्ध्र वंश के राजा तथा रानियों की मूर्तियां अंकित हैं।

नागवंशी राजा अपने शिर पर शिव की प्रतिमा को वहन करने के कारण भारशिव कहे जाते हैं। भारशिव सम्राट भूवनाग ने अपनी कन्या का विवाह वाकाटक वंशीय अपने सामन्त प्रवरसेन के पुत्र गौतमी पुत्र के साथ कर दिया और अपने दौहित्र रूद्रसेन को राजा बना दिया। ये दोनों वंश शैव थे। अतः इनके समय में अनेक शिव मन्दिर बने जिन पर हिमालय-दृश्यों के चित्र हैं। गुप्तकाल में विष्णु मन्दिरों की अधिकता है जिनमें मूर्तियां भावभरति, गंभीर एवं रमणीय मुद्रा में अंकित की गई है। सागर जिले के ऐरण स्थान का विष्णु मन्दिर दर्शनीय है। भक्तिभाव का एक चित्र सप्त फणयुक्त नागराज की उस प्रतिमा में भी है जो अजन्ता की १९वीं गुफा की द्वार भित्ति पर बनी है। भेलसा के पास उदयगिरि में पृथ्वी का उद्धार करने वाले वराह की मूर्ति है। काशी के पास इसी प्रकार की गोवर्धनधारी कृष्ण की मूर्ति पाई गई थी। ललितपुर के पास देवगढ़ में शेषशायी विष्णु की मूर्ति एक मन्दिर की बाहरी दीवार पर बनी है। गजेन्द्र मोक्ष का दृश्य अंकित करने वाले शिलापट्ट भी मिले हैं। कार्तिकेय की मूर्ति है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का बनवाया हुआ लोहे का लाट जिसे दिल्ली की किल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा जाता है, कुतुबमीनार के पास महरौली ग्राम में खड़ा है। इसका लोहा इतना अच्छा है कि उस पर आज तक मोरचा नहीं लगा।

आठवीं शती में औरंगाबाद के पास वेरूल स्थान में पहाड़ काट कर जो मन्दिर बनाये गये, वे अपने आप में अनुपम हैं। इनमें ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन मन्दिर हैं। कैलास मन्दिर विशालता तथा भव्यता में सबसे बढ़कर है। बिना चूने, मसाले के ऐसे मन्दिर पहाड़ को काट-काट कर कितने धैर्य तथा कौशल के साथ बनाये गये होंगे, इसे अनुभव करते ही अनुमान तथा कल्पना की यथार्थता आगे आकर खड़ी हो जाती है। इन मन्दिरों की भित्तियों पर कुछ दृश्य भी अंकित किये गये हैं, यथा नृसिंहावतार का दृश्य, भैरव की मूर्ति, शिव-पार्वती का विवाह आदि।

बम्बई के पास समुद्र में एक लघुद्वीप है जिसे पहले धारापुरी कहते थे। वहां, संभवतः बस्ती थी। समुद्र की धारा के बीच में पड़ने से उसे धारापुरी कहते होंगे। अंग्रेजों ने इस नाम को बदल कर ऐलीफेण्टा कर दिया। यहां दो पहाड़ियां हैं, जिनके ऊपरी भाग को काट कर मन्दिर बनाये गये हैं। मन्दिरों के स्तम्भ, छत तथा कुछ हॉल अब भी खड़े हैं। कुछ मूर्तियां भी हैं जिनमें योगिराज मूर्ति, जटाजूटधारी महेश्वर की प्रशान्त मुद्रावाली मूर्ति, शिवताण्डव की प्रतिमा उल्लेखनीय हैं। भित्ति पर शिव-पार्वती विवाह का दृश्य भी अंकित है।

दक्षिण में कांची के समीप समुद्रतट पर जो चट्टान हैं, उन्हें काट कर भी मन्दिर बनाये गये हैं। ये मन्दिर रथ नाम से प्रख्यात हैं। ये मन्दिर पल्लव राजाओं के राजकाल में सातवीं शती में बनाये गये थे। इन मन्दिरों में आदि वराह, शेषशायी विष्णु तथा चण्डी की मूर्तियां हैं। एक चट्टान को काटकर भगीरथ तपस्या का दृश्य भी अंकित किया गया है हिमाचल प्रदेश के अन्तर्गत कांगड़ा की घाटी में मसरूर के मन्दिर भी पहाड़ी काट कर बनाये गये हैं जिनमें बैजनाथ का मन्दिर सुन्दर है।

परवर्ती कलाकृति में चन्देल राजाओं के बनवाये हुए खजुराहो के मन्दिर हैं। इनमें कुछ मन्दिरों पर कौलकला प्रेरित अश्लील चित्र हैं। महादेव और विष्णु से सम्बन्धित मन्दिर इसी प्रकार के हैं। जैन मन्दिरों पर ये अश्लील चित्र नहीं हैं। गुजरात में सोमनाथ का मंदिर यवनों द्वारा अपने विध्वंस की कहानी कई बार सुना चुका है। मुसलमान मूर्ति भंजक तो रहे, पर कला को वे भी सराहते रहे। उनकी मस्जिदों में मूर्ति न सही, कला तो इन्हीं मन्दिरों से ली गई हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थान में आबू पर्वत पर दिलवाड़ा ग्राम के समीप दो अतीव भव्य जैन मन्दिर हैं जो धवल संगमरमर पत्थर के बने हुए हैं। इन मन्दिरों की चित्रकारी अद्भुत है। बेलबूटे जाली आदि सब संगमरमर को तराश कर बनाये गये हैं। छतों में नृत्य कला की भाव भंगिमायें सुन्दरता से अंकित की गई है। बीच में लटकता हुआ संगमरमर का झाड़ अपनी अद्भुत आभा छिटका रहा है।

पुरी का जगन्नाथ मन्दिर, कोणार्क का सूर्य मन्दिर तथा भुवनेश्वर के मन्दिर भी प्रख्यात हैं। किसी को नायिका भेद पढ़ना हो, तो इन मन्दिरों को अवश्य देखें। वाममार्गियों के पंचमकार कहां-कहां तक फैल गये थे।

दक्षिण में मदूरा का एक मन्दिर ९८५ खंभों पर टिके अपने मण्डप के कारण प्रसिद्ध है। कर्नाटक में होयशलावंश के एक राजा ने हालेविद स्थान में १२वीं शदी में ऐसा मन्दिर बनवाया जिसमें प्रायः सभी पौराणिक देवी-देवताओं के चित्र उत्कीर्ण हैं। पर अपने अधूरे रूप में यह मन्दिर मुसलिम आक्रमण की बर्बरता को आज भी गुनगुना रहा है।

बिहार में पालवंशी राजाओं के राजकाल में काले पत्थर की अनेक मूर्तियां बनीं, जिसमें भारतकला भवन काशी में सुरक्षित विष्णु की एक मूर्ति है।

मुसलिम काल में महाराणा कुम्भा का बनवाया हुआ, कीर्ति स्तम्भ प्रख्यात है जिस पर अनेक देव मूर्तियों के साथ नक्षत्र, ऋतु आदि काल सम्बन्धी मूर्तियां भी अंकित हैं। अल्लाह शब्द भी अरबी अक्षरों में लिखा हुआ है। अकबर द्वारा निर्मित फतेहपुर सीकरी तथा आगरे के भवन विशुद्ध भारतीय शिल्प के नमूने हैं। दतिया में महाराज वीरसिंह देव का बनवाया हुआ चतुर्भुज मन्दिर भी दर्शनीय है। दक्षिण की मुस्लिम युगीन मूर्तियों के नमूने मद्रास संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

सुदूरपूर्व अनाम, कम्बोज, यव, सुमात्रा, वरुण आदि में भी भारतीय कला के कई मन्दिर मिले हैं जो ब्राह्मण तथा बौद्ध दोनों सम्प्रदायों से सम्बद्ध हैं। इनमें यव द्वीप स्थित बोरोवुदुर का मंदिर अपनी कला के लिये विख्यात है। नवम शतक में यहां के प्रास्वनन स्थान में एक शिवक्षेत्र स्थापित किया गया और ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश तीनों के मन्दिर बनवाये गये। शिव मन्दिर बीच में है। ऐसा प्रतीत होता है कि निर्माता शैव था क्योंकि क्षेत्र के चारों ओर भी अनेक छोटे-छोटे शिव मन्दिर पाये गये हैं। इन मन्दिरों पर राम और कृष्ण के जीवन से भी सम्बद्ध अनेक गाथायें अंकित हैं। इस द्वीप में एक तेरहवीं शदी की बौद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिमा भी प्राप्त हुई है जिसकी शान्तमुद्रा बोधगया के मन्दिर की बौद्ध प्रतिमा से मिलती-जुलती है। सीलोन के सीगिरिया स्थान पर ५वीं शती के अन्त के भीति चित्र अजन्ता के चित्रों की समता करने वाले हैं। कम्बोज के अंगकोरवात मन्दिर के दृश्य चित्र भी इसी प्रकार के हैं।

ऊपर भारत तथा बृहतर भारत की कलाओं पर जो कुछ लिखा गया है, वह वास्तु, मूर्ति तथा चित्रकलाओं के इतिहास का अत्यन्त संक्षिप्त रूप है। वास्तु और मूर्ति तथा वास्तु और चित्र कलायें एक दूसरे के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। वास्तुकला में मन्दिर की गणना है और मन्दिरों में मूर्तियों की स्थापना की जाती है। इसी प्रकार मन्दिरों, भवनों आदि की भित्तियों पर चित्र अंकित किये जाते हैं। अब तक जितने चित्र उपलब्ध हुये हैं, उनमें अजन्ता के भित्ति चित्र कला की दृष्टि से बेजोड़ माने गये हैं। मि० ग्रिफिथ इन्हें इटली के आरम्भिक कला नमूनों के समकक्ष रखते हैं। अजन्ता का कला कौशल वस्तुतः अद्वितीय है। अजन्ता में २९ गुफाएं हैं जिनकी भित्तियों पर चित्र अंकित किये गये थे। काल ने इनका अधिकांश भाग नष्ट कर दिया है। अब केवल कतिपय दीवारों तथा छतों पर अंकित चित्र अवशिष्ट हैं। ये चित्र ४०० से ६०० ई० के बीच वाकाटक तथा चालुक्य राजाओं के संरक्षण में बने थे। चित्र बनाने से पूर्व मिट्टी, गोबर तथा पिसी छर्रियों के मिश्रण का अस्तर दिया जान पड़ता है। उसके ऊपर हल्का सफेद पलस्तर है। फिर उसे चिकना बना कर चित्र अंकित किये गये हैं। चित्रों में सफेद, लाल, हरे और नीले रंग भरे गये हैं। इन भाव भरित चित्रों में जीवन के विविध रूप, जातक कहानियां आदि अंकित हैं। पशु, पक्षी, बेल-बूटे आदि के चित्रण द्वारा इन चित्रों को अलंकृत किया गया है चित्र अत्यन्त स्वाभाविक, सरल, सजीव एवं सानुपातिक है। मुस्लिम कला इस कला के सामने कृत्रिम जान पड़ता है। ग्वालियर के सिंधिया संग्रहालय में, जो गुजरीभवन में स्थित है, मूर्ति तथा चित्रकलाओं के उत्कृष्ट नमूने सुरक्षित हैं। मूर्तियों में शाल भंजिका की हंसती हुई मुद्रा दर्शनीय है। यह मूर्ति विदिशा से कुछ दूर ग्यारसपुर में प्राप्त हुई थी। भारत के बाहर विदेशी प्रदर्शनियों में भी जाकर यह प्रशंसा प्राप्त कर चुकी हैं। बाहर दो सिंहों की मूर्तियां हैं। इनमें दशावतार की मूर्तियां भी खचित हैं। चित्र मुगलकाल से पूर्व के नहीं हैं, पर कला की दृष्टि से सराहनीय है।

ग्वालियर के बाघ ग्राम की गुफा भित्तियों के चित्र, तंजौर के मन्दिरों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र, उड़ीसा तथा गुजरात के ताड़पत्रों वाले चित्र, सीलोन के भीत्तिचित्र, जावा में बोरोबुदुर मन्दिर की मूर्तियां तथा दृश्य चित्र आदि अजन्ता की कला शैली के ही अनुकरण जान पड़ते हैं।

अजन्ता की गुफायें कुछ शुंगकालीन हैं और कुछ गुप्तकालीन। गुप्तकाल कला के विकास की दृष्टि से उत्कृष्ट समझा गया है ये चित्र भी प्रथम चित्रों की अपेक्षा अधिक आकर्षक है। सभी चित्रकला मर्मज्ञ उनकी सराहना करते हैं। सभी चित्रों का प्रारूप (डिजाइन) भिन्न-भिन्न है। रिक्त स्थानों में यक्ष, गंधर्व आदि की मूर्तियां बनी हैं। भाव चित्रों में पद्मणि अवलोकितेश्वर का चित्र और घटनात्मक चित्रों में जातक कथाओं के दृश्य श्लाघनीय हैं। फ्लोरेंस की कला का चित्रण तथा वैनिस की कला की रंगीनी इन चित्रों की भावाभिव्यक्ति के समक्ष निष्प्रभ हैं।

आर्य-अनार्य तथा प्राग्वैदिक-वैदिक तत्त्व

सिन्धुतट-सभ्यता :

अब भी कुछ भारतीय विचारक हैं, जो सोचते हैं कि आर्य भारत के बाहर से नहीं आये हैं और वैदिक धर्म ही भारत का प्राचीनतम धर्म है। परन्तु, अधिकांश विचारक मानते हैं कि आर्य बाहर से भारत में आये और अपने साथ वैदिक धर्म को भी लाये। सम्भवतः वेदों का अंश भारत में आगमन के पूर्व ही विद्यमान था और इस रूप में वैदिक काल का समय निर्धारित करना कठिन है। परन्तु यह भी स्वीकारा जाता है कि आर्यों के आगमन के पूर्व भारत में सभ्य जातियां थी और उनका धर्म भी उन्नत अवस्था में था। इस अर्थ में भारत में प्राग्वैदिक धर्म भी था और अनार्य जातियां भी थी। कम-से-कम यह बात मोहनजोदड़ो, हड़प्पा और चान्हूदाड़ो की खुदाई के बाद स्पष्ट हो गयी है। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा और चान्हूदाड़ो की सभ्यता को "सिन्धुतट-सभ्यता" संज्ञा दी जाती है।

परन्तु, सिन्धुतट की खुदाई के पहले भी श्रमण, परिव्राजक तथा व्रात्य लोग रहते थे और इन्हें भी अवैदिक ही मानना चाहिये। इसी श्रमण-व्रात्य-परम्परा से बौद्ध तथा जैनधर्म का उद्‌गम भी अतिसम्भाव्य समझा जाता है पटना-गया-इलाहबाद, तिरहुत-भागलपुर और मुंगेर को अनार्य देश माना जाता था। गया गयासुर का स्थान था और महाबली जरासंध को भी असुर-राजा कहा गया है साथ ही साथ, महादेव को इन अनार्यों का भगवान माना जाता है ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आभासित होता है कि राजा जनक के पूर्वज भी महादेव के उपासक थे, जिसके धनुष को आर्य राजा राम ने ध्वस्त किया था।

अतः, स्वीकारना होगा कि वैदिक धर्म के अतिरिक्त भी अनार्य धर्म था और उन्नत धर्म था। आर०एन० दाण्डेकर का कहना है कि वर्त्तमानयुगीन हिन्दुत्व में अविद्या, कर्म-सिद्धान्त, आवागमन तथा मोक्ष को धर्म का स्तम्भ माना जाता है और इनके अनुसार इन चारों मूलतत्त्व को अनार्य लोगों से प्राप्त किया गया है फिर, इनका यह भी कहना है कि राम, कृष्ण, विष्णु तथा शिव की पूजा भी अवैदिक है।[१] बल्कि दाण्डेकर ने Some Aspects of the History of Hinduism, 1967 में बताया है कि वर्तमानयुगीन हिन्दुत्व में वैदिक अंश केवल शब्दों में है, न कि इसके सार रूप में। अब कोई विद्वान् दाण्डेकर के मत का समर्थन करे या न करे, परन्तु ऐसा निश्चित मालूम होता है कि प्राचीन भारत में अवैदिक तथा अनार्य धर्म भी था, जिसका रूप गहन और महत्त्वपूर्ण समझा जायेगा। इस वर्तमान युग में न तो "अवैदिक" और न "अनार्य" शब्दों को निन्दात्मक समझना चाहिये।

सिन्धु तट सभ्यता में प्राग्वैदिक तथा अनार्य धर्म का आभास मिलता है। चूंकि सिन्धु तट की खुदाई में जो लिपि मिली है, उसका अभी तक कोई सर्वमान्य अध्ययन नहीं हुआ है, इसलिये मूर्तियों के अवलोकन-मात्र से ही सिन्धु तट धर्म की अटकल लगायी जा सकती है। कम-से-कम तीन मूर्तियां देवताओं की मूर्तियां कही जाती हैं। प्रत्येक मूर्ति में देवता दिगम्बर रूप में योगासन की मुद्रा में दिखाई देता है, जिसकी दृष्टि नाक के अग्रभाग पर टिकी प्रतीत होती है। देवता के शरीर से नवपल्लव भी निकलते हुए दिखते हैं और उनके दाहिनी ओर हाथी और बाघ हैं और बाई ओर गैंडा और भैसा है। अतः, यह देवता योगिराज, लिंगराज तथा पशुपति हैं। अतः, जॉन मार्शल, ई० मैके, मॉर्टिनर व्हीलर तथा अन्य भारतीय विचारक भी, अटकल लगाते हैं कि मूर्ति शिव भगवान की है।[२] यहां उल्लेखनीय बात है कि सिन्धु तट का देवता योगी है और कीथ के अनुसार वेदों में योग की बात नहीं बतायी जाती है।[३] अतः समाधि, योग तथा ध्यान अवैदिक तथा अनार्य का मालूम देता है।

केवल सिन्धु तट की खुदाई से ही नहीं और न केवल बिहार प्रदेश के इतिहास से, परन्तु स्वयं वेदों में उल्लिखित निर्देशों से स्पष्ट होता है कि आर्यों के अतिरिक्त अनार्य भी थे और उनका धर्म अवैदिक कहा जायेगा और वीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योद्धा थे और वे ऐहिक जीवन की सभी प्रकार की अनुभूतियों के प्रति अनुक्रियाशील रहते थे। वे संसारिक धन-सम्पत्ति, पुत्र तथा दीर्घजीवन इत्यादि की कामना रखते थे। वे अपने देवताओं की पूजा इसलिए करते थे कि यज्ञों से प्रसन्न होकर देवता उनकी कामनाओं को पूरा करेंगे। फिर, वे स्वर्ग प्राप्ति की भी कामना करते थे और उनका सिद्धांत था "स्वर्गकामोयजेतृ हव्य:" स्वर्ग-सुख को ऐहिक जीवन का विस्तारण तथा इसकी सम्पूर्णता समझा जा सकता है। परन्तु स्वर्ग प्राप्ति से भिन्न मोक्ष-सिद्धांत है। मोक्ष-सिद्धांत के अनुसार स्वर्ग सुख नश्वर और अल्पकालिक है और फिर इसमें आनन्द-प्राप्ति नहीं हो सकती है। नित्यता प्राप्ति केवल ध्यान अथवा समाधि से ही संभव हो सकती है। फिर, वैदिक धर्म में यज्ञ की प्रधानता मानी गयी है और इसमें अनेक प्रकार के पशुओं की बलि दी जाती थी। इसके विपरीत अवैदिक धर्म में तपस्या, ध्यान, ब्रह्मचर्य तथा ब्रह्मज्ञान के आधार पर मोक्ष प्राप्ति का चरम उद्देश्य माना गया है। बाद में चलकर सेश्वरवादी परम्परा में यज्ञों की बात न करके भक्ति को प्रधान स्थान दिया गया है।[४] अत: ऐसा मालूम देता है कि वैदिक और अवैदिक दो परस्पर विरोधी परम्परायें थी और वे विभिन्न जातियों के द्वारा समादृत होती थी।

स्वयं वेदों में अनार्य जातियों का उल्लेख आता है और उन्हें दस्यु संज्ञा दी गयी है, जिसका अर्थ या तो दास होता है या शत्रु। इन अनार्यों को अग्रज्ञी कहा गया है, क्योंकि ये वैदिक यज्ञों को नहीं स्वीकार करते थे। फिर, इन्हें अनिन्द्र कहा गया है, क्योंकि ये आर्यों के मुख्य देवता इन्द्र की पूजा नहीं करते थे। इन्हें अव्रत अथवा अन्यव्रती कहा गया है, क्योंकि ये अवैदिक व्रतों को मानते थे। इन्हें "शिश्नदेवा:" कहा गया है, क्योंकि ये अनार्य लिंगपूजा करते थे। फिर, वैदिक धर्म में तपस्, योग और समाधि के मानने वाले व्रात्य, मुनि, यति को स्थान नहीं दिया गया है ऐसी भी कथा ऐतरेय ब्राह्मण में बतायी गयी है, जिसके अनुसार इन्द्र ने यति से अप्रसन्न होकर उसे मार डाला और भेड़ियों के आगे उसके मृत शरीर को फेंक दिया।[५]

अभी तक हमने इतना ही भर दिखाया है कि प्राचीन भारत में आर्य-अनार्य तथा वैदिक-अवैदिक दो परस्पर विरोधी धर्म-परम्परायें थी और इस प्रकार की दो विरोधी परम्परायें भारत के पश्चिम और पूर्व के देशों में क्रमश: पायी जाती थी। अभी तक लोगों ने सिन्धु तट सभ्यता का सम्बन्ध बिहार प्रदेश के व्रात्य,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन तथा बौद्ध धर्मों की परम्परा से नहीं जोड़ा है। परन्तु, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अवैदिक सिन्धु तट सभ्यता और बिहार की धर्म परम्परा में बहुत समता है।

१. दोनों में शिव भगवान् की पूजा बतायी जाती है, और
२. दोनों में समाधि, योग और ध्यान की प्रधान साधन माना गया है, जिसके आधार पर मोक्ष प्राप्ति हो सकती है।

सिन्धु तट की सभ्यता का कुछ अधिक सम्बन्ध द्रविड़ देशों से है और बिहार के अवैदिक धर्म से कम है। सिन्धु तट सभ्यता में देवियों को भी स्थान दिया गया है और कम से कम यह बात वैदिक धर्म से नहीं पायी जाती है। फिर, भक्ति की परम्परा अधिक द्रविड़ है और कम सिन्धुतटी है।

यदि समाधि, ध्यान-योग, तपस्या तथा ज्ञान-मोक्ष आदि तत्त्वों पर ध्यान दिया जाय, तो प्रतीत होगा कि ये तत्त्व वैदिक यज्ञ तथा स्वर्ग प्राप्ति के चरम उद्देश्य से अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। अतः वर्तमानयुगीन तथा सनातन हिन्दुत्व में अनार्य और प्राग्वैदिक तत्त्वों की अधिक प्रधानता पायी जाती है और वैदिक परम्परा का अंश कम पाया जाता है इसमें सन्देह नहीं कि आर्य विचारकों ने कालान्तर में उन अवैदिक तत्त्वों को अपने धर्म में स्थान दिया, जिनके प्रति उनकी आस्था जम गयी थी। उसका मुख्य कारण यह था कि योग, ध्यान, तपस्, ब्रह्मचर्य के द्वारा मुनि-यति आदि में अद्‌भुत शक्ति पायी जाती थी और इसी शक्ति को प्राप्त करने के लिए आर्य ऋषियों ने अन्त में अवैदिक निवृत्ति-मार्ग को अपनाया। आर्य और अनार्य परम्पराओं के सन्धि स्थल के रूप में औपनिषदिक विचारधारा को स्वीकार किया जायेगा।

डॉ० आर० एन० दाण्डेकर ने एक ही लेख के एक स्थल पर उपनिषद् को अवैदिक कहा है[६] और फिर, तीन स्थलों पर उपनिषदों को वैदिक कहा है।[७] डॉ० दाण्डेकर ने उपनिषदों को इसलिये अवैदिक माना है कि इसमें गुरु-अन्तेवादी-सम्बन्ध पाया जाता है और इस प्रकार सम्बन्ध वैदिक परम्परा में नहीं पाया जाता है।[८] मेरे मत में डॉ० दाण्डेकर का यह विचार बहुत अधिक बल नहीं रखता है। परन्तु, उपनिषदों को अवैदिक और अनार्य मानने के निम्नांकित युक्तियां हैं :

(क) उपनिषदों में मोक्ष प्राप्ति की बात कही गयी है, न कि स्वर्ग प्राप्ति की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) फिर मोक्ष प्राप्ति समाधि तथा ज्ञान के द्वारा ही सम्भव होती है, न कि यज्ञों के द्वारा।[९]

(ग) परन्तु यहाँ उल्लेखनीय है कि वैदिक परम्परा को प्रवृत्तिमार्गी कहा जायगा और उपनिषदों को निवृत्तिमार्गी बताया गया। कम-से-कम बृहदारण्यक के अधिकतर भाग राजा जनक के तत्त्वावधान में याज्ञवल्क्य के द्वारा रचा गया था और यह रचना तिरहुत देश के अनार्य भाग में सम्पन्न हुई थी।[१०] अतः उपनिषदों को निवृत्तिमार्गमूलक अनार्य परम्परा में गिनना सही मालूम होता है।

परन्तु, डॉ० दाण्डेकर ने उपनिषदों को क्यों वैदिक माना है? डॉ० दाण्डेकर ने अपने मत की पुष्टि में सन्तोषजनक युक्ति प्रस्तुत नहीं की है। परन्तु ए० बी० कीथ के मत को दुहराते हुए उन्होंने कहा कि वेद के पुरुषसुक्त और नासदीय सूक्त में उपनिषदों की पूर्व छाया पायी जाती है और संभवतः इन्हीं स्तोत्रों के फलस्वरूप उपनिषदों की रचना हुई होगी।[११] यह युक्ति छिछली है। इसका कारण है कि स्वयं पुरुषसूक्त तथा नासदीयसूक्त बाद की रचनायें हैं, न कि प्राचीन। संभवतः ये रचनायें उसी समय हुई, जब उपनिषदों का उद्‌गम हो रहा था। अधिक समीचीन निष्कर्ष यह मालूम देता है कि पुरुषसूक्त तथा नासदीयसूक्त के समय आर्य विचारकों ने अनार्य प्राग्वैदिक धर्मदर्शन को अपना लिया था और इसके बाद वे अपनी रचनाओं में भी परिवर्तन लाने लगे थे। यही कारण है कि आर्य विचारक वैदिक देवताओं में ब्रह्म के गुण को खोजने लगे और इस खोज में उन्हें वरुण देवता का ऐसा रूप मिला, जिसे वे ब्रह्म के रूप में परिणत कर पाये। इसी समय से वैदिक-अवैदिक, आर्य-अनार्य परंपराओं ने गंगा-यमुना की धाराओं के समान आपस में मिलकर सनातन हिन्दुत्व का रूप प्रदान किया है।

उपनिषदों की शिक्षा को वेदान्त दर्शन में व्यवस्थित किया गया है और वेदान्त के अनुसार ब्रह्म एक़मात्र परम सत्ता है, जो अपनी माया शक्ति से इस विश्व की रचना करता है इस वेदान्त-दर्शन को ड्युशन की सुझाव को मानते हुए डॉ० दाण्डेकर ने बताया है कि वैदिक देवता वरुण से प्राप्त किया गया है डॉ० दाण्डेकर के अनुसार वरुण को असुर इसलिए कहा गया है कि उसमें आसु का होना बताया जाता है और आसु वह अर्धभौतिक तरल पदार्थ माना गया है, जो संपूर्ण विश्व को छाये हुए है।[१२] फिर, वरुण को मायावी भी कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है, क्योंकि वह अपनी माया के द्वारा संपूर्ण विश्व को संचालित एवं व्यवस्थित करता है।[१३] फिर, वरुण को यक्षिन् अथवा जादूगर भी कहा गया है, क्योंकि उसने विश्व को रहस्मय रीति से उत्पन्न किया है।[१४] अतः डॉ० दाण्डेकर के अनुसार, वरुण धर्म को ही ब्रह्म विचार में परिणत कर दिया गया है और इसी वरुण पूजा से मुक्ति मोक्ष की चर्चा आयी है, ताकि वरुण के पाशों से व्यक्ति को मुक्त किया जाय।[१५]

अब वरुण विचार से ही ब्रह्म विचार की उत्पत्ति हुई है या नहीं, यह अटकल का विषय रहेगा। परंतु, इसमें संदेह नहीं कि अवैदिक निवृत्तमार्ग और वैदिक प्रवृत्तिमार्ग के बीच समन्वय हुआ और इस समन्वय के फलस्वरूप वैदिक विचार में भी क्रांति उत्पन्न हुई। इसमें संदेह नहीं किया जा सकता है कि वैदिक धार प्रवृत्तिमार्ग परम तथा अनेक देवता पूजक थी। परंतु ब्रह्मज्ञान, अर्थात् औपनिषद् धारा के प्रभाव में आकर वैदिक अनेक देवतावाद एकत्ववाद में परिणत हो गया है "एक सत्प्रिया बहुधा वदन्ति" का सूत्र इसी आर्य औपनिषद् शिक्षा के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ। फिर, वैदिक "ऋत" की भावना कर्म सिद्धांत में परिणत हो गयी। परंतु, भगवद्गीता में प्रवृत्ति-निवृत्तिमार्ग का बेजोड़ सम्मिश्रण पाया जाता है वैदिक परंपरा को स्वीकार करते हुए लोकसंग्रह के निःश्रेयस को स्वीकार किया गया है यहां बताया जाता है कि अपने वर्ण के उपयुक्त निर्धारित कर्मों को निष्काम भाव से सम्पादित करने पर व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त होता है।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः। (१८.४५)

फिर कहा है,

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्वजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषण धूमेनाग्निरिचावृता॥ (१८.४८)

(अर्थात्, दोषपूर्ण रहने पर भी अपने वर्ण-धर्म को नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि अग्नि धुएँ से आवृत्त होने पर दोषपूर्ण ही रहती है।) यहां निष्काम कर्म तथा मोक्षसिद्धि में निवृत्तिमार्ग, अर्थात् अवैदिक अंश पाया जाता है और लोकसंग्रह हेतु वर्ण-धर्म को अपनाना प्रवृत्तिमार्ग अर्थात् वैदिक परंपरा का अंश देखा जाता है। अतः भगवद्गीता को हिन्दुत्व का सर्वोच्च धर्म पुस्तक स्वीकार किया जाय, तो इसमें वैदिक-अवैदिक प्रवृत्ति-निवृत्तिमार्ग का सफल समन्वय दिखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक ईश्वरवाद तथा एकत्ववाद :

अभी तक हमने दिखाया है कि एक ओर अवैदिक तथा अनार्य धर्म परंपरा थी, जिसमें तपस्, ब्रह्मचर्य, मोक्ष, अविद्या, आवागमन आदि विशेष रूप से पाये जाते थे और दूसरी ओर आर्य धर्म-परंपरा थी, जिसमें पशुबलि, यज्ञ, स्वर्गप्राप्ति तथा बहु-देवत्व पाया जाता था। सामान्य रूप से अनार्य परंपरा को श्रमणो का अथवा निवृत्तिमार्गियों का धर्म कहा जा सकता है और आर्यों के धर्म को प्रवृत्तिमार्ग, वर्णाश्रम-धर्म आदि नाम से पुकारा जा सकता है, यह ठीक है कि सर्वमान्य हिन्दुत्व में दोनों धाराओं का समन्वय देखा जाता है परंतु इस समन्वय में अवैदिक तथा अनार्य तत्त्व वैदिक तत्त्व की अपेक्षा बहुत अधिक है। इस प्रकरण में बताया जायगा कि धीरे-धीरे वैदिक धर्म में श्रमण परस्पर तथा निवृत्तिमार्ग अथवा ज्ञान मोक्ष के निःश्रेयस का स्थान बढ़ता गया। वैदिक ईश्वरवाद का विकास हुआ और अंत में समाधिमूलक अवैदिक धर्म के प्रभाव में आकर वैदिक धर्म का विकास एकेश्वरवाद Monotheism की ओर न होकर एकत्ववाद में परिणत हो गया। बाद में चलकर हम देखेंगे कि एकत्ववाद में निरीश्वरवाद की झलक पायी जाती है और यह भी आश्चर्य की बात नहीं हैं, क्योंकि समाधिमूलक धर्म में तर्कसंगत रूप से ईश्वर की आवश्यकता नहीं पड़ती। मानव अपने ही प्रयास से तपस्या एवं समाधि के द्वारा अपनी मुक्ति प्राप्त कर सकता है। यही कारण है कि अवैदिक परंपरा से उत्पन्न जैन और बौद्ध मतों में ईश्वर का स्थान नहीं दिया गया है अब हम लोग वैदिक धर्म विकास में बहुदेवतावाद, ईश्वरवाद और एकत्ववाद का अनुक्रमिक अध्ययन करेंगे।

बहुदेवतावाद :

अनेक विचारक वैदिक धर्म को बहुदेवतावादी मानते हैं। आर्यों ने प्रकृति में पायी गयी शक्तियों को देवता का रूप दिया है और उन्हें यज्ञादि से प्रसन्न कर वे संतान, दीघार्यु, गो-धन तथा स्वर्ग प्राप्ति की कामना करते थे। इनके धर्म-विचार में नररूपीकरण स्पष्ट दिखता है। परंतु, देवताओं के आह्वान करने के बाद उन्हें देवताओं की उपस्थिति को सबल अनुभूति हुआ करती थी। प्रायः वे देवताओं का आह्वान कर उन्हें कुश का आसन देकर आचमन के लिये जल देते थे, तब देवताओं की पूजा करके उनका विसर्जन करते थे। ये सब बातें ठीक इसी रूप में होती थी, जिस प्रकार बाइबिल में याहवे अदन की वारी में आदम से बातचीत करता था। फ्रॉयड ने बताया है कि प्राकृतिक घटनायें मानव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये कटु और असह्य होती है। वह मानव जीवन के प्रारंभ में आज की अपेक्षा और भी अधिक निर्बल और असहाय था। वह इन प्राकृतिक प्रकोपों का साक्षात् सामना नहीं कर सकता था। अतः मानव ने सर्वप्रथम इन प्राकृतिक शक्तियों को नररूप में देखा, उनकी पूजा कर उन्हें प्रसन्न करने का प्रयास किया। सत्य है कि देवताओं की पूजा से प्राकृतिक प्रकोपों पर अधिकार नहीं हो सकता है, परंतु फॉयड के अनुसार, मानव को इससे दुःख-वहन करने में मनोवैज्ञानिक संतोष मिल जाता है यही बात योद्धा, वीर, देश-विजयी आर्यों के लिये भी कही जा सकती हैं।

पहले देवताओं की संख्या ३३ बतायी जाती थी। बाद में ऋग्वेद ३.९.९ में बताया गया है कि देवताओं की संख्या ३,३३९ है। इन देवताओं का द्युस्थान, अंतरिक्षस्थान तथा पृथ्वीस्थान के अनुसार विभिन्न वर्गों में बांटा जा सकता है। वरुण, मित्र, सूर्य आदि को द्यौ निवासी कहा गया है-इंद्र, रूद्र, मरुत् आदि को अंतरिक्ष निवासी और अग्नि, सोम आदि को पृथिवी निवासी कहा गया है आर्य धर्म के प्रारंभिक काल में देवियों की संख्या और उनका महत्त्व बहुत कम था। इसलिये माँ दुर्गा, काली तथा शक्ति की उपासना को अनार्य समझा जाता है।

आर्य योद्धा थे और वे सुखप्रिय थे। उन्हें संसार विजेता होना और पृथ्वी का भोग करना प्रिय था। स्वर्ग की कामना भी इसी सांसरिक सुख-प्राप्ति के हेतु की जाती थी। इसकी प्रतिध्वनि गीता में भी देखी जाती है :

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्ग जित्वा वा मोक्ष्यसे महीम्। –गीता, २.३७

(मरने पर स्वर्ग प्राप्ति और जीतने पर पृथ्वी, का भोग मिलेगा।)

संसार-विरक्ति, तपस् संन्यास वैदिक धर्म का परम लक्ष्य नहीं था। फिर, युद्ध-नीति को छोड़कर योद्धाओं में नैतिक मूल्यों का विशेष आदर नहीं होता है यही बात वैदिक देवताओं के संबंध में देखी जाती है। आर्य योद्धाओं के प्रमुख देवता इंद्र हैं। इंद्र देवता महाबली है और शत्रुओं का दमन करते हैं। वे दस्यु और संभवतः हड़प्पा के अनार्य राजा वृत्रासुर के दमन करने वाले माने गये हैं। परन्तु, वे उषा को मलिन करने से नहीं हिचकते हैं (२.१५-६), मरुत के साथ झगड़ बैठते (१.१७०-२) और सूर्य के साथ रथ की की दौड़ में झगड़ते हुए पाये जाते हैं। इसी प्रकार अग्नि, सूर्य तथा इंद्र पितृघातक भी बताये जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरवाद :

परंतु भारत विजय के बाद आर्य संगठित समाज में रहने लगे। उनमें नैतिकता की आवश्यकता होने लगी। ऐसी स्थिति में वरुण की पूजा महत्त्वपूर्ण प्रतीत होने लगी। बूके,[१६] ग्रिस्वोल्ड[१७] तथा मैक्डॉनल प्रभूति[१८] विचारकों ने बताया है कि वरुण देवता को वास्तव में सर्वोच्च सत्ता मानना चाहिये। वरुण देवता धर्म प्रिय, न्यायप्रिय, दयावान् तथा महापवित्र माने जाते हैं। वे पश्चात्ताप करने वालों का पाप क्षमा करते हैं।

ऋग्वेद : २५ (वरुण) :

(कुछ पद्यों का स्वच्छन्द हिन्दी अनुवाद)

मानव होने के हेतु हम तुम्हारें अनुष्ठानों का प्रतिदिन उल्लंघन करते हैं (१), तुम मुझे मृत्यु को नहीं सौंप दो, मुझ पर क्रोध न करो (२)। हे वरुण! तुम उड़ने वाले पक्षियों के आकाश मार्ग और समुद्र के नौका मार्ग के पूर्ण ज्ञाता हो (७)। धोरव्रती, सुन्दर, प्रज्ञावान् वरुण साम्राज्य संचालन के हेतु विराजमान दिखाई देते हैं (१०)। भविष्य की सभी घटनाओं को वरुण जानते है (११)। हे वरुण! मेरे आह्वान को सुनों मुझ पर अनुग्रह करों। हे मेरे रक्षक! मैने तुम्हारा आह्वान किया है (१९)। तुम आकाश और पृथ्वी के स्वामी हो। तुम हमारी पुकार का प्रत्युत्तर करो (२०)। हे वरुण! ऊपर के पाश को हटाओ, बीच के पाश को काटो और नीचे के पाश को हटाकर जीवन प्रदान करो (२)।

भक्ति के रूप में भी वरुण की स्तुति की गयी है। ७ : ८९-३ में लिखा है कि "समुद्र में रहकर भी मुझे प्यास लगी है। पाप क्षमा की याचना वरुण-पूजा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

"हे वरुण! हम तुम्हारे स्तोता है। हमें पाश से मुक्त करो। हमें तुम्हारा संरक्षण प्राप्त हो, और तुम हमारा पालन करो।" (७: ८८-१०)

हे वरुण! हम मानवों से जो देवताओं के प्रति अपराध हुआ है या अज्ञानवश तुम्हारे प्रति कर्त्तव्य-पालन में जो त्रुटि हुई है, उन पापों के कारण हमारा विनाश न करो।" (७: ८९-११)

"पाप" संज्ञा ईश्वर की महान् पवित्रता के प्रति त्रुटि के निमित्त दी जाती है। अतः आर्य भक्तों में नैतिक गहराई और पवित्रता का भान स्पष्ट झलकता है। इस प्रकार की धार्मिक अनुभूति यहूदियों में बहुत बाद में पायी जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः वैदिक पुजारियों में अनुभूति की गहनता देखने में आती है। फिर, नश्वर शरीर धारण के प्रति विमुखता दिखती है (७: ८९-१) इसमें मुक्तिमार्ग की पूर्वछाया प्रतीत होती है।

वरुण सृष्टिकर्त्ता है और "ऋत" के द्वारा इस विश्व का संचालन करते हैं। इस ऋत को विश्वजनीन नैतिक विधान समझना चाहिये, जिसके अतंर्गत मनुष्य और देवता सभी चले आते हैं। वरुण को सर्वद्रष्टा माना गया है, क्योंकि उनकी दृष्टि से छिपकर कोई भी बच सकता है।

अटकल लगाना बहुत कठिन है कि कालक्रम में इस नैतिक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, दयालु, पतितपावन ईश्वर का प्रत्यय क्यों विलीन हो गया। यदि वरुण की पूजा जारी रहती, तो संभवतः इस पूजा से शुद्ध एकेश्वरवाद की भावना विकसित होती। परंतु, बार-बाद आर्य ऋषियों में एकेश्वरवाद के रूप में अन्य देवताओं का भी विकास हुआ। उनमें विश्वकर्मन्, हिरण्यगर्भ तथा प्रजापति उल्लेखनीय देवता हैं। ऋग्वेद १०: ८२ में बताया जाता है कि विश्वकर्मा ही आदि में थे और तब उन्होंने आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की और तब अन्य देवता उत्पन्न हुए। शक्तिमान् विश्वकर्मा ही इस विश्व के रचयिता और पालक हैं।

विश्वकर्मा ने आकश पृथ्वी की रचना की (१)। वे सर्वद्रष्टा, सर्वश्रेष्ठ और सबके निर्माता है (२) सभी देवता, इन्द्रादि जल-गर्भ में रहते हैं और वह गर्भ द्वारा विश्वकर्मा धारण किये हुए है (६) विश्वकर्मा आकाश पृथ्वी, राक्षस तथा देवताओं से पूर्व हैं। (५)

इसी प्रकार, विश्वकर्मा को विश्व का सृष्टिकर्त्ता के रूप में १०:८१ में माना गया है : "विश्वकर्मा के नेत्र, मुख, भुजा और चरण सब ओर है:..... वे विश्वकर्मा एक है" (३)।

परंतु, हिण्यगर्भ जिसे प्रजापति भी कहा गया है, सर्वोच्च ईश्वर माना जा सकता है। प्रजापति के विषय में कहा गया है कि आदि में उसने देवता और असुर की उत्पत्ति की। फिर, ऋग्वेद १०:१२१ में बताया है कि हिरण्यगर्भ ने ही आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की है और सभी प्राणियों पर यह एकमात्र प्रभुता करता है उसे छोड़कर कोई अन्य देवता हवि का भागी नहीं हो सकता है। प्रत्येक पद्य के अन्त में पूछा जाता है "कस्मै देवाय हविषा विधेम" अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस देवता को हवि अर्पण करें? अतः इसका उत्तर होता है "कि किसी भी अन्य देवता को, हिरण्यगर्भ को छोड़कर, हवि नहीं अर्पित किया जा सकता है; सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए.....उन्होंने आकाश और पृथ्वी को स्थिर किया" (१) "जिन्होंने सभी प्राणी को शरीर और बल दिया है और जिनकी आज्ञा का सभी देवता पालन करते हैं और जिनकी छाया में अमरत्व और मृत्यु है, उन्हें छोड़ जिन्हें हवि अर्पित करें (२)? "जो देवताओं के भी देवता है (८)"। "वह जो सभी पर प्रभूता करते हैं (१०)।

परंतु, ईश्वरवाद में रूप में ऋग्वेद (१० : ९०) को प्रमुख माना जाता है इस पुरुषसूक्त में बताया गया है कि ईश्वर विश्व में अंतवर्त्ती भी है और फिर विश्व से अतीत भी है (१० : १, ३), फिर इस पुरुषसुकृत में ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र की उत्पत्ति बतायी गयी है (१०:११-१२)। पुनः इसी सुक्त में ईश्वरवाद के साथ सर्वेश्वरवाद की भी ध्वनि मिलती है।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रापात्।
स भूमि विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठइशाङ्गुलम्॥ (१)
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ (२)
एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ (३)

पुरुष के सहस्र सिर, पैर, आंख हैं। वह पृथ्वी को ढककर भी दस उंगली इससे अतीत है। जो कुछ है, वह सब पुरुष ही है। वह भूत और भविष्य भी है। वह इस अमर विश्व का पालक है और जो दिव्य भोजन से जगत् का अतिक्रमण करता है पुरुष इन सब जगत् से श्रेष्ठ है। यह ब्रह्माण्ड इनका एक पगमात्र है तथा इनके तीन पग स्वर्गलोक में हैं।

इस विराट् पुरुष के मन्थन से विभिन्न जातियां उत्पन्न हुई :

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् वाहू राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्वैस्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

अब प्रश्न होता है कि क्या वैदिक देवतावाद में एकेश्वरवाद का स्थान है? एकेश्वरवाद दस धर्म दर्शन को कहा जाता है, जिसके अनुसार केवल एक ही ईश्वर है और उसकी तुलना अन्य सभी देवी-देवता हीन तथा काल्पनिक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध रूप में एकेश्वरवाद केवल यहुदियों, ईसाइयों और मुसलमानों में पाया जाता है इन व्यक्तियों के अनुसार केवल एक ही ईश्वर सत्य है और सभी देवी-देवता अवास्तविक है। हिन्दुत्व में इस प्रकार का एकेश्वरवाद प्रमुख रूप में नहीं माना गया है कहीं-कहीं कुछ पन्थों में अपने इष्ट देवता को लोगों ने एकमात्र ईश्वर की संज्ञा दी है। परंतु, इसे अपवाद कहा जायेगा, न कि साधारण दावा। हिन्दुत्व में देवी-देवताओं की सापेक्षतः, अनेकता और विविधता मानी गयी है, जिसके आधार पर भारत में धर्म-सहिष्णुताः, का भाव हजारों वर्षों से बना रहा है देवी-देवताओं की सापेक्षता का सिद्धांत हिन्दुत्व के सर्वेश्वरवाद तथा एकत्ववाद से निस्सृत होता है, जो हिन्दुत्व का प्रमुख धर्म विचार है।

एकत्ववाद :

इसमें संदेह नहीं कि अनेक देवताओं के स्तुतिगान में एकेश्वरवाद की ध्वनि मिलती है। परंतु, शुद्ध एकेश्वरवाद नहीं दिखाई पड़ता है। वरुण देवता अहुर मज्दा तथा याहवे के समकक्ष गिने जायेंगे, तो भी क्यों नहीं एकेश्वरवाद की उत्पत्ति हुई? सर्वप्रथम, प्रत्येक जाति की अपनी प्रतिभा होती है। पाश्चात्य देशों में एकेश्वरवाद हुआ, तो भारत में सर्वेश्वरवाद। दोनों के अपने-अपने महत्त्व हैं। परन्तु, ऐसा आभासित होता है कि अनार्य तथा अवैदिक धार्मिक चिंतन से ही आर्यों का धर्म-विचार एकत्ववाद की ओर झुका। कम-से-कम औपनिषद् विचारधारा में एकत्ववाद बड़ा स्पष्ट मालूम देता है और विशेषज्ञों का मत है कि औपनिषद् विचार और अंतिम वैदिक सूक्त लगभग एक ही काल के है।[११] ऐसी अवस्था में वैदिक चिंतन को औपनिषद् विचारधारा से प्रभावित होना स्वाभाविक था। बात यह है कि औपनिषद् काल में योग, समाधि तथा ध्यान के प्रमुख हो जाने पर, उपासना के स्थान पर निर्वैयक्तिक परम सत्ता का साक्षात्कार करना उपरिहार्य हो जाता है और ऐसी अवस्था में ईश्वरवाद के स्थान पर सर्वेश्वरवाद तथा एकत्ववाद का प्रादुर्भाव होना स्वाभाविक मालूम देता हैं। परंतु इस एकत्ववाद के विकास में भी क्रम दिखाई देता है।

मैक्समूलर ने विकल्पेश्वरवाद का सिद्धांत प्रस्तुत किया है। इस हेनोथीज्म या कैथेनोथीज्म के अनुसार बारी-बारी से किसी भी प्रमुख देवता को सर्वोच्च मानकर ही पूजा की जाने लगी, ताकि अंत में कोई एक देवता एकमात्र ईश्वर का स्थान ग्रहण कर लें। इस रूप में इंद्र, अग्नि, पुरुष इत्यादि को देवताओं का देवता कहा गया है (ऋग्वेद १० : ७९-१, अग्निः १० : ९०-८, पुरुष;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०:१२८-७ इंद्र)। परंतु कीथ और मैक्डॉनल मैक्समूलर के विकल्पेश्वरवाद के मत को नहीं स्वीकार करते हैं।[२०] इन वैदिक विद्वानों के अनुसार पूजा की बेला में किसी देवता से अभिभूत होकर उस क्षण में उसे सर्वोच्च मानना अथवा "देवताओं का देवता" पुकारना केवल प्रशस्ति-प्रकाशन है, न कि कोई स्थिर दार्शनिक विचार। कीथ और मैक्डॉनल का ही मत सही मालूम देता है; क्योंकि अंत में वैदिक धर्म चिंतन में एकेश्वरवाद का विकास न होकर एकत्ववाद की ही स्थापना होती है। इस एकत्ववाद के अनुसार सभी देवता एक ही परम सत्ता के विभिन्न अंग हैं। इस एकत्ववाद की दिशा में प्रगति होने के क्रम में विश्वेदेवा: के प्रति लगभग ४० सूक्तों का प्रणयन किया गया है।

ऋग्वेद ५.२६.१, ३ में अग्नि का आह्वान किया जाता है, ताकि वह सब देवताओं को यज्ञ में लायें। फिर, ५.२६-८ में बताया गया है देवताओं को हवियां अग्नि के द्वारा पहुंचायी जाती है। पुनः आपः को सम्बोधन कर (७.४९) जल देवता के द्वारा वरुण, सोम, तथा विश्वेदेवा का आह्वान किया जाता है अपितु ८.३०.२.४ में बताया गया है कि तैंतीस देवता है, जो स्तुत्य हैं और जो शत्रुओं के भक्षक है तथा सभी देवताओं से एक साथ कुशासन ग्रहण करने की प्रार्थना की जाती है। यहां मैक्डॉनल का कहना है कि किसी भी देवता को ईश्वर का स्थान नहीं दिया जा सकता है, परंतु बारी-बारी से एक को दूसरे के अधीन माना जाता है। अंत में, हम देखते है कि वेदों में एकत्ववाद की विजय हो जाती है। अग्नि का आह्वान कर ऋक् ५:३-१ में कहा गया है कि जन्म के समय अग्निदेवता वरुण का रूप, समृद्ध होकर मित्र का रूप और यजमान के लिए इन्द्र का रूप धारण करता है पुनः विश्वेदेवा: का आह्वान कर ऋक् १०.११४.५ में कहा गया है कि ईश्वर रूप पक्षी एक ही है, परंतु विप्र लोग उसे अपने दृष्टिकोण से विभिन्न समझते है, विभिन्न छन्दों से उसकी उपासना करते हैं और द्वादश सोमपात्रों को स्थापित करते हैं। अंत में, परम सत्ता देवताओं का रूप न धारण करके निर्वैयक्तिक सत्ता का रूप ले लेती है, जिसे ऋग्वैदिक सूक्तों में (१०.१२९) सबसे महत्वपर्ण नासदीय युक्त कहा गया है।

१. न असत् था और न सत् और न व्योम से परे कुछ था उस गंभीर गहन जलगर्भ में क्या था?
२. न अमरता थी और न मृत्यु। रात और दिन भी नहीं थे। ब्रह्मात्र श्वासहीन रहते हुए श्वास छोड़ते थे। इनके अतिरिक्त और कुछ नहीं था।
३. अन्धकार अन्धकार से आच्छदित था और घोर गर्त्त था....।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. तब सृष्टि की इच्छा उत्पन्न हुई और गर्भ बीज उत्पन्न हुआ। विप्र बुद्धि के द्वारा सत् को असत् से उत्पन्न कल्पित करते हैं।

५-६. प्रकृति के तत्त्व का कौन उल्लेख कर सकता है? इसके आधार में क्या था? देवगण भी सृष्टि के बाद उत्पन्न हुए, तब कौन जानता है कि सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई?

७. इस सृष्टि का रचयिता दिव्यधाम में रहता है। वही इसकी रचना जानता है। यह भी संभव है कि उसे भी इस सृष्टि का गर्भ ज्ञात नहीं हैं।

क्यों ज्ञान नहीं हैं? क्योंकि परम सत्ता व्यक्तित्त्वपूर्ण ईश्वर नहीं, संभवतः निर्वैयक्तिक सत्ता है, जिससे सभी वस्तुयें निस्सृत हुई हैं। मानव और देवता सभी उसी एक ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं, परंतु वह सबसे परे, बुद्धि और ज्ञान से अतीत हैं।

अतः वैदिक धर्म-चिंतन अंत में समाधिमूलक औपनिषद् धारा में विलीन हो जाता है धीरे-धीरे पशु-यज्ञ की प्रथा भी कम होने लगी और लोगों में सद्भावना भी जगी। निम्नांकित पद सभी भारतीयों को कर लेना चाहिये :

सड़च्छावं संवदेवं स वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्व सञ्जानाभा उपासते।।
समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

इसका भाव है: सब मनुष्य भली-भाँति मिलकर रहें, प्रेम से एक-दूसरे से वार्त्तालाप करें, सबके मन में एकता का भाव हो और वे अविरोधी ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार विप्र ईश्वर का ज्ञान प्राप्त कर उसकी उपासना करते हैं, उसी प्रकार सभी कोई ज्ञान और उपासना में दत्तचित हों। सब संकल्प एक समान हो और परस्पर सहयोग प्राप्त हो।

संदर्भ

१. *Asura Varuna*, Annual BOR Institute, Vol. XXI, 1941, *Rudra in the Vedas*, J. of the University of Poona, 1953; *Man in Hindu Thought*, BOR, Vol. XLIII, 1963.

२. J. Marshall, *Mohenjodaro and Indus Civilization*, Vol. I, pp. 52-55;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Arthur Probsthain, London, 1931; E. Mackay, *The Indus Civilization*, Lovat Dickson and Thompson, Ltd. 1935, p.71; Mortimer Wheeler. *The Indus Civilization*, Supplementary volume to The Cambridge History of India, 1953; pp. 79-80.

३. A.B. Keith, *Religion and Philosophy of the Veda*, Vol. II, p. 401.

४. R.N. Dandekar, *Some Aspects of the History of Hinduism*, p. 109.

५. ऐतरेय ब्राह्मण, अध्याय ७.२८.१; तैतिरीय संहिता २.४.९.२ : ६.२.७.५; ताण्ड्य ब्राह्मण, १४.२.२८.१.९.

६. *Some aspects of the History of Hinduism*, p. 79n.

७. वही, पृ० ८५, ८७, ९०.

८. वही, पृ० ७९.

९. रानाडे के अनुसार अधिकांशतः उपनिषदों ने वैदिक वशों का विरोध किया है।

१०. *Bihar though the ages*, p. 121.

११. वही, पृ० ५३.

१२. R.N. Dandekar, *Asura Varuna*, Annual of BOR Institute, Vol. XXI, 1941, pp. 23-24.

१३. वही, पृ० २५.

१४. वही, पृ० २६.

१५. वही पृ० ३४. फिर इसी बात को डॉ दण्डेकर ने Proceedings of the IXth International Congress for the History of Religions, Tokyo, 1958, p. 673 में कहा है।

१६. A.C. Bouquet, *Hinduism*, Hutchinsons Univ. Lib., 1948, pp. 30-31.

१७. H.D. Griswold, *The Religion of the Rigveda* (Humphrey Milford) 1923, Chap. V, Sec. V.

१८. A.A. Macdonell, The Vedic Mythology, p. 3.

१९. V. Raghavan, *The Indian Heritage*, The Indian Institute of World Literature, Third edition, 1963, p. XXXII.

२०. A.B. Keith, वही, पृ० ८९; A.B. Macdonell, वही, पृ० १६.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय : अष्टम

आधुनिक युग में वैदिक संस्कृति का विकास एवं उसके परिवर्तित स्वरूप

ब्राह्य संस्कृतियों के साथ संपर्क, इस्लाम

भारतीय संस्कृति में भारत के बाहर की अनेक संस्कृतियों की धारणाओं का मिश्रण हुआ है। इस्लाम के आगमन के पूर्व जो मानव समूह विदेशी संस्कृतियों को लेकर आए वे सब यहाँ की संस्कृति में घुल-मिलकर एक हो गये। मध्य एशिया तथा पश्चिम एशिया से अनेकों मानव-प्रवाह आए, प्राचीन ईरान के साम्राज्य से सम्पर्क स्थापित हुआ। भूमध्य समुद्र के आसपास के तथा मेसोपोटेमिया के प्राचीन राष्ट्रों के साथ आदान-प्रदान चलता रहा। सिकन्दर के आक्रमण के उपरान्त युनानी संस्कृति से साक्षात सम्बन्ध की स्थापना हुई। भारतीय ज्योतिष तथा मूर्तिकला इस संबंध की स्मृति को सजग करते हैं। जब भारतीय संस्कृति इन संस्कृतियों के सम्पर्क में आई तब जो संघर्ष हुआ होगा उसका नामोनिशाँ भी नहीं मिलता; यह संभव है कि संघर्ष ही न हुआ हो। इस्लाम के आगमन के समय तक भारतीय संस्कृति ने अपने सामाजिक प्रपंच को पौराणिक संस्कृति के रूप में सुरक्षित रखा।

इस्लाम के आक्रमण काल से ही भारतीय संस्कृति अथवा हिन्दू संस्कृति की दुबर्लता के चिह्न दृग्गोचर होने लगे। इस्लाम के प्रथम आक्रमण के आघात के कारण ही बौद्ध धर्म नामशेष हो गया। इस्लाम के आक्रमण से यह स्पष्ट हुआ कि श्रुतियों, स्मृतियों तथा पुराणों की छत्रछाया में पली हुई हिन्दुओं की समाज संस्था राजनीतिक दृष्टि से अतीब दुर्बल है। राजनीतिक दृष्टि से ग्राम संस्था ही हिन्दुओं की महत्त्वपूर्ण संस्था थी; परंतु ग्रामों तथा नगरों में जन्म सिद्ध ऊंच-नीच की श्रेणियों पर आधारित विद्यमान जाति संस्था हिन्दुओं की राजनीतिक दुर्बलता की परिचायक सिद्ध हुई। जन्म सिद्ध ऊँच-नीचता की दृढ़ मूल भावना के कारण हिन्दुओं की समाज-रचना में सामाजिक एकरूपता का विकास कभी न हुआ। अतएव विदेशी आक्रमणों के विरोध में समूची शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ, तन-मन-धन से आन्दोलन करने की स्वाभाविक प्रेरणा बड़े ही धुंधले रूप में विद्यमान रही। गजनी के महमूद ने पंजाब और सिंध को लांघकर सौराष्ट्र के एक छोर पर विद्यमान सोमनाथ के पवित्र मंदिर का विध्वंस किया और वे उसके विशाल वैभव को लूटकर चले गए। सत्तरहवीं शताब्दी तक मुसलमानों ने कुल मिलाकर चार बार सोमनाथ के मंदिर का विध्सस किया। इससे यह सिद्ध हुआ कि हिन्दुओं की समाज रचना राजनीति के सामर्थ्य को बढ़ाने में अत्यंत असमर्थ है। सोमनाथ के जीर्णोद्धार पर आलोचना करते हुए एक मार्मिक इतिहासज्ञ ने हाल ही में कहा कि जो देवता अपना तथा अपने वैभव का रक्षण नहीं कर सकते, उनका हम जीर्णोद्धार भी क्यों करें? उनका यह कहना सचमुच बड़ा ही सूचक एवं अर्थपूर्ण है।

मुसलमान विजेता अपने साथ कुछ लोगों को ले आए थे। राजनीतिक दृष्टि से शिथिल हिन्दू समाज के अंतरंग में प्रवेश करके मुसलमान विजेताओं ने शिल्पकारों के समूहों को बलात् भ्रष्ट किया। मुसलमान राज्यकर्त्ताओं ने इस बात को भली-भांति पहचाना था कि हिन्दुओं के सामाजिक जीवन से एकरूप हुए बिना उनका शासन यहां चिरकाल तक बना नहीं रह सकता। परन्तु हिन्दू समाज में जातिभेद इतना दृढ़मूल हो चुका था कि विदेशियों के लिए सामाजिक एक रूपता से लाभान्वित होना सुतराम् असंभव था। अतएव हिन्दू समाज के कुछ अंशों को लालच दिखाकर और जहां लालच से काम नहीं होता था वही बल का प्रयोग करके वे उन्हें मुसलमान धर्म की छत्रछाया में ले आए। हिन्दू समाज में शिल्पकार जातियों के शूद्र याने सबसे हीन वर्णीय माना जाता है, मुसलमान धर्म में प्रवेश करके उन्हीं को राज्यकर्ताओं के समान ही स्थान प्राप्त होने लगा। इसीलिए धर्मपरिवर्तन उन जातियों को तुरंत ही सम्मत हुआ। इस्लाम धर्म में धार्मिक समता का पालन बड़ी सचेष्टता के साथ किया जाता है अतएव हिन्दू समाज की जिन जातियों के लोगों ने इस्लाम धर्म की दीक्षा स्वीकार की उनको धार्मिक समता के खुले वायुमण्डल ने अपने वश में कर लिया। जिन्होंने धर्म परिवर्तन किया वे अधिक कट्टर मुसलमान बने। मुसलमानों के आक्रमण के काल में तथा उनके स्थिर शासन में कई बार धर्म परिवर्तन के आन्दोलन को एक आँधी का, एक तूफान का रूप प्राप्त होता था। धर्म परिवर्तन के कारण मुसलमान राज्यकर्त्ता भारतवर्ष में अपने अनुकूल सामाजिक समूह को प्राप्त कर सके, उसके आधार को प्राप्त करने में समर्थ हुए।

इस्लाम के दीर्घकालीन शासन के कारण भारतीय समाज दो विभागों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाजित हुआ। सामाजिक दृष्टिकोण से दुर्बल हिन्दू धर्म इस्लाम को पचाने में असमर्थ हुआ; वह उसे आत्मसात् न कर सका। तीव्र सामाजिक विषमता, शिल्पकार वर्ग को प्रदत्तहीन स्थान तथा प्रबल राजनीतिक संगठन का अभाव इन तीन कारणों से हिन्दू धर्म को इस्लाम के सामने परास्त होना पड़ा।

भारतवर्ष की संस्कृति को अरबी, ईरानी, तुर्की तथा मुगलों की संस्कृतियों ने भी प्रभावित किया। इन संस्कृतियों को मुसलमान शासनकर्त्ता अपने साथ लाए थे। अरबी, तुर्की, पारसी तथा मुगली शब्द और मुहावरे हमारी प्रांतीय प्राकृत भाषाओं में प्रविष्ट एवं दृढ़मूल हुए। पोशाक, आहार, घरों की सजावट की वस्तुएं, राज्यों का व्यवहार, न्यायालय आदि में मुसलमानी बातों ने प्रवेश पाया। साधारण जनता के धार्मिक आचारों में मुसलमानों के आचारों का प्रवेश हुआ। हिन्दू साधुओं तथा फकीरों का, समाधि तथा पीरो कों, यात्राओं तथा उसी को हिन्दू जनता से समान मान देने लगी। कबीर, नानक, दादू आदि संतो में हिन्दू धर्म तथा इस्लाम दोनों की विचारधाराओं का समुचित मेल होकर भारत में उनको विभूतिमत्व प्राप्त हुआ। हिन्दु तथा मुसलमान दोनों एक ही जगह हेल-मेल से रहने लगे और दोनों की संस्कृतियों में सहयोग की भावना तथा सहिष्णुता का जन्म हुआ। धार्मिक सहिष्णुता की स्थापना में कुछ मुसलमान राज्यकर्ताओं ने स्वयं नेतृत्व किया, परन्तु फिरोज तुगलक तथा औरंगजेब धार्मिक असहिष्णुता में चरम सीमा तक पहुंचे।

हिन्दुओं की मूर्तिकला, वस्तुकला तथा चित्रकला पर प्रचण्ड प्रहार करके मुसलमान राज्यकर्ताओं ने हिन्दुओं के मन को सदा के लिए क्षत-विक्षत किया है। नष्ट कला के अवशेष हृदय को द्रवित करने वाली क्रूरता एवं बबर्रता को सूचित करते रहते हैं। परंतु यह भी सत्य है कि हिन्दुओं की वास्तुकला ने मुसलमानों के राजत्वकाल में मुसलमानी वेष का स्वीकार करके अपनी दिव्यता को और अधिक वैभवशाली रूप में अभिव्यक्त किया है। इस कला पर ईरान तथा अरब स्थान की कुशल कारागरी का भी अच्छा संस्कार हुआ है। ताजमहल हिन्दुस्तान की मुसलमानी वास्तुकला का विश्वमान्य उदाहरण है। संसार की अन्य इस्लामी इमारतों से यह इमारत बिल्कुल भिन्न प्रकार की है। हिन्दू शिल्पशास्त्र के सिद्धांतों का पालन करके इसकी रचना की गई है। बीच में एक बड़े गुम्बज तथा उसके चारों ओर चार छोटे छोटे गुम्बजों को देखकर मन में पञ्च रत्नों की कल्पना का उदय होता है गुम्बज के मूल में कमल के दल हैं। गुम्बज की चोटी के पास एक उलटा कमल दिखाया गया है चोटी पर त्रिशूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सच तो यह है कि ताजमहल हिन्दू तथा मुसलमान दोनों संस्कृतियों के मधुर मिलन का एक नितान्त सुन्दर प्रतीक है। चित्रकला के क्षेत्र में भी दोनों परम्पराओं का मिश्रण दिखाई देता है। राजपूत शैली तथा मुगल दोनों सम्मिश्र शैलियाँ हैं। प्राचीन हिन्दू कला जीवन शक्ति तथा भौतिक शक्ति के विविध आविष्कारों को कला का प्राण मानती है। इस्लामी परंपरा में पली हुई कला भूमिति शास्त्र की रेखाओं के बीच के समन्वय, संतुलन तथा संवादिता को प्रधान मानती है। इस्लामी कला में रेखा पद्धति के विषय में संवेदनशीलता खूब है। परंतु वनस्पतियों, प्राणियों, पशुओं, पक्षियों तथा मानवों में विद्यमान जीवन शक्ति रेखारूप बन्धन की दासता का स्वीकार नहीं करती। प्राण या जीवन शक्ति का साक्षात्कार ही प्राचीन हिन्दू कला का ध्येय था। इस्लामी तलवार ने इस ध्येय पर आघात किया। अतएव अजंता की चित्रकला के उपरान्त भारतीय चित्रकला के अवतार का अस्त हो गया।

भारत के बाहर से आई इस्लामी संस्कृति भारतीय संस्कृति को परास्त करने में तनिक भी समर्थ न हुई। अन्त में हिन्दुओं ने बाजी मार ली। बाह्य संस्कृतियों के साथ संघर्ष हो जाने के बाद भी अन्त में भारतीय संस्कृति अपने सत्त्व या स्वत्त्व को कायम रखने में समर्थ सिद्ध हुई। भारतवर्ष में उच्च कोटि की मुसलमानी संस्कृति नहीं आई; क्योंकि अफगान तथा मुगल राज्यकर्ताओं को वह प्राप्त न हुई थी। उच्च कोटि की मुसलमानी संस्कृति मध्ययुग में योरोप की ओर चली गई। उसके योग से योरोप नवजीवन की संवेदनाओं से संयुक्त एवं लाभान्वित हुआ। ईसा की सतरहवीं शताब्दी में भारत में पाश्चात्य संस्कृति का आगमन हुआ, जो इस्लामी संस्कृति की तुलना में अधिक प्रभावी तथा शक्ति संपन्न थी। परंतु इसका यथार्थ में गहरा असर यहाँ अंग्रेजों के राज्य की स्थापना के उपरांत ही प्रकट होने लगा।

ब्रिटिश राज्य की स्थापना से निर्मित क्रांति

गत डेढ़ सौ वर्षों के अंग्रेजों के शासन काल में भारतीय जीवन में जिस तरह का विकासोन्मुख स्थित्यन्तर हुआ, उस तरह का विस्मयकारी परिवर्तन भारत के इतिहास में सहस्रों वर्षों में और वह भी इतनी अल्प अवधि में किसी भी समय न हुआ था। चार सौ बरस पहले भारत के इतिहास में जो घटनाएं घटित हुई है। उनकी तह में गत डेढ़ सौ वर्षों के महान स्थित्यन्तर के बीच बिल्कुल नहीं मिलते। तत्त्व का अनुसंधान करने वाली बुद्धि यह कहने पर बाध्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है कि अँग्रेजी राज्य की स्थापना ही इस स्थित्यन्तर का असाधारण कारण है। इस परिवर्तन ने भारतीय संस्कृति के प्रवाह की दिशा को ही बदल डाला। अंग्रेजों के आगमन के पूर्ववर्ती काल में भारतीयों के ऐतिहासिक विकास के क्रम में शिथिलता ने प्रवेश किया था, इतना ही नहीं उसमें अगतिकता आई थी। विकास प्रगति को जन्म देने वाली शक्ति पूर्णतया सुषुप्ति की अवस्था में पहुँची थी। साधारणतया एशिया महाद्वीप का इतिहास ही कुछ ऐसा दिखाई देता है कि उसमें यूरोपीय इतिहास की तरह ऐतिहासिक विकास की एक के बाद एक आने वाली सुव्यवस्थित सीढ़ियां प्राप्त नहीं होतीं। ऐतिहासिक विकासक्रम की यह कल्पना ही एशिया तथा हिन्दुस्तान के इतिहास-शास्त्र से मेल नहीं खाती। अतएव निरूपाय होकर कहना पड़ता है कि भारत में अंग्रेजों के राज्य की स्थापना ही वह असाधारण प्रेरणा का स्रोत है जिससे अंग्रेजों के राजत्व काल में भारतीय जीवन में सर्वांगीण संक्रमण हुआ। इस संक्रमण का विस्तार और व्यास सर्वगामी था। इस स्थित्यन्तर ने सामाजिक तथा व्यक्तिगत भारतीय जीवन के सब अंगों को प्रभावित किया।

बाह्य जीवन का पूर्णतया बदला हुआ क्रम तथा मानसिक मूल्यों में क्रांति दोनों मिलकर सर्वांगीण सामाजिक परिवर्तन को जन्म देते हैं। अंग्रेजों के शासन ने जीवन-क्रम में परिवर्तन भी किया और साथ-साथ मानसिक मूल्यों में क्रांति भी। इस शासन ने भौतिक एवं यांत्रिक सुधारों को जन्म दिया, नवीन संगठित राज्य यन्त्र का निर्माण किया। यही वह शासन था जिसने उदार मतों का पुरस्कार करने वाले न्यायासन का सूत्रपात किया और आधुनिक ढंग की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रधानता देने वाले, सब धर्मों के व्यक्तियों को समान मानने वाले कानून की स्थापना की। इसी राज्य ने शहरों में पाश्चात्य रहन-सहन की पद्धति का प्रवेश करवाया, अखबार आदि विचार विनिमय के प्रभावी साधनों का निर्माण किया, सारे नागरिकों को समान दर्जा देने वाली शिक्षा-संस्था का सूत्रपात किया और सुदूर प्रान्तों तथा विभन्न देशों में यातायात के उन साधनों का बड़े पैमाने पर विस्तार किया, जिनसे परस्पर आदान-प्रदान तुरन्त ही संभव हो। इस तरह अँग्रेजी राज्य ने बाह्य परिस्थिति में एक बड़ा परिवर्तन उपस्थित किया। मानसिक मूल्यों में क्रान्ति करने का प्रयत्न भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इसी विदेशी राज्य ने किया। आधुनिक विद्याओं तथा कलाओं पर आधारित पाश्चात्य संस्कृति के मूल्यों का तथा भारतीयों की परम्परागत संस्कृति के मूल्यों का मौलिक संगठन ही अतीव भिन्न है। मानसिक दृष्टिकोण से पाश्चात्य संस्कृति तथा भारतीय संस्कृति उसी तरह आपस में भिन्न अतएव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोसों दूर थी जैसे आकाश में स्थित दो भिन्न तारों पर निवास करने वाली दो संस्कृतियाँ। पाश्चात्य संस्कृति के साथ सम्पर्क तथा संघर्ष से भारतीयों की मानसिक संस्कृति के मूल्यों में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। आधुनिक विद्याओं, कलाओं तथा पाश्चात्य साहित्य की शिक्षा दीक्षा से कुछ भारतीय लाभान्वित हुए और इसके फलस्वरूप विद्युत संचार से कम्पित यंत्रों की तरह भारतीयों के मन नवीन विचारों के आन्दोलन से थर्राने लगे। इससे जीवन की ओर देखने का दृष्टिकोण बदल गया, बुद्धि तथा विचारों को एक विलक्षण अधिष्ठान प्राप्त हुआ; जीवन का अर्थ करने की पद्धति ही बदल गई जिससे सामाजिक तथा धार्मिक परिवर्तन का प्रारंभ हुआ। यह मानना चाहिए कि अँग्रेजी विद्या की शिक्षा वास्तव में भारतीय समाज का प्रबल मन्थन करने वाली उन अनेक शक्तियों के कारण अँग्रेजी कानून विकास के पथ पर अग्रसर हुआ। सामाजिक तथा धार्मिक सुधार के लिए यह आवश्यक होता है कि कायदे या कानून के प्रति विरोध की भावना नष्ट हो, इतना ही नहीं यह भी नितान्त आवश्यक है कि कानून के जरिए राज्य संस्था को आधार एवं बल प्राप्त हो। भारतीय समाज को क्रान्तिकारी विचारों की नेतृता, अँग्रेजी शिक्षा के कारण प्राप्त हुई। इसी नेतृत्व की वजह से अँग्रेजी शासन के लिए वह वायुमण्डल उत्पन्न हुआ जो कि सुधार की ओर उन्मुख करने वाले कानूनों के निर्माण के लिए बड़ा अनुकूल था।

ई॰ स॰ १८२९ में सती की प्रथा बन्द हुई और एक भीषण सामाजिक विधान की धार्मिकता को तिलाञ्जलि दी गई। सन् १८४३ मे कानून के बल पर गुलामों के व्यापार की प्रथा को नष्ट किया गया। सन् १८३६ में ही कानून ने ठगों के राक्षसी व्यवसाय को समाप्त किया। सन् १८६० में ''पीनल कोड'' को पूर्णतया निश्चित कानून का सुव्यवस्थित रूप दिया गया जिससे सितम से भरे हुए, अव्यवस्थित एवं विसंगत न्यायदान की उन पद्धतियों का स्थायी रूप से प्रतिबन्ध होने लगा जो हिन्दू तथा मुसलमान जमातों की धर्माधिकारी संस्थाओं द्वारा प्रचलित थी। इसी से अंगभूत व्यक्तियों पर दबाव डालने की उन जमातों की असीम शक्ति निरन्तर क्षीण होने लगी और कुछ समय के बाद नाम शेष भी हो गई। अँग्रेजी कानून तथा न्यायालय ने व्यक्ति को जमातों की यन्त्रणा से मुक्त करने का कार्य किया और इसी के फलस्वरूप समाज के सुधार की प्रवृत्तियों को स्वच्छन्द विकास का अवकाश मिला। सामाजिक बहिष्कार का महान शस्त्र शनैः-शनैः कुण्ठित होने लगा और अन्त में मोचरे ने उसे पूर्णतया ग्रस लिया। फल यह हुआ कि भारतीय समाज में आचारों तथा विचारों की स्वतंत्रता के नवीन युग का श्रीगणेश हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय समाज को यदि नवीन वैचारिक नेतृत्व अँग्रेजी शिक्षा की वजह से प्राप्त न होती, तो सिर्फ कानून असमर्थ ही सिद्ध हो उठता। पाश्चात्य विद्या के प्रसार में सहायता पहुँचाने वाली और एक शक्ति इस देश में सर्वत्र संचार करने लगी और वह है ईसाई धर्मोपदेशकों का प्रचार। ईसाई उपदेशकों ने सन् १८४० से १८६० के बीच समूचे भारतवर्ष में व्याख्यानों, लेखों, अखबारों, पुस्तकों तथा शिक्षा के अन्यान्य साधनों की सहायता से हिन्दू और मुसलमान दोनों के धर्मों पर बड़ा संगठित तथा प्रभावी आक्रमण किया। विचारों की जागृति पर इसका भी काफी असर हुआ। धर्म तथा समाज के सुधारकों की सभाओं, परिषदों, संस्थाओं तथा अखबारों के रूप में एक बड़े देशव्यापी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ।

भ्रम का निदान तथा नये व्यापक मूल्य

भारतीय मानव का परम्परागत जीवन क्रम सनातन रूढ़ियों तथा अन्धश्रद्धा के बन्धनों से पूर्णतया जकड़ा हुआ था। धार्मिक तथा सामाजिक इन दो कल्पनाओं में भेद दर्शक लक्षण-रेखा ही प्राप्त नहीं होती थी। जन्म से लेकर मृत्यु तक के सब महत्त्वपूर्ण व्यवहार धर्म की चहारदीवारी में ही सीमित थे। एक दिन की सुबह से दूसरे दिन की सुबह तक के चौबीस घण्टों के कार्यक्रम भी धर्मग्रन्थों द्वारा निर्धारित किए गए थे। स्नान, पान, भोजन, पर्यटन, व्यवसाय, विवाह आदि बहुतेरे मानव व्यवहारों पर धर्म का अधिकार था। भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय आदि के सम्बन्ध में भी धर्मशास्त्र ब्योरेबार निर्णय पर पहुँचा था। किसके साथ भोजन करें, क्या खाएँ, कब नींद से जागे, कब सोएँ, सोते समय अपना सिर तथा पैर किस दिशा में रखें, प्रवास कब करें, किस समय और किस दिशा की ओर उन्मुख होकर प्रवास के लिए प्रस्थान करें, श्मश्रुत किस दिन और किस तिथि में वर्ज्य मानें और किसमें विहित आदि सबमें सम्बन्ध में धर्म ही विधान करता था। जमुहाई लेना, छींकना आदि स्वाभाविक क्रियाओं के विषय में भी धर्म-विहित आचारों का पालन किया जाता था। प्रत्येक जाति तथा उपजाति के विभिन्न आचारों तथा कुल-धर्मों को धर्म के उच्चतम और श्रेष्ठ उपदेश की तरह प्रमाण माना जाता था। अत्यन्त साधारण, छोटी-मोटी रूढ़ियों का भी उल्लंघन न हो इसलिए पितर, देव, यज्ञ राक्षस, भूत और पिशाच सुप्रबन्ध तथा नियंत्रण के उद्देश्य से सर्वत्र उपस्थित रहते थे। हरेक महीने तथा ऋतु के अलग-अलग आचारों तथा व्रतों का पालन करना पड़ता था। श्राद्धों,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनौतियों, व्रतों, उद्यापनों, तीर्थोत्सवों तथा यात्राओं को अपूर्व महिमा से मण्डित किया था। घर में यदि कोई बीमार हुआ, किसी सम्बन्धी पर कुछ आपत्ति आ पड़ी, बान्धवों को किसी संकट ने घेर लिया, घर के किसी जानवर की अकस्मात् मृत्यु हो गई, व्यवसाय में अपयश मिला, गृहदाह हुआ, इमारत गिर पड़ी, कोई व्याधि फैल गई, कोई अवर्षण हुआ, अतिवृष्टि हुई तो यह समझा जाता था कि कोई व्रतभंग आचारों में कोई गड़बड़ी, जातिभेद के समुचित पालन में कोई प्रमाद हो जाने से; छुआछूत के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शिथिलता के आने से देवताओं तथा पितरों का प्रकोप अवश्य हुआ होगा और तब तुरन्त उसका उपशम किया जाता था। उस काल का हिन्दू या भारतीय मानव दिन में चौबीसों घण्टे तथा वर्ष के बारहों महीने भूतों, पिशाचों, देवताओं, राक्षसों तथा बेतालों की कड़े पहरे में निरन्तर रहा करता था। क्या घर में, क्या कुएं में, क्या दरवाजे में, क्या चूल्हे में, क्या दीवार में, क्या छत पर, क्या चौराहे पर, क्या पानी में, क्या नदी-तालाबों में, क्या वृक्ष पर, क्या खेत की मेड़ों पर क्या पर्वत पर, क्या जमीन पर, क्या आसमान पर, क्या आकाश, क्या पाताल में वास्तव में सब जगह, दशों दिशाओं में तथा तीनों कालों में मानव को ये अदृश्य शक्तियां सर्वत्र व्याप्त दिखाई देती थी। कुल के आचारों, जातिभेदो तथा देवताओं के विषय में उससे नित्य अनेक प्रमाद होते थे, परन्तु उनके लिए प्रायश्चित् तथा दण्ड भुगतने के लिए वह निरन्तर प्रस्तुत रहता था। विभिन्न देवताओं की मूर्तियों के सम्मुख वह सर्वत्र और सदैव नम्र होता था; क्योंकि उसे प्रमाद असीम थे, उनके लिए उसके मन को खेद नहीं होता था। सच तो यह था कि उस काल के भारतीय मानव के जीवन तथा मन पर उपयुक्त काल्पनिक, स्वप्नमय तथा भ्रमनिर्मित शक्तियों का जितना निर्बाध अधिकार था उतना उस पर न तो उसके देश के राजा के शासन का था, न उसके गांव तथा जमात का। वास्तव में वह इन्द्रजालों की दुनिया में 'भूत पिचाशों के विश्व' (Phantom World) में रहता था।

अँग्रेजी शासन ने आधुनिक शिक्षा की, भौतिक सुधारों तथा विकसित राज्य व्यवस्था की स्थापना करके उक्त कल्पनामय विश्व को भूचाल का सा धक्का दिया। इतिहास, गणित, भूगोल, सृष्टिविज्ञान आदि आधुनिक विद्याओं ने श्रुतियों, स्मृतियों तथा पुराणों का स्थान ले लिया। इसके फलस्वरूप युवकों की उस पीढ़ी का, परम्परा का जन्म हुआ जिसने नवीन समर्थ विचारों का आकण्ठ पान किया था। इस परम्परा ने देश की विविध भाषाओं को नवीन अँग्रेजी गद्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का रूप देना शुरू किया। नव-शिक्षितों का यह एक ऐसा वर्ग था जो शब्द प्रामाण्य तथा रूढ़ि प्रामाण्य की शृंखलाओं को तोड़ने का हिमायती था। पाश्चात्य संस्कृति की विस्मयकारिणी दीप्ति से इन युवकों की आँखें सचमुच चौंधिया गई थी। उस संस्कृति की उज्ज्वलता तथा भेदक प्रकाशमयता इतनी अद्भुत थी कि उससे मध्ययुग के अन्धकार में बढ़ी हुई और टिकी रही जीर्ण तथा सनातन समाज व्यवस्था का कुडौल, कुरकुरा एवं जघन्य अंतरंग स्पष्ट तथा दृष्टिगोचर हुआ। अन्धश्रद्धा से स्वीकृत विचार-पद्धति का परित्याग करके नवीन युवकों की परम्परा बुद्धिवाद का आश्रय लेने में दत्तचित्त हुई। पाश्चात्य विद्या तीन नवीन, मूल्यों को इस देश में ले आई। ये तीन मूल्य हैं–बुद्धिवाद, व्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता और सब मानवों की राष्ट्रभेद निरपेक्ष तथा वंशभेद निरपेक्ष, स्वाभाविक समता। बुद्धिवाद के कारण पुरानी परम्परा के दोषों तथा त्रुटियों की भली-भाँति अवलोकन करने वाली दृष्टि का लाभ हुआ और विज्ञान से सुपरिचित आचारों तथा विचारों की पद्धति को रूढ़ करने का हौसला प्राप्त हुआ। व्यक्ति-स्वातंत्र्य के विचार से यह स्फूर्ति प्राप्त हुई जो पुरानी समाज व्यवस्था के व्यक्ती की आत्मा के विकास के बाधा रूप बन्धनों को तोड़ने का काम करती है। मानवों की मूलभूत समता की कल्पना के कारण संसार के अन्य राष्ट्रों की संस्कृतियों के विषय में जो तुच्छतापूर्ण, पूर्वग्रह दूषित दृष्टिकोण था उसका नाश हुआ, नीर क्षीर विवेक की बुद्धि जागृत हुई और सब संस्कृतियों के सार रूप अंश का ग्रहण करने की उदार भावना का उदय हुआ। इन त्रिविध मूल्यों के ही कारण ऐहिकता-प्रधान विचार पद्धति उत्पन्न हुई, इस विचार को उचित रूप में महत्ता प्राप्त हुई है कि परलोक के जीवन की अपेक्षा इहलोक का जीवन-क्रम शुद्ध तथा यशस्वी होना चाहिए।

ब्रह्म समाज तथा प्रार्थना समाज का उदय

उपर्युक्त नवीन मूल्यों से नव शिक्षितों को स्फूर्ति प्राप्त हुई और उनमें हिन्दू धर्म संस्था का मूलगामी परिशीलन आरंभ हुआ। हिन्दू धर्म ही हिन्दुओं के सामाजिक जीवन का प्राण है। उस धर्म के गाभे पर बुद्धिवाद से प्रकाश डालकर उसमें परिवर्तन तथा संशोधन किए बिना सामाजिक परिवर्तन सुतराम् असंभव है इस मर्म को प्रज्ञावान व्यक्तियों ने उस समय भली-भाँति समझ लिया। उन्हें यह स्पष्ट दृष्टिगोचर हुआ कि शब्द प्रामाण्य पर आधारित कोई भी पुरानी धर्म-संस्था समाज के आधुनिक सुधार एवं विकास में निश्चिय ही बाधा-स्वरूप है। वास्तव में सब पुरानी धर्म संस्थाएँ आधुनिक मानव संस्कृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विकास के लिए बन्धन रूप ही है, क्योंकि धर्म संस्थाएँ हरेक समाज को अन्य समाज से मानसिक दृष्टिकोण से अलग करती है और उससे सांस्कृतिक सहयोग तथा तज्जन्य बन्धुत्व की भावना का विकास नहीं हो पाता। इसका परिणाम यह होता है कि मानव जाति की शक्तियां बढ़ने नहीं पाती, अपितु कुण्ठित होती है। अतएव धर्मभेद-मूल वेरों तथा विरोधों को पूर्णतया नष्ट करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि शब्द प्रामाण्य और विभिन्न रूढ़ियों पर आधारित धर्म पिछड़ जाय और सर्व मानवों का यह धर्म स्थापित हो जो विवेक बुद्धि को ही अधिष्ठान के रूप में अपनाता है। इस तरह की तलस्पर्शिनी प्रज्ञा का उदय भारतवर्ष के जिस महान प्रज्ञाशाली व्यक्ति के मन में हुआ वह है राजा राममोहन राय। इस सुन्दर, भव्य, विद्वान्, त्यागी तथा तपस्वी अतएव सचमुच महान व्यक्ति का उदय अँग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद शीघ्र ही हुआ। समाज सुधार तथा धर्म सुधार के आविभाज्य सम्बन्ध को पहले-पहल इन्होंने पहचाना। बिना धर्म दृष्टि को परिवर्तित किए सामाजिक बन्धनों को तोड़ने का मानसिक बल प्राप्त नहीं होता, क्योंकि हीन कोटि की धार्मिक अन्धश्रद्धा ही सामाजिक रूढ़ियों को स्थिर तथा बलवान बनाने का प्रमुख उपादान बनती है। धार्मिक ग्रन्थ धार्मिक अन्य श्रद्धा का पोषण करते हैं। अतएव सबसे पहले ग्रन्थप्रामाण्य पर ही आघात करना धर्म के सच्चे सुधारकों के लिए अनिवार्य हो उठता है। इस नियम के अनुसार राजा राममोहन राय ने सर्वधर्म ग्रन्थों का परिशीलन करके यह महान सन्देश दिया कि ईश्वर ही वह एकमेव सत्य है, जो सर्व धर्मों के मूल में निहित है। अपने इस महान सन्देश के प्रसार के लिए राजा राममोहन राय ने बंगाल में सन् १८२८ में ब्रह्मसमाज की स्थापना की। अँग्रेजी शासन की स्थापना पहले बंगाल में ही हुई थी। अतएव नवीन युग धर्म के प्रथम संस्थापक भी वहीं उत्पन्न हुए।

ब्रह्मसमाज की स्थापना से हिन्दुओं के या भारतीयों के नव-युग के प्रभात की घोषणा हुई। इसी से सुशिक्षित व्यक्तियों को आत्मा की सामर्थ्य प्राप्त हुई। इस नव धर्म ने यह विश्वास पैदा किया कि पुराने संकीर्ण आचारों तथा कृपा बन्धनों को तोड़ने में ही सच्ची धार्मिकता है। व्यक्ति स्वातंत्र्य के तत्त्व का स्वीकार करने के कारण ब्रह्म समाज के आन्दोलन ने नारी जाति के उद्धार का प्रश्न उठा लिया, क्योंकि पुराने धर्म के कारण गृह संस्था में नारी का व्यक्तित्व ही नष्ट हो चुका था। राजा राममोहन राय तथा उनके सहयोगियों ने सती की अमानुष प्रथा को कानून की मदद से रोकने का आन्दोलन शुरू किया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने सुयश भी पाया। सती की प्रथा वास्तव में इस तत्त्व की ओर करती थी कि संसार में नारी का अस्तित्त्व ही पुरुष के लिए है, अपने नहीं, उसका व्यक्तित्व पुरुष में पूर्णतया समर्पित है। इसी तत्त्व की ...नि उस समय हिन्दुओं के सब प्रकार के नारी जीवन में चारों ओर सुनाई ...। नारी को अपने बचपन में ही याने अबोध अवस्था में विवाह के बन्धन ...द होना पड़ता था। कानून तथा धर्म दोनों उसे पुरुष के समान स्वतंत्र ...कारी के हक से वंचित कर चुके थे। व्यवहार में स्वतंत्र व्यवसाय करने ...र उसके लिए बन्द था। गृह संस्था में वह पिता, सास-ससुर तथा पति ...तया अधीन थी। भद्र पुरुषों के वर्ग में विधवा विवाह पर प्रतिबन्ध था। विधवाओं को या तो बलात सती होने पर बाध्य किया जाता था या तो ...धर्म से बड़े दुःख के साथ अपना जीवन घर ही में बिताना पड़ता था। ...ह से एक मानव के नाते उनका स्वतंत्र अस्तित्व ही समाज को ...ार था, उसे समाज अमान्य करता था। प्रगल्भ मन के योरोपीय दम्पतियों ...कर आंग्लविद्याविभूषित व्यक्तियों के मन में उसी तरह के दाम्पत्य ...को बिताने की अभिलाषा उत्पन्न होने लगी। उनके मन में अपने नवीन ...न के तथा शिक्षा के बाद की प्रौढ़ अवस्था के अनुरूप किसी शिक्षित ...ी पाने की आकांक्षा का आविर्भाव हुआ। विकसित व्यक्तित्व से सम्पन्न ...स समय समाज में विद्यमान नहीं थी। उसके लिए आन्दोलन करना पड़ा। ...िक्षा का आन्दोलन ही वास्तव में स्त्री स्वातंत्र्य का आन्दोलन है। असल ...तंत्र व्यक्ति वह है जो बिना बाह्य बन्धनों के संसार में विवेक बुद्धि से ...है इस तरह का व्यक्तित्व उस काल के हिन्दू पुरुषों में भी नहीं था, भला ...ं में कहा मिलता? इस तरह बन्धनों से जकड़ी हुई नारी के व्यक्तित्व को ...त करके हिन्दू या भारतीय मानव की कुटुम्ब संस्था में मौलिक परिवर्तन ...की इच्छा रखने वाले महान आन्दोलन का सूत्रपात ब्रह्म समाज ने तथा ...ों ने किया। स्त्री शिक्षा, प्रौढ़ विवाह, विधवा विवाह, अनाथ बालकों का ...न आदि प्रयत्न इसी आन्दोलन के अंश हैं। कुटुम्ब संस्था में इस तरह का ...न करने वाले आन्दोलन के साथ-साथ ब्रह्म मत के समर्थकों ने हिन्दू ...की मुख्य रचना में परिवर्तन करने वाले जाति भेद विध्वंसक आन्दोलन ...ं सूत्रपात किया। मिश्र विवाहों को उन्होंने प्रधानता दी। हिन्दू समाज की ...जातियों में विधवा विवाह रूढ़ि के आधार पर मान्य था, तो कुछ में ...। सन् १८५६ में विधवा का कायदा मंजूर हुआ। यह स्वाभाविक है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधवा विवाह को अमान्य करने वाली जातियों को अपनी उच्चतम सम्बन्धी अर्हता को नष्ट करने में इस कायदे का उपयोग हो। ब्रह्म धर्म तत्त्व ने यह सिद्ध किया कि जाति भेद पर आधारित आचार धर्म की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं है और जाति भेद की संस्था को तत्त्व की दृष्टि से एक बहुत बड़ा धक्का दिया। ब्राह्म समाज ने बड़े आवेश तथा अभिनिवेश के साथ इस बात का प्रतिपादन किया है कि वर्ण व्यवस्था का समर्थन किसी भी दृष्टिकोण से नहीं किया जा सकता। यह सच है कि वर्तमान समय तक किसी भी छोटे या बड़े आन्दोलन ने जातिभेद को नष्ट करने में यश नहीं पाया है; परन्तु जाति भेद के वैचारिक तथा तात्त्विक आधार को नष्ट करने के कार्य का सूत्रपात करने का प्रथम श्रेय ब्रह्मसमाज को ही प्राप्त है। ब्रह्मसमाज के प्रमुख समर्थकों को सामाजिक सुधार के इस संग्राम में बड़े-बड़े कष्टों को सहन करना पड़ा, बहुत यातनाएं उठानी पड़ी। कई बार ऐसा भी हुआ कि उनके ही दल के बहुत प्रबल माने जाने वाले सेनानी भी हिम्मत हार बैठे। उदाहरण के तौर पर केशवचन्द्र सेन जैसे महान और प्रभावी प्रवक्ता ने स्वयं ही लोभवश अपनी कन्या का बाल्यावस्था में ही दान करके अपने सम्प्रदाय के प्रण का भंग किया। भारत के सभी प्रान्तों में धर्म सुधारकों के हरेक सम्प्रदाय के नेताओं में इस तरह कुछ कच्चे दिल के नेता निर्माण हुए। यह सर्वथा सत्य है कि सामाजिक परम्परा के बन्धनों को तोड़ते-मरोड़ते समय उत्पन्न होने वाला प्रत्याघात इतना भीषण तथा कठोर हुआ करता है कि वही बहुतेरे व्यक्तियों के धैर्य एवं शौर्य की कसौटी सिद्ध होता है।

ब्रह्मसमाज ने हिन्दू धर्म की ओर परोक्ष रूप से समूचे रूढ़ धर्मों की मूल रचना में दूर तक पहुंचने वाला परिवर्तन करने की महत्त्वाकांक्षा को प्रदर्शित किया। सब रूढ़ धर्म धर्म-ग्रन्थों के निर्बाध प्रामाण्य में श्रद्धा रखते हैं। ब्रह्मसमाज ने इस प्रामाण्य का त्याग करके मानव के हृदय के, उसकी विवेक बुद्धि के प्रामाण्य का स्वीकार किया, संसार के सब धर्मों के मुख्य और मूलभूत, समान रहस्यों को मान्यता दी जिससे सब रूढ़ धर्मों को नष्ट करने के बदले उनके सुधार का मार्ग सूचित हुआ। इस तरह ब्रह्मसमाज ने समूची मानव जाति की एकता स्थापित करने की आधारशिला को उपस्थित किया। नीति के शाश्वत सिद्धान्त, मानवी बन्धुत्व तथा निराकर, मंगलमय, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी परमात्मा का अस्तित्त्व इन तीन बातों में सब धर्मों का वास्तविक रहस्य समाया हुआ है। मूर्ति पूजा को निषिद्ध मानकर ब्रह्मसमाज ने हिन्दू धर्म की भ्रान्त धार्मिक धारणाओं को और कर्मकाण्ड को निराधार सिद्ध करने का प्रयत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गा मूर्ति पूजा ही वर्तमान पुरोहित संस्था की नींव है, उसे नष्ट करने से हित वर्ग का आधार बनी हुई संस्था भी स्वाभाविक रूप से विलीन होती है। के धार्मिक आचारों का विप्लव भी आसानी से नष्ट होता है और विशुद्ध क आचरण को धार्मिक महत्ता प्राप्त होती है। इस विषय में भारत में अब कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता। ऐहिक जीवन को नीति प्रधान कर संसार के व्यवहार को यशस्वी बनाने वाले नवीन मानव समाज का ण करना ही ब्रह्मसमाज का प्रधान उद्देश्य है। इसीलिए ब्रह्मसमाज ने लौकिक कल्पनाओं को व्यर्थ एवं निस्सार सिद्ध किया। मानव जीवन की पूर्णता का निरन्तर भान कराने तथा शाश्वत और अनन्त आदर्श को सम्मुख ने का कार्य, ईश्वर की उपासना करती है; परन्तु ब्रह्मसमाज की प्रेरक शक्ति न में वह दृष्टिकोण रखने में है जिससे मानव ऐहिक संसार में विजय पाने समर्थ हो और इहलोक में ही वह अपने जीवन को पूर्णतया सफल बनाए।

ब्रह्मसमाज ने बंगाल में बड़े-बड़े प्रतिभावान व्यक्तियों तथा महान रकों को जन्म दिया है। इनके सहयोग के कारण बंगाली साहित्य को, लाओं तथा विद्याओं को महनीय पद प्राप्त हुआ। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर" वास्तव में ब्रह्मसमाज के कीर्ति मन्दिर के विश्व को आलोकित न्त प्रकाशमान स्तम्भ हैं।

ब्रह्मसमाज के विचारों की प्रेरक शक्ति परावर्तित होकर महाराष्ट्र तथा जरात में भी पहुँची। गत शताब्दी के अनेकों बड़े-बड़े महाराष्ट्रीय कर्तृत्वान् क्ति इसी शक्ति से प्रेरित दिखाई देते हैं। यद्यपि महाराष्ट्र तथा गुजरात के भी सुधारकों को ब्रह्मसमाज से **सम्बद्ध नहीं कहा जा सकता, तो भी उनमें कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का ब्रह्मसमाज से सम्बन्ध स्थापित हो ही ता है। बम्बई शहर के आंग्लविद्या विभूषित युवकों की प्रथम पीढ़ी और गाल के सुशिक्षितों की पहली पीढ़ी दोनों एक ही परिस्थिति के परिणाम । एकेश्वर बाद को अपनाकर चलने वाली धर्मकान्ति** ही इस परिस्थिति का व्यवच्छेदक लक्षण है। इस प्रवृत्ति के मूल में एक बड़ी उत्सुकता यह थी कि हिन्दू समाज की कुटुम्ब संस्था में परिवर्तन हो, नारी को स्वतंत्रता प्राप्त हो, जातिभेद नष्ट हो, मूर्ति पूजा तथा कर्मकाण्ड के विप्लव का उच्छेद हो और सब धर्मों के अनुयायियों में बन्धुत्व का सम्बन्ध स्थिर हो। मानव धर्म सभा, परमहंस सभा, ज्ञान प्रसाद सभा आदि वे विविध रूप हैं जिनके द्वारा सुधारकों की विचार पद्धति में नवीन अंकुरों का उद्भव हुआ। पण्डित विष्णु शास्त्री, लोकहितवादी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाना शंकरशेट, बेहरामजी मलवारी, वि० ना० मंडलिक, भाउ, दाजी लाड, भगवानदास पुरुषोत्तम दास, कावसजी जहांगीर, मंगलदास नथूवाई आदि महान सुधारक अँग्रेजी विद्या के प्रभाव से निर्माण हुए। इन सब में दो गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थे, एक सामाजिक सुधार के लिए तीव्र बेचैनी और आधुनिक विचारों की प्रबल आँच या ज्वाला। प्रार्थना समाज की स्थापना तथा अखिल भारतीय सामाजिक परिषद् का उपक्रम दोनों इन व्यक्तियों द्वारा किए गए आन्दोलन की ही उपज हैं। प्रार्थना समाज वस्तुतः ब्रह्मसमाज का वह प्रतिबिम्ब है जो सन् १८६७ में गोचर हुआ। परन्तु इस प्रतिबिम्ब में बिम्ब का तेज तथा सामर्थ्य नहीं था। जिन व्यक्तियों का सहयोग इस समाज को प्राप्त हुआ थो वे महान थे, विद्वान् थे और सुयोग्य समीक्षक भी थे, परन्तु बा० अ० मोड़क तथा डॉ० रा० गो० भाण्डारकर जैसे इने-गिने व्यक्तियों को अगर छोड़ दें तो और किसी भी परिस्थिति से डटकर लोहा लेने की शक्ति नहीं थी। फल यह हुआ कि इन सुधारकों के प्रयत्नों को भद्र वर्ग की कुटुम्ब संस्था को नवीन रूप देना यही अत्यन्त साधारण स्वरूप प्राप्त हुआ। जातिभेदों को नष्ट करने के विषय में इन्होंने जानबूझकर शिथिलता को अपनाया। इनके अन्तरतम में ब्राह्मणी अथवा सफेदपोशों की संकीर्णता के भाव अनजान में छिपे हुए थे। धर्म की स्थापना के कार्य सर्वस्व को न्यौछावर किए बिना सम्पन्न नहीं हो सकते। सर्वस्व का होम करने की प्रबल भावना ही बड़े-बड़े सामाजिक विद्रोहों को जन्म देती है। धर्म-स्थापना के कार्य के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि स्फूर्ति के महान सागर उमड़ पड़े। जब दिव्यता का सन्देश आकाश और पाताल को एक करने वाले प्रचण्ड आन्दोलन का निर्माण करता है और सदियों तक उन प्रबल वीरों एवं साधकों को अखण्ड परम्परा को जन्म देता है जो प्रज्ञा तथा त्याग की साकार मूर्तियां हैं, तभी धर्म स्थापना का नवीन युग सच्चे अर्थों में अवतीर्ण होता है इस तरह की प्रखण्ड शक्ति आज तक भारतवर्ष के किसी भी वैचारिक आन्दोलनों को प्राप्त नहीं हुई। सर्वांगीण विद्वता, व्यवहारी दृष्टिकोण तथा भविष्य के स्वरूप का अनुमान तीनों अनमोल गुण न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे तथा डॉ० भाण्डारकर जैसे प्रार्थना समाज के अनुयायियों में थे अवश्य, परन्तु जिस भारतीय समाज रचना में उन्हें क्रान्ति करनी थी उसकी प्रतिगामी शक्तियों का विध्वंस करने के लिए आवश्यक शक्ति का सच न वे कर सके और न बंगाल के ब्रह्मसमाजी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायमूर्ति रानाडे ने कांग्रेस की स्थापना करके भारतीय राजनीतिक आन्दोलन की सुचारू रूप से नींव डाली और साथ-साथ सामाजिक परिषद् की भी स्थापना करके सामाजिक सुधार को एक निश्चित रूप देने का प्रयत्न किया। परन्तु कांग्रेस की तरह यह परिषद् दीर्घजीवी नहीं हो पाई, क्योंकि राजनीतिक आन्दोलन को प्रधानता देने वाली लोकमान्य तिलक जी की नेतृत्व की विजय हुई। परन्तु स्त्रियों तथा पुरुषों की समानता का आन्दोलन, जातिभेद पर आधारित आचारों का उच्छेद करने वाला आंदोलन और ऐहिक जीवन को केन्द्रीय स्थान देने वाले शैक्षिक आन्दोलन तीनों ने इस देश में अपना आसन सदा के लिए स्थिर किया। इन आन्दोलनों के वैचारिक नेतृत्व का श्रेय निस्सन्देह ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज तथा सामाजिक परिषद् के कार्य में सहयोग देने वाले सुशिक्षित सुधारकों को प्राप्त है। मद्रास प्रान्त में धार्मिक सुधारकों को इच्छानुसार महत्त्व प्राप्त नहीं हुआ, केवल सामाजिक सुधारक वहाँ भी अगुआ बने। दि०ब० रघुनाथराव तथा सर० टी० माधवराव दोनों नाम इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इसी समय मद्रास की तरफ थिऑसॉफी के पन्थ के रूप में नव सुशिक्षितों के उस आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जिसने धार्मिक तथा बुद्धिवादी सुधारकों द्वारा किये गए वैचारिक आक्रमणों का प्रतिकार करने का प्रयत्न किया, पुरानी अन्धश्रद्धा तथा भ्रमपूर्ण धार्मिक आचारों का, कर्मकाण्ड, मंत्रतंत्रों, मूर्तियों, अवतारों, गुरुओं तथा अद्भुत चमत्कारों का नये ढंग से समर्थन किया और भोले-भाले भावों को, अन्ध भक्ति को दृढ़मूल करने का प्रयत्न किया। थिऑसॉफी के इस पन्थ की शाखा प्रशाखाएं भारत भर में फैल गई।

आर्य समाज, हिन्दुत्व को प्रतापी करने की महत्त्वाकांक्षा

ब्रह्म-प्रार्थना-समाज के आन्दोलन की ही तरह समान रूप से महत्त्वपूर्ण परन्तु उससे भी अधिक कार्य एवं प्रभावी आन्दोलन पंजाब में उत्पन्न हुआ और वह है आर्य समाज जिसकी स्थापना सन् १८७५ में हुई। ब्रह्मसमाज तथा आर्य समाज दोनों की समानता एकेश्वरवाद को अपनाने में है। परन्तु इन दो आन्दोलनों में एक मूलभूत अन्तर भी है। संसार के सभी धर्म सम्प्रदाय उनकी ईश्वर विषयक श्रद्धा तथा नैतिक तत्त्व की समानता के कारण ब्रह्म समाज के लिए आदरणीय अवश्य है, परन्तु यह समाज किसी भी एक धर्म ग्रन्थ को प्रमाण नहीं मानता, विवेक बुद्धि ही उसके लिए एकमात्र प्रमाण है। इसके विपरीत आर्य समाज का पवित्र ग्रन्थ है वेद। शेष सभी धर्मग्रन्थ मानव प्रणीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने के कारण प्रमाण नहीं है। हिन्दुओं की मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा तथा अन्य पौराणिक आचार आर्य समाज के लिए अमान्य हैं, एक ईश्वर के सिवा अन्य देवता मान्य नहीं है, अन्य धर्म अत्यन्त सदोष अतएव खण्डनीय हैं। आर्य समाज के आद्य संस्थापक स्वामी दयानन्द ने अपने "सत्यार्थ प्रकाश" नाम के ग्रन्थ में अन्य मतों का खण्डन करके आर्य समाज के तत्त्वों का आचार-मार्ग के साथ बड़े विस्तार से प्रतिपादन किया है। दयानन्द ने वेदों पर भी स्वतंत्र भाष्य लिखा है। इस भाष्य की भूमिका उनके वेद विषयक सामान्य दृष्टिकोण को सम्यक् रूप से विशाद करती है। आर्य समाज जातिभेद को नहीं मानता, स्त्री शिक्षा पुनर्विवाह तथा विभिन्न जातियों के सम्मिश्र विवाह उसके लिए मान्य है। पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त में आर्य समाज ने सनातन धर्म संस्था परक पचास बरसों तक बड़े वेग से आघात किए और स्वमत की स्थापना की। ईसाई तथा मुसलमान धर्मों पर आर्य समाज का विशेष रोष है, अतएव आर्य समाज को आधुनिक हिन्दुत्व के आन्दोलन का शक्तिशाली नेतृत्व प्राप्त हुआ।

सत्यसमाज और पिछड़े हुए लोगों तथा शूद्रों में जागृति

क्या ब्रह्म समाज, क्या प्रार्थना समाज, क्या आर्य समाज, क्या सामाजिक सुधार कोंका पन्थ सबसे अलग ढंग की धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति करने का एक नवीन आन्दोलन महाराष्ट्र की पिछड़ी हुई जातियों में उत्पन्न हुआ और वह है ब्राह्मणेतरों का सत्यशोधक समाज का आन्दोलन। हिन्दुओं का ब्राह्मणी परम्परा ने बहुजन समाज पर कई युगों तक निर्बाध शासन किया और निम्न जातियों के समाज को निरन्तर अज्ञान, दरिद्रता, भोलेपन, पिछड़ेपन, अस्वच्छता, मलिनता, मन की दुर्बलता तथा हताश वृत्ति का ही भागी बना रखा। इस ब्राह्मणी परम्परा द्वारा किये गए अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करने वाली प्रवृत्ति सत्यशोधक समाज के रूप में जाग उठी। किसानों, कारीगरों तथा मजदूरों के वर्गों का दीर्घकालीन आर्थिक शोषण भी इस असन्तोष के मूल में विद्यमान था। इस आन्दोलन के पास हिन्दू धर्म की परम्परा बौद्धिक आक्रमण करने वाली वैचारिक भूमिका भी थी। ज्योतिबा फुले इस महान आन्दोलन के मूल प्रवर्तक है। सन् १८७३ में पूना शहर में सत्यशोधक समाज की स्थापना हुई। ब्रह्म समाज तथा प्रार्थना समाज की ही तरह एकेश्वरवाद, विशिष्ट पवित्र ग्रन्थों को पूर्णतया प्रमाण न मानना, विवेचक बुद्धि का प्रामाण्य, पुरोहित वर्ग का अभाव, मूर्ति पूजा का विरोध, तीर्थ यात्रा का विरोध, अद्‌भुत चमत्कारों पर अविश्वास,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोक का तथा स्वर्ग नरकों का अभाव, समूची मानव जाति की समता, बन्धुत्व तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता आदि तत्वों को सत्यशोधक समाज ने भी अपनाया। सरकारी संस्थाओं में विद्यमान ब्राह्मणी शासन तथा समाज के सब महत्वपूर्ण व्यवहारों में दृश्यमान ब्राह्मणी नेतृत्व के विरोध में एक तरह के वर्ग विग्रह का ही निर्माण इस आन्दोलन ने किया। अन्य सुधारकों की ही तरह सत्यशोधक समाज के समर्थक अँग्रेजी शासन के प्रति आदर की भावना रखते थे। भारतीय सुधारकों के इतिहास में राजा राममोहन राय को यदि छोड़ दें, तो सचमुच ज्योतिराव फुले की तरह दृढ़, त्यागी, धीरोदात्त तथा तपस्वी नेता दूसरे नहीं हुए। स्व० आगरकर उनके समान ही मालूम होते हैं, परन्तु वे राष्ट्रवादी थे, मानवतावादी नहीं। ज्योतिबा वास्तव में मानवता का वह अगाध प्रेम सागर हैं जो राष्ट्रभेद के बन्धनों को तृणवत् मानकर उन्हे आसानी से लाँघता है और आगे बढ़ता है। आगरकर सृदश्य अवश्य थे, परन्तु उनका बुद्धिवाद था, उन्होंने मानवता का व्यापक प्रेम नहीं पाया था।

सत्यशोधक समाज के संस्थापकों ने दक्षिण भारत तथा महाराष्ट्र में जिस प्रवश्ति को साकार रूप प्रदान किया वह अब पूर्णतया दृढ़मूल बनी है। भारतीय समाज के पिछड़े हुए निम्न स्तरों के व्यक्तियों के विकास की आशा इच्छाशक्ति का प्रबल रूप धारण करके उपस्थित है। मलिनता तथा दुर्दशा को प्राप्त भारतीयों के धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आकर्षक के सब कुलक्षण इन स्तरों में प्रकट हुए हैं। यह एक सच्चाई कि यदि इन स्तरों का जीवन निर्मल न हो पाया, अगर इनमें प्रकाश की किरणों का उन्मुक्त प्रवेश न हो सका और यदि इन स्तरों के पशुप्राय अवस्था तक पहुँचे हुए मानव मानवता की स्वतंत्रता से लाभान्वित न होकर सदाचार, ज्ञान एवं माङ्गल्य से सुशोभित वृद्धि को प्राप्त न कर सके, तो यह निश्चित है कि भारतीय समाज के भविष्य के सम्बन्ध में अधिक आशाएं रखने के लिए कोई अवकाश नहीं है। सत्यशोधक समाज की स्थापना के कारण किसानों तथा मजदूरों के जीवन संग्राम को एक निश्चित रूप प्राप्त हुआ। ब्राह्मणेतरों के आन्दोलन के ही कारण दक्षिण भारत में अस्पृश्यों के आत्मोद्धार के आन्दोलन को कुछ बल मिला। साधारण से साधारण व्यक्तियों को आधुनिक आंग्लविद्या की शिक्षा प्राप्त हो, सामाजिक जीवन में समता की स्थापना हो, धार्मिक भेदों की महिमा कम हो आदि विभिन्न कल्पनाओं का पिछड़े हुए बहुजन समाज के प्रमुख व्यक्तियों के मन में जो उदय हुआ उसका असली कारण उपयुक्त ब्राह्मणेतरों का आन्दोलन ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मुसलमानों के विषयों में जो आत्मीयता की भावना ब्राह्मणेतरों के प्रतिदिन के व्यवहारों में प्रकट होती है और ब्राह्मणेतरों के आन्दोलनों में स्पष्टतया लक्षित होती है इसका प्रधान कारण है इस (सत्यशोध) आंदोलन का धर्मदातीत दृष्टिकोण।

समाज सुधार तथा अँग्रेजी कानून

ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, सामाजिक सुधारकों की संस्थाएँ, सत्यशोधक समाज, तथा ब्राह्मणेतर आन्दोलन आदि में ग्रथित धार्मिक तथा सामाजिक विचारों का प्रतिबिम्ब अँग्रेजों के कानून में, उनकी राज्य संस्था तथा शिक्षा संस्था में दिखाई देता है। अँग्रेजी राज्य या शासन की नीति तथा सुधारकों का दृष्टिकोण दोनों परस्पर पूरक ही थे। अँग्रेजी शासन के कानून के मुताबिक इस देश की समूची प्रजा का स्तर समान ही माना गया। अतएव वह धर्म विचार उत्पन्न हुआ जो धर्म के विशिष्ट सम्प्रदायों तथा पवित्र ग्रन्थों को ही महत्ता न देते हुए केवल विवेक बुद्धि को प्रामाण्य मानने वाला धर्मविचार निर्माण हुआ। मूर्तिपूजा द्वारा निर्मित कर्मकाण्ड का समर्थन करने वाला एक दल उस कर्मकाण्ड को न मानने वाले दूसरे दल को पराया समझता है। इसी से मूर्ति पूजा का विरोधी विचार शनैः शनै प्रसृत होने लगा। हिन्दू धर्म की अनेक देवतावाद का पुरस्कार करने वाली संस्था पर आघात करने के लिए ही एकेश्वरवाद की प्रबल लहर उत्पन्न हुई। हिन्दू धर्म में मूलतः एकेश्वरवाद ही विद्यमान है, परन्तु प्रत्यक्ष ब्राह्मण में तो अनेक देवतावाद ही यशस्वी होता है हिन्दू धर्म-संस्था के रूप में अनेक देवतावाद का ही पुरस्कार करने वाला धर्म है। उसके विरुद्ध एकेश्वरवाद प्रतिकार के लिए उत्पन्न हुआ। यह अभी भविष्य की वस्तु है। अँग्रेजी कानून ने निरूपाय होकर उस धारा को अपनाया जो हिन्दू धर्म की श्रुतियों, स्मृतियों तथा पुराणों में ग्रथित कानून के विरुद्ध थी। उसने सती की प्रथा का प्रतिबन्ध किया सन् १८३२ तथा १८५० के कायदे के अनुसार धर्म परिवर्तन करने के बाद भी व्यक्ति को अपने सम्बन्धियों की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाया गया, उसके अधिकार को कायम रखा गया। सन् १८४० में गुलामों के व्यापार को रोकने वाला कानून मंजूर हुआ। सन् १८५६ में पुनर्विवाह के कायदे के मंजूर करके ब्राह्मणी हिन्दू धर्म के नारी जीवन सम्बन्धी मूलभूत तत्व को भारी ठेस पहुंचाई गई। सन् १८६५ में वह क्रान्तिकारी कानून जिसे इण्डियन् सक्सेशन एक्ट कहा जाता है पास किया गया, जो भारत के किसी भी जाति या धर्म के व्यक्ति को अन्य जातीय या अन्य धर्मीय व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से विवाह करने की अनुमति देता है। इस कानून ने जाति भेद तथा धर्म भेद की जड़ को ही उखाड़ दिया। यों तो इस कानून को प्रत्यक्ष आचरण में स्थान देने का काम कोई एक व्यक्ति ही किसी समय करता है और यह व्यक्ति वस्तुतः अपवाद ही होता है इससे यह सिद्ध होता है कि कानून असल में धर्म सुधार या समाज सुधार की अवसर अवश्य प्रदान करता है, परन्तु उस सुधार के यथार्थ में सम्पन्न होने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि समाज के अंग प्रत्यंग में क्रान्तिकारी शक्ति का उदय हो। यह सही है कि जातीयतावाद को नष्ट करने वाला कानून अँग्रेजों ने निर्माण किया, परन्तु साथ-साथ यह भी मानना पड़ेगा कि जातीयतावाद को नष्ट करने वाली समाज क्रान्ति का निर्माण वे न कर पाए।

गांधी युग :

सन् १९१४-१८ में जो प्रथम विश्व युद्ध हुआ उसने अँग्रेजी राज्य की स्थापना से लेकर सन् १९१४ तक चलने वाले सामाजिक आन्दोलन को बल दिया, उसमें शक्ति का संचार किया। भारतीय राजनीति पर इसका क्या असर हुआ इसका ज्वलन्त प्रमाण इसके बाद के राजनीतिक आन्दोलनों के उत्कर्ष में मिलता है। इस काल में सामाजिक आन्दोलन भी अत्यन्त प्रभावी बने। लोकमान्य तिलक तथा न्यायमूर्ति रानडे जैसे व्यक्ति सन् १८९२ में ईसाई धर्मोपदेशकों के साथ चाय लेते हैं और उससे सामाजिक वायुमण्डल में वायुमण्डल में खलबली सी पैदा होती है। पुराने विचारों से प्रभावित सफेदपोशों का वर्ग उसके विरुद्ध आक्रोश करते हुए कहता है, "यह कितना भीषण पाप है? कितना घोर अनाचार? हे परमात्मन्, क्या बड़े-बड़े लोग भी अब इतनी भीषण अव्यवस्था का निर्माण करने लगे? और ये नेता भी सामाजिक कोटुम्बिक दबाव से डरकर कायरता से परिस्थिति के समाने नतमस्तक होते हैं और गोमूत्र के प्राशन से प्रायश्चित् लेने के लिए प्रस्तुत होते हैं। प्रथम महायुद्ध के उपरान्त उपयुक्त वायुमण्डल में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ।

पहले महायुद्ध की समाप्ति से लेकर दूसरे महायुद्ध की समाप्ति तक के भारतीय इतिहास को प्रधानता से "गांधी युग" की संज्ञा देना संभव है। धैर्यशाली समाज सुधारकों के शूर नेता की दृष्टि से यदि हम महात्मा गांधी को देखें तो उनका व्यक्तित्व अधिक प्रभावी हो उठता है। यह स्पष्ट दिखाई देता है कि बीती सदी के सुधारकों का महत्त्वपूर्ण कार्य गांधी में अपने उत्कर्ष की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरम सीमा को प्राप्त हुआ। स्त्रियों के विषय में गांधी की सेवा तथा कर्तव्यगत शताब्दी के सुधारकों की आत्माओं को सचमुच मोक्ष का आनंद प्रदान किए बिना नहीं रह सकता। महात्मा गांधी सैकड़ों नारियों को राजनीति क्षेत्र में ले आए और उन्होंने स्त्रियों तथा पुरुषों की समानता की बड़ी उज्ज्वलता के साथ स्थापना की। वर्तमान भारतीय स्वराज्य की राजनीति गांधी के उक्त महान कार्य का ज्वलन्त प्रमाण है। एक नारी (श्री अमृत कौर) भारतीय मंत्रिमंडल में विराजमान है, दूसरी (श्री विजयालक्ष्मी पण्डित) अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी नेतृता के उत्कृष्ट गुणों की दीप्ति दिखा रही है और तीसरी नारी (अब स्वर्गीया सरोजिनी नायडू) एक बड़े इलाके की गवर्नर बनी थी। सन् १९१८ में अस्पृश्यता निवारण की समस्या पर लोकमान्य तिलक ने अपना निश्चित मत नहीं दिया, परन्तु उसी समय गांधी ने अपने आश्रम में एक अस्पृश्य कन्या का स्वयं अपनी पुत्री की तरह पालन पोषण किया और अस्पृश्यता का उच्छेद करने वाले आन्दोलन को देशव्यापी रूप प्रदान किया। जातिभेद को नष्ट करने के लिए उन्होंने अपने आश्रम में सब जातियों के लोगों के साथ पंगत में भोजन करने तथा ब्याह में कन्या का आदान-प्रदान करने का प्रारंभ करके सनातन निबन्धों का भंग किया, इतना ही नहीं, अपने एक पुत्र का एक ब्राह्मण कन्या से विवाह करवाया। सब धर्मों के विषय में समबुद्धि का निर्माण करने तथा सर्व धर्मों के अनुयायियों में मातृभाव की स्थापना करने के लिए उस महात्मा ने आत्मसमर्पण किया। इस तरह राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक के काल में धार्मिक तथा सामाजिक सुधार का इतिहास निरन्तर उत्कर्ष पथ पर अग्रसर होता रहा और वर्तमान में वह स्वराज्य के काल खण्ड में प्रवेश कर रहा है।

गत शताब्दी में अँग्रेजी राज्य काल में सुधार के जो प्रयत्न हुए उनके कारण धार्मिक तथा सामाजिक विचारों एवं आचारों की दिशा में परिवर्तन हुआ। परन्तु सुधार की ओर का यह झुकाव बड़ा उथला है। दिखाई देता है कि इस झुकाव का भारतीय समाज के गहरे अन्तस्तल में प्रवेश नहीं हो पाया। मूक, सनातन रूढ़ि वास्तव में इतनी वज्रमयी है कि वह गत डेढ़ सौ वर्षों के सामाजिक और धार्मिक सुधार के इतिहास को एक ही क्षण में नष्ट कर सकेगी। ऊपरी तौर से दिखाई देता है कि सफेदपोशों का सुधार हुआ है, परन्तु उनकी गृह संस्था में प्रवेश करते ही उनमें विद्यमान पुरातन रूढ़ि को जीर्ण दशा का साक्षात्कार होता है और मन में सहसा भय का निर्माण होता है गृह संस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सनातन रूढ़ि का यह कलि पुरुष प्रत्येक महत्त्वपूर्ण अवसर पर अपने अस्तित्व का प्रमाण उपस्थित करता है राजनीतिक चुनाव के समय सर्व जातियाँ धर्म सम्प्रदाय अपने क्षुद्र अहंकार को प्रदर्शित करते हैं। सच तो यह है कि अब तक भारतीय समाज को या हिन्दू समाज को शुभ, उदार तथा मानवता से पूर्ण भावनाओं की यह विशाल संपत्ति प्राप्त नहीं हुई है, जो निश्चित रूप से भविष्य पर विजय प्राप्त करा देती है। क्या अँग्रेजी राज्य, क्या उसमें चली आई सुधारकों की परम्परा दोनों ने विरासत में बहुत ही कम दिया है। विशाल तथा शक्ति सम्पन्न वैचारिक क्रान्ति को जन्म देने वाला महान नेतृत्व अभी तक भविष्य की वस्तु है। वर्तमान नवीन राज्यकर्त्ता राजनीति में इतने उलझे हुए हैं कि उनसे उक्त औसत के नेतृत्व की आशा रखना व्यर्थ है। नवीन मानवतावादी तथा बुद्धिवादी वैचारिक नेतृत्व को जन्म देना अब महान् भविष्य का निर्माण करने वाली नवीन पीढ़ी का कर्त्तव्य है।

नवीन युग के भारतीय द्रष्टा

(१) राजा राममोहन राय

नवीन सामाजिक आन्दोलन के लिए सन्तों के आदर्श की आवश्यकता है, परन्तु यह भी आवश्यक है कि आधुनिक सन्तों का आदर्श तुकाराम तक की सन्त परम्परा के आदर्श से कुछ अंशों में भिन्न हो। तुकाराम के समय तक जो सन्त हुए उनके काल में विद्यमान मानव निर्मित विश्व को यह ज्ञात न था कि बड़ी-बड़ी सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन करने अथवा नवीन संस्थाओं को जन्म देने का उत्तरदायित्व भी मानव ही पर है। रूढ़ि की शक्ति सनातन तत्त्व की तरह प्रबल एवं प्रभावी मालूम होती थी। व्यक्तिगत रूप से रूढ़ि पर आक्रमण करके अन्त में मानव रूढ़ि के प्रचण्ड दुर्गों को, पहाड़ों को रौंद सकता है, बड़े-बड़े आंदोलनों को जन्म देकर मानव इतिहास को पलटाकर नवीन सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना कर सकते हैं, इस तरह का भान उस समय साधारण मानव को छोड़ दीजिए, सन्त महन्तों में भी नहीं था। तुकाराम तक के सन्तों का इस बात का स्पष्ट मान या ज्ञान नहीं था कि अज्ञान तथा पाप का विस्तार करके बड़ी-बड़ी सामाजिक संस्थाएं समाज के स्वास्थ्य को बिगाड़ कर उसकी अवनति का कारण बनती है और इसीलिए इन सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन करने का महान उत्तरदायित्व प्रधान रूप से साधकों तथा मुमुक्षुओं पर है। सामाजिक विश्व का समूचा उत्तरदायित्व स्वयं मानवों पर ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और सामाजिक स्थिति को कायम रखना तथा उसमें परिवर्तन करना मानवों पर निर्भर है, इस बात को स्पष्ट रूप से समझना यही वास्तव में नवीन युग की विशेषता है। वर्तमान समय में बड़ी यन्त्रणाओं के साथ मानव को इस उत्तरदायित्व का ज्ञान हुआ है। यह ज्ञान वास्तव में मानव के प्राकृतिक स्वातंत्र्य का एक महान अन्वेषण है जो स्वयं उसने कर लिया है। मानव ने अपनी उत्पत्ति के काल से लेकर आज तक अपना जो विकास किया है उस विकास सोपान की हरेक सीढ़ी वास्तव में इस प्राकृतिक स्वातंत्र्य के विशेष अंश की खोज है। मानव की प्रगति का इतिहास उसके स्वातंत्र्य का इतिहास है। इससे उसकी मानसिक सामर्थ्य में निरंतर वृद्धि हो रही है। हां, इतना सच है कि इस स्वातंत्र्य की प्रतीति उसके लिए नवीन, महान और नैतिक उत्तरदायित्वों का निर्माण करती है जिससे उसके चित्त की अस्वस्थता अधिाक गहरी और विस्तीर्ण बनती है। अतीत के लोगों की भ्रान्तियों में पिशाच का उधम, शैतान, बेताल, भीषण राक्षस, देवताओं का प्रकोप आदि वस्तुएं विद्यमान थी और उनके कारण मानव का मन सदैव अस्वस्थ तथा भ्रम में पड़ा हुआ था और उस अस्वस्थता को नष्ट करने वाले मंत्र का ज्ञानी मान्त्रिक भी उसकी मदद के लिए प्रस्तुत रहता था। वर्तमान समय में विश्व के अर्थ को अधिक अच्छी तरह से समझने में मानव सफल हुआ है, अतएव वे राक्षसी तथा दैवी शक्तियाँ तिरोहित हुई हैं अवश्य, परन्तु आज का मानव यह भी भली भांति समझ चुका है कि पिशाची तथा राक्षसों की अपेक्षा मानव के अन्तरंग में विद्यमान दुष्ट वासनाएँ, अज्ञान, हिंसक प्रवृतियाँ तथा लोभ आदि मनोव्यापार ही उसके व्यक्तिगत तथा सामाजिक प्रपंच का विध्वंस करने की ताक में निरन्तर रहा करते हैं। अतएव मानसी स्वातंत्र्य की सुरक्षा करने के लिए नवीन युग उन सन्तों तथा धर्म संस्थापकों की याचना कर रहा है जो महान मानसिक सामर्थ्य का सम्पादन करने वाले सिद्ध हो। सत्य का निरंतर अन्वेषण तथा विश्व व्यापी मित्रता ये दो भावनाएँ मानसिक सामर्थ्य के कार्य तथा कारण हैं। उक्त दो प्रेरणाएं ही वस्तुतः मानव की आध्यात्मिक शक्ति है। यही मानव की दिव्यता है और वही सच्चे अर्थों में सन्त हैं जिसमें इस दिव्यता के दर्शन होते हैं।

उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में भारतवर्ष में समाज सुधारकों का नया धार्मिक आन्दोलन शुरू हुआ। उसमें मानव के सामाजिक उत्तरदायित्व के तथ्य को स्वीकार किया गया था। साथ-साथ इस आन्दोलन के नेताओं को इस बात का भी ज्ञान हुआ था कि इस क्रान्तिकारी उत्तरदायित्व के ज्ञान की सफलता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र आध्यात्मिक शक्ति की भी नितान्त आवश्यकता है। इस आन्दोलन के प्रथम नेता है राजा राममोहन राय। ये वास्तव में भारत के प्रथम आधुनिक सन्त थे। ये एक ऐसे प्रतिभावान, दिग्गज विद्वान् तथा त्रिकालदर्शी सन्त थे जिन्होंने व्यापक दृष्टिकोण से वैदिक संस्कृति का अध्ययन करके उसके शाश्वत तत्त्व का आकलन किया था। स्वयं स्थापित धर्म संगठन को उन्होंने ब्रह्म समाज यह नाम दिया। इसमें उनके द्वारा प्रदर्शित औचित्य इतिहास के बहुत गहरे तथ्य को सूचित करता है "ब्रह्म" शब्द उपनिषदों में विश्व के अन्तिम सत्य तथा मानवी अचिन्त्य चित शक्ति के बोधक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस शब्द में वह तत्व अभिव्यक्त हुआ है जो वैदिक संस्कृति का सार है, सर्वस्व है। पुराने परम्परागत पावित्र्यों का उच्छेद करने वाले समाज सुधारकों के ये पितामह आसन्न मृत्यु अवस्था तक भूतकाल से भीषण युद्ध करते रहे, परन्तु जो विचार भारतीय भूतकाल के अन्तरंग के चैतन्य का मूल स्रोत था उसे उन्होंने बड़े औचित्य के साथ अपनी विजय ध्वजा के नीचे निर्मित विचार मन्दिर के अन्तरतम आगार में स्थान दिया। राजा राममोहन राय इस सत्य को भली-भाँति जानते थे कि ब्रह्म चिन्तन से प्रबुद्ध आध्यात्मिक शक्ति मानवी समता के नवीन युग का निर्माण करेगी। पुरानी धर्म संस्थाओं ने मानव समाज के चारों ओर खड़ी की गई और युगों-युगों तक पोसी गई भेद भावों की तटबन्दी को उड़ा देने वाली शक्ति के निर्माण के कार्य का उन्होंने बीड़ा उठाया था। समान विवेक बुद्धि तथा समान संस्कृति का निर्माण करके माधवी एकता की स्थापना करना ही उनका उच्च आदर्श था और इसी से प्रेरित होकर उन्होंने "नवयुग" के आन्दोलन का सूत्रपात किया। उक्त आदर्श की प्राप्ति के लिए क्या जातिभेद, क्या वर्णभेद, क्या धर्म भेद, क्या देश भेद सबके संकीर्ण बन्धनों को तोड़कर मोड़कर उन्होंने "ब्रह्म" शब्द में उस विश्वतत्व को देखा जो एक महान भ्रातृभाव का प्रेरक था। ईश्वर की उपासना तथा मानवों की नैतिक एकता इनका मनोहर मेल ही सब धर्मों का निर्बाध रहस्य है। यह रहस्य संसार के धर्म संबंधी विरोधों का खण्डन करता है इस प्रकार के तत्व को भारतीय, ईसाई तथा मुसलमानी संसार के सम्मुख रखने में राजा राममोहन राय सर्वप्रथम थे। सन्त स्वदेश तथा विदेश, स्वधर्म तथा पर धर्म से परिचित नहीं हुआ करते। "आमुचा स्वेदेशे। भुवनत्रयाध्ये वास।" यही उनका स्वभाव होता है ब्रह्मसमाज के इसी तरह के आदर्शवाद का सम्यक्कथन निम्नलिखित दो श्लोकों में किया गया है :–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुविशालमिदं विश्वं पवित्रं ब्रह्मन्दिरम्।
चेतः सुनिर्मलं तीर्थं सत्यं शास्त्रमनश्वरम्॥
विश्वासो धर्ममूलं ही प्रीतिः परमसाधनम्।
स्वार्थनाशस्तु वैराग्यं ब्रह्मैरैवं प्रकीर्त्यते॥

अर्थ :—ब्रह्मसमाजी कहते हैं कि यह बड़ा ही विशाल विश्व ब्रह्म का पवित्र मन्दिर है, शुद्ध चित्त ही पुण्य क्षेत्र है, सत्य ही शाश्वत धर्मशास्त्र है, श्रद्धा ही धर्म का मूल है, प्रेम ही परम साधन है और स्वार्थ नाश ही वैराग्य है।

क्या राजनीतिक सुधारवाद, क्या सामाजिक स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए प्रवृत्त समाजशास्त्रों का सुधारवाद दोनों में संकीर्णता रहती है। राजनीतिक सुधार के आंदोलन में या तो नैतिक गहराई का अभाव रहता है या शास्त्रीय सत्य का पीठ बल नहीं रहता। समाजशास्त्रों के सुधार सम्बन्धी आन्दोलन में शास्त्रीय सत्य तथा नैतिक श्रद्धा रहती है अवश्य, परन्तु उसमें मानवी एकता की धारणा दुर्बल होती है। क्रान्ति के आन्दोलन में चरम कोटि के त्याग का स्फुरण अवश्य रहता है, परन्तु क्रान्ति के ध्येयवाद में नैतिक विवेक का विसर्जन किया जाता है अतएव क्या राजनीतिक सुधारवाद, क्या सामाजिक सुधारवाद, क्या क्रान्तिवाद तीनों में मानव की आध्यात्मिक शक्तियां सर्वांगीण रूप में अभिव्यक्त नहीं हो पाती। सन्तों के सुधार के आन्दोलन में ही वे शक्तियाँ पूर्णतया अभिव्यकत होती हैं। राजा राममोहन राय के चरित्र में इस तरह का "सन्त स्वभाव" प्रकट हुआ है। परम कोटि के त्याग के लिए प्रस्तुत होकर उन्होंने सामाजिक सुधार तथा राजनीतिक क्रान्ति दोनों ध्येयों को जागृत रखा था। इन दोनों ध्येयों का पोषण उनकी आध्यात्मिक भावना करती थी।

राजा राममोहन राय अपनी मामा के लाडले थे, बड़े मातृभक्त थे। परन्तु माता मूर्तिपूजक थी और मूर्तिपूजा का त्याग करने वाले पुत्र का मुंह भी न देखने का प्रण किया था। इसके फलस्वरूप राजा राममोहन को स्थायी रूप से माता के वियोग को सहन करना पड़ा। फ्रांस की राज्य क्रान्ति की पराजय से वे निर्विण हुए थे। फ्रांसीसी जहाज में पर्यटन करते हुए उन्हें सहसा फ्रांस की राज्यक्रान्ति की विजय का शुभ संवाद मिला। आनन्द के आवेग में जहाज की सीढ़ियों से शीघ्र उतरते हुए उनका पैर फिसला और वे गिर पड़े, उनके पैर को सख्त चोट पहुँची। परन्तु आनन्द में उन्हें उस चोट का भान न रहा। फ्रांसीसी कप्तान को बधाई देने के लिए उसी दर्द भरे, आहत पैर के सहारे चल पड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुतः इस महान सन्त की राजनीतिक क्रान्ति तथा समाज़ सुधार की तह में आध्यात्मिक शक्ति विद्यमान थी।

सामाजिक परिवर्तन के विश्वव्यापी आन्दोलन का निर्माण यदि परमार्थ के आधार पर हुआ तो ही संसार तरने में समर्थ होगा। बिना परमार्थ के मानवी संसार असार होकर अस्त व्यस्त तथा नष्ट होगा। संत की जिज्ञासा तथा निर्बाध नीति तत्वों की अराधना ही सच्चे अर्थों में परमार्थ है। यह नितान्त आवश्यक है कि इस परमार्थ का उत्तराधिकारी मानवता के आंदोलन को प्राप्त हो।

२. लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, कर्मयोग की मीमांसा

बीसवीं सदी में भारतवर्ष में दर्शन की पार्श्वभूमि का निर्माण करने वाले अनेकों प्रभावी विचार-प्रवतर्क उत्पन्न हुए। इनमें लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, योगी अरविन्द तथा भाई मानवेन्द्रनाथ राय इन महानुभावों के विचारों में विशेषता के दर्शन होते हैं। इनके विचारों का संक्षेप में परामर्श करके हम वैदिक संस्कृति के विकास की प्रस्तुत समीक्षा को समाप्त करेंगे।

बुद्ध के उदय से लेकर अँग्रेजी राज्य की स्थापना के समय तक के काल में भारत वर्ष में निवृत्तिवाद का अधिक प्रभाव था। क्या संन्यासी सन्त, क्या वानप्रस्थ का स्वीकार न किए हुए सन्त दोनों के लिए निवृत्तिवाद की गेरूई एवं तेजस्वी छटा बिना गेरुए चीवर के ही पारमार्थिक शुचिता के वलय का निर्माण करती थी। इन्द्रियगम्य विश्व के ज्ञान को भ्रान्ति अथवा बन्धन-मात्र समझकर अन्तर्मुख होते हुए पारलौकिक तत्त्व के रंग में रंगने वाला ज्ञान ही उस बन्धन को नष्ट करता है, यही बुद्ध उस युग का स्वामित्व करती थी। इस बाह्य विश्व की उत्कृष्ट अनुभूति ही पाश्चात्य संस्कृति की मूलभूत शक्ति है। इस पाश्चात्य संस्कृति ने सहस्त्रों वर्षों से अन्तर्मुख बने हुए भारतीय ज्ञान को अपनी गुहा से बाहर निकलने के लिए बाध्य किया। इस समाधि भग्न अतएव अस्वस्थ ज्ञान को तत्वज्ञान का स्वरूप भारतीय राजनीति असन्तोष के जनक ने लोकमान्य तिलक ने दिया। बाह्य विश्व की उस अनुभूति परम्परागत संस्कृति के मूलभूत अथवा बीज भूत तत्त्व के अधिष्ठान से पूर्ण तथा भिन्न पाश्चात्य संस्कृति की प्रतिध्वनि मात्र नहीं है, उसे अपनी जन्म भूमि की विचार पद्धति का अधिष्ठान प्राप्त कराने का महत्त्वपूर्ण कार्य लोकमान्य तिलक ने किया और यह अधिष्ठान है भगवद् गीता। भगवद् गीता के स्वीकार का कारण उन्होंने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में निम्नानुसार बतलाया है। ''इसी में कर्म अकर्म के सारे बीज हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और स्वयं भगवान ने निश्चयपूर्वक यह आश्वासन दिया है कि इस धर्म का स्वल्पमात्र आचरण भी बड़ी-बड़ी आपत्तियों से बचाता है। इससे अधिक और क्या चाहिए। सृष्टि का नियम है कि बिना किए कुछ नहीं होता। इस नियम को भली-भाँति समझकर तुम केवल निष्काम बुद्धि से युक्त कर्ता बनो। इतना ही पर्याप्त है। गीता इसलिए नहीं की गई कि केवल स्वार्थ परायण बुद्धि से गृहस्थी का निर्वाह करके थके-माँदे लोगों का कालयापन हो या गृहस्थी का त्याग करने के लिए लोगों की तैयारी हो। सच तो यह है कि संसार या गृहस्थी ही मोक्ष की दृष्टि से कैसे चलाए, संसार में मानव का वास्तविक कर्तव्य क्या है, आदि का तात्त्विक दृष्टि से उपदेश देने के लिए ही गीताशास्त्र का प्रवर्तन हुआ है। अतएव हमारी अन्तिम प्रार्थना इतनी ही है कि हरेक व्यक्ति अपने पूर्व वय में ही गृहस्थाश्रम या संसार के इस प्राचीन शास्त्र को हो सके उतने शीघ्र समझकर ही रहे। (गीता रहस्य, प्रस्तावना, पृ० १५) गीता को ही क्यों चुना गया इसे स्पष्ट करते हुए लोकमान्य तिलक कहते हैं "मोक्ष भक्ति तथा नीति धर्म इनमें आधिभौतिक ग्रन्थकर्ता को जो विरोध मालूम होता है वह अथवा संन्यास मार्ग के अनुयायियों के मतानुसार ज्ञान और कर्म में दृश्यमान विरोध, दोनों यथार्थ नहीं हैं, ब्रह्मविद्या तथा भक्ति का जो मूल तत्व है वही नीति तथा सत्कर्म की नींव है इसे बतलाकर इहलोक में सन्यास, कर्म तथा भक्ति या सुयोग्य समन्वय करके मानव अपने जीवनयापन के किस मार्ग का अनुसरण करे इस सम्बन्ध में भी गीता एक निश्चित निर्णय पर पहुँची है। इस तरह गीता यह ग्रन्थ प्रधान रूप में कर्मयोग का ग्रन्थ है। अतएव सब वैदिक ग्रन्थों में उसे "ब्रह्मविद्यान्तगते" (कर्म) योगशास्त्र के नाम से अग्रस्थान मिला है। जब प्राचीन शास्त्र अपने समय के अनुसार विकास की यावच्छक्य चरम अवस्था तक पहुँचे तब वैदिक धर्म को वह अन्तिम, ज्ञान मूल, भक्ति प्रधान तथा कर्मयोग पर रूप प्राप्त हुआ था, जो वर्तमान समय में प्रचलित वैदिक धर्म का भी मूलस्रोत है। गीता में इसी रूप का प्रतिपादन किया गया है अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि सांप्रत हिन्दू धर्म के तत्त्वों को संक्षेप में परन्तु साथ-साथ निस्सन्दिग्ध रूप से विशाद करने वाला गीता की टक्कर का दूसरा ग्रन्थ संस्कृत साहित्य में नहीं है। (गीता रहस्य, प्रस्तावना, पृ० ११)। अक्सर यह आक्षेप किया जाता है कि नवीन युग के ज्ञान, उसकी समस्याओं तथा उत्तरदायित्वों का स्वरूप ही इतना भिन्न है कि दो हजार बरसों पूर्व लिखी गई गीता उनके विषय में मार्गदर्शन कैसे कर सकेगी? इस सम्बन्ध में गीता रहस्य के कर्त्ता का कथन यों है—गीता में प्रणीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...सत्य तथा अभय है अवश्य, परन्तु जिस समय जिस रूप में वह कहा गया ...देश काल में, उस परिस्थिति में, बहुत ही परिवर्तन हुआ है और इसलिए ...लोगों की आंखों में इस ग्रन्थ की आभा पूर्ववत् नहीं रही, अपितु धुंधली ...गई है। ....सिवा इसके अनेकों नवीन विद्वानों की आजकल यह धारणा हो ...है कि वर्तमान समय में आधिभौतिक ज्ञान की पाश्चात्य देशों में विपुल ...हुई है जिसे फलस्वरूप अध्यात्मशास्त्र के अनुसार प्राची कर्मयोग का जो ...वन उसमें किया गया है, वह आधुनिक काल के लिए पूर्णतया उपयोगी ...पि सिद्ध नहीं हो सकता। उपर्युक्त धारणाएं भ्रान्त है, निर्मुल हैं। मोक्ष धर्म ...नीति दोनों आधिभौतिक ज्ञान की परिधि के बाहर के विषय हैं और इनके ...न्ध में प्राचीन काल में हमारे शास्त्रकारों ने जिन सिद्धांतों की स्थापना की ...उससे परे मानव ज्ञान की प्रगति अभी तक नहीं हो पाई है। इतना ही नहीं, ...चात्य देशों में भी अध्यात्म के दृष्टिकोण से उपर्युक्त प्रश्नों का ऊहापोह अब ...चल रहा है और वहां के आध्यात्मिक ग्रन्थकर्ताओं के विचार गीता शास्त्र ...सिद्धांतों से बहुत भिन्न नहीं हैं। गीता रहस्य के विभिन्न अध्यायों में किये ...तुलनात्मक विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। .....अर्थात् यह सत्य है ...दोनों में सूक्ष्म भेद है और ये भेद बहुत ही है। यह निर्विवाद है कि जो ...क्ति इन सूक्ष्म भेदों से परिचित होना चाहता है इन सिद्धान्तों के सम्पूर्ण ...पादन तथा विस्तार की जानकारी प्राप्त करने की अभिलाषा रखता है उसके ...र पाश्चात्य ग्रन्थों का मूल रूप में अवलोकन करना परमावश्यक है। ...चात्य विद्वानों का कहना है कि कर्माकर्म विवेक अथवा नीतिशास्त्र पर ...प्रथम सुव्यवस्थित ग्रन्थ यूनान के दार्शनिक अरस्तु ने लिखा। परन्तु हमारे ...में अरस्तु के भी पूर्व महाभारत तथा गीता में इन प्रश्नों का विचार अरस्तु ...भी अधिक व्यापक तथा तात्त्विक दृष्टिकोण से किया गया है और अध्यात्म ...दृष्टि से गीता में प्रतिपादित नीति तत्त्वों से अलग स्वतंत्र नीतितत्त्व अब तक ...सार में उत्पन्न हुआ है। संन्यासी की तरह रहकर शान्ति के साथ तत्त्वज्ञान के ...चारों में जीवन बिताना समीचीन है अथवा विभिन्न प्रकारों की राजनीतिक ...थल-पुथल में सम्मिलित होना या सहयोग देना उचित है, इस सम्बन्ध में ...रस्तु कृत स्पष्टीकरण गीता में विद्यमान है और मनुष्य जो कुछ पाप करता है सो अज्ञान से ही करता है यह सुकरात का मत भी एक तरह से गीता में समाविष्ट हुआ है, क्योंकि गीता का सिद्धांत है कि ब्रह्मज्ञान से जिस व्यक्ति में ...मबुद्धि का उदय हुआ है उससे पापकर्म किया जाना सर्वथा असंभव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एपिक्युरिअन तथा स्टोइक सम्प्रदाय के यूनानी पण्डितों का मत है कि चरम अवस्था तक पहुँचे हुए परमज्ञानी पुरुष का आचरण ही नीति की दृष्टि से सब लोगों को आदर्श के रूप में मान्य है। उपर्युक्त मत भी गीता के लिए ग्राह्य है और इस सम्प्रदाय के समर्थकों द्वारा किया गया परम ज्ञानी पुरुष का वर्णन तथा गीता के स्थित प्रज्ञा के लक्षण दोनों समान हैं। इसी तरह हरेक मानव का मानव जाति के हित के लिए निरन्तर यत्नशील रहना ही यथार्थ में नीति की चरम सीमा या निष्कर्ष यह मिल, स्पेन्सर, कान्ट आदि आधिभौतिकवादियों का कथन भी गीता में वर्णित स्थित प्रज्ञ के "सर्वभूत हिते रत:" जैसे बाह्य लक्षण में संगृहीत हुआ है और काण्ट तथा ग्रीन की नीतिशास्त्र की उपपत्ति तथा उनके इच्छा स्वातंत्र्य सिद्धांत भी गीता में उपनिषदों के ज्ञान के आधार पर दिए गए हैं। (गीता रहस्य, प्रस्तावना, पृ० ९, १०)

उक्त स्थान पर प्राचीन भारतीय संस्कृति का पाश्चात्य संस्कृति के साथ सामजंस्य दिखाकर लोकमान्य तिलक ने यह अतीव उदात्त अभिप्राय व्यक्त किया है कि मानव जाति का नीतिशास्त्र वास्तव में एक ही है। पाश्चात्य तथा पोर्वात्य संस्कृतियों का सुन्दर समन्वय करने का यह प्रयत्न बड़ा ही समझदार एवं सराहनीय दिखाई देता है। परन्तु यह एक ऐसा प्रयत्न है जो एक प्राचीन एवं पवित्र धर्मग्रन्थ को आधारशिला मानकर हो रहा है अतएव इसका यश समिति ही रहा, क्योंकि भगवद् गीता का स्पष्ट आशय है कि इसमें (यानी भगवद् गीता में) वह अन्तिम सत्य तलिविप्रद हुआ, जिसका निवेदन साक्षात् सर्वज्ञ परमात्मा ने स्वयं अपने मुख से किया था। वर्तमान युग में उक्त आशय का प्रभाव नहीं रहा है दूसरी बात यह है कि भगवद् गीता की रचना तार्किक सुसंगति तथा बुद्धि आदि विवेचन पद्धति के अनुसार नहीं हुई है। वास्तव में भगवद्गीता की विचार पद्धति कुछ ऐसी है जो भावुक, श्रद्धालु अथवा कल्पना तरंगों में मन्मय होने वाले उच्चे कोटि के धार्मिक संस्कारों से सम्पन्न व्यक्ति को काव्यमय प्रतीति कराने में समर्थ हैं। माना कि भगवद्गीता में ऐसे अनेकों सिद्धांत हैं जो तीव्रतम बुद्धिवाद के निष्कर्ष पर रहकर स्वीकृत हुए हैं, सूक्ष्म प्रज्ञा से ज्ञात है और दीर्घ तथा गहरी अनुभूति के आधार पर परीक्षित एवं खरे उतरे हैं। परन्तु इनकी परस्पर संगति तथा समर्थन साधक और बाधक तर्कशास्त्र के आधार पर नहीं किया गया है अतएव शंकराचार्य से लेकर लोकमान्य तिलक तक अनेकों मनीषियों ने भगवद्गीता को आत्मसात करके उसे निश्चित बौद्धिक आकार देने का प्रयत्न किया है। तीसरी चीज यह है कि भगवद्गीता में प्रतिपादित पुनर्जन्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सिद्धान्त एक विशुद्ध श्रद्धेय तत्त्व है। सिवा श्रद्धा के या सिवा कल्पना इस बात के लिए कोई अन्य प्रमाण नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा अनगिनत जन्म मरणों का चक्कर काटना पड़ता है। विश्व के अनेकों महान संसार के विषय में इस सिद्धांत का स्वीकार नहीं करते। चौथी बात यह कि भगवद्गीता की स्वर्ग नरक की कल्पना, सृष्टि की उत्पत्ति स्थितिलय कल्पना अथवा ब्रह्मादि देवताओं की कल्पना तीनों का महत्त्वपूर्ण तात्त्विक अन्ततोगत्वा पौराणिक कथाओं के स्तर से अधिक ऊँचा नहीं सिद्ध हो ता। पांचवीं चीज यह है कि भगवद्गीता के कर्माकर्म विचार के मूल में जो कों तत्त्व हैं उनमें सहज कर्म का तत्त्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गीता ने इस का चातुर्वर्ण्य-युक्त समाज रचना, से मेल बिठाया है, सहज कर्म का अर्थ प्रत्येक वर्ण का परम्परा से प्राप्त कर्त्तव्य। परन्तु स्मार्त धर्मशास्त्र की अथवा वद्गीता की वर्ण व्यवस्था की कल्पना सार्वदेशीय नहीं है, सार्वकालिक ज रचनाओं पर लागू होने वाली कल्पना नहीं है। वह वास्तव में हिन्दू ज की प्राचीन ऐतिहासिक परिस्थिति से उत्पन्न हुई है। प्रत्यक्ष अनुभव से समाज शास्त्र की कसौटी से अब यह सिद्ध हुआ है कि वर्तमान काल की ज धारण की समस्याओं को सुलझाने में उक्त कल्पना सहायक नहीं होती। बात यह है कि जिस काल में भगवद्गीता की रचना हुई थी उस काल समाज संस्थाएं स्थितिशील थी, एक ही रूप में दीर्घकाल तक बनी रहती प्रकृति की वनस्पतियों तथा प्राणियों की आकृतियों की तरह अनेक आकार सनातन प्रतीत होते थे। परन्तु गत तीन सौ वर्षों में मानव समाजों में मौलिक परिवर्तन हुआ है। आजकल समस्त मानवजाति एक ऐसे युग में प्रवेश कर चुकी है जो निरन्तर परिवर्तनशील याने गतिशील समाज संस्थाओं का युग है। अतएव मानव के उत्तरदायित्वों, कर्त्तव्यों तथा ध्येयों का 'कुछ नवीन ही रूप दृश्यमान हो रहा है यह बात नहीं है कि वर्तमान युग में केवल भौतिक शास्त्रों की ही उन्नति हुई है, अपितु वनस्पतियों, प्राणियों तथा मानवों के भी जीवन पर प्रकाश डालने वाले शास्त्रों का विकास एवं वृद्धि हुई है। मनोविज्ञान को तथा सामाजिक शास्त्रों को भौतिक शास्त्र कहना उचित नहीं है। मानवी इतिहास का तत्त्वज्ञान एक ऐसा नवीन शास्त्र है जो मानव के जीवन पर चारों ओर से प्रकाश डालता है। तात्पर्य, मानव समाज तथा प्रकृति के स्वरूपों तथा पारम्परिक सम्बन्धों को जो नवीन अर्थ वर्तमान समय में ज्ञात हुए हैं उनका भी परामर्श लेना नीतिशास्त्र के लिए अनिवार्य हो उठा है। इसके बिना यह असंभव है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानवी संसार को शुभ तथा मंगल रूप देने वाला कर्मयोगनिष्पन्न हो। वर्तमान काल के लिए गतिशील समाज व्यवस्था का अनुसन्धान करने वाला कर्मयोग शास्त्र नितान्त आवश्यक है। परिवर्तनशील अवस्था के अनुरूप स्वभावश कार्यों का स्वरूप भी बदलता है। देश तथा काल के अनुसार मानव स्वभाव अनेक रंगों तथा आकारों को धारण करता है, अनपेक्षित परिस्थिति को प्राप्त होते ही मानव को अभिनव मार्ग का अन्वेषण करना पड़ता है। स्वभाव यह कोई स्थिर घटना नहीं है। खासकर मानव-स्वभाव एक अत्यन्त लचीली और अगणित रूपों को धारण करने वाली वस्तु है। अतएव स्वभाववश कर्म को निश्चित करने की स्थिर कसौटी सर्वथा दुर्लभ है।

लोकमान्य तिलक ने अन्तर्मुख अध्यात्मवाद को, ऐहिक प्रपंच को यशस्वी एवं कल्याणमय बनाने वाले कर्मयोग का मूलभूत शास्त्र बनाने का बड़ा ही दुर्घट प्रयत्न किया। त्रिगुणात्मक त्रैलोक्य के विषय में सम्पूर्ण विरक्ति ही सच्चे अर्थों में निस्त्रैगुण्य है। यद्यपि जनक, रामचन्द्र, कृष्ण, युधिष्ठिर, ध्रुव प्रह्लाद आदि के पौराणिक उदाहरणों के आधार पर यह बात मन पर अंकित होती है कि उक्त निस्त्रैगुण्य से या सर्वांगीण वैरागय से नैष्कर्म्य को स्वायत्त करके इस भूलोक के मानवी प्रपंच के अभ्युदय को प्राप्त करने वाला पराक्रम उत्पन्न होता है तो भी इस सिद्धान्त में विद्यमान वैचारिक विसंगति का पूर्णतया परिहार नहीं किया जा सकता। सर्व इच्छाओं तथा क्रियाओं को चरणों पर समर्पित करके उसकी शरण में पहुंचकर एक निमित्तशास्त्र बने रहने की कल्पना का अपनी आत्मा तथा विश्व का उद्धार करने वाला कर्म के या सामाजिक प्रपंच का निर्माण करके उसे सुचारू रूप से चलाने वाले कर्म के साथ समन्वय या सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध कैसे स्थापित करें, यह भी एक महान रहस्यमय समस्या है।

३. योगी अरविन्द घोष, भूलोक का दिव्य जीवन

लोकमान्य तिलक ने भारतीय आध्यात्मिक विचार को नवीन दिशा दिखाई। पदार्थ-विज्ञान, सृष्टिशास्त्र, इतिहास, विकासवाद, मनोविज्ञान तथा सामाजिक शास्त्र आदि नवीन शास्त्रों की उन सम्पतियों का जो कि आध्यात्मिक विद्या के लिए उपकारक या उसे अधिक अर्थपूर्ण बनाने वाली हो अथवा अध्यात्म के सिद्धान्तों को नवीन रूप प्रदान करने वाली या उनमें परिवर्तन करने वाली सिद्ध हो—अन्वेषण करके आध्यात्म विद्या का नवनिर्माण करने की आवश्यकता उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ीत हुई थी। परन्तु जैसा कि उन्होंने प्रस्तावना में कहा है कि समूचा जीवन नीतिक कलहों में बीत जाने के कारण अपूर्णता को पूर्ण करने के लिए य ही शेष न रहा। इस तरह का प्रयत्न योगी अरविन्द ने किया है। उन्होंने वद्गीता, ऋग्वेद तथा उपनिषदों के अथवा भारतीयों की अध्यात्मविद्या के भी सम्प्रदायों के गूढ़ अर्थों को बड़ी विलक्षण, अभिनव समृद्ध तथा गंभीर ली के सहारे अभिव्यक्त किया है और दृश्यमान सृष्टि, अदृश्य आध्यात्मिक क्तियों का विश्व, मानवी अथवा दिव्य आदर्शवाद सबका परामर्श करने वाले ध्यात्मवादी तत्त्वज्ञान की उन्होंने नवीन रूप में रचना की है।

लोकमान्य तिलक की शैली और योगी अरविन्द की शैली में बड़ा लिक भेद है। लोकमान्य तिलक कुछ ऐसी शैली को अपनाते हैं जिससे त्यन्त गहन भावार्थ भी साधारण सुशिक्षित तथा जिज्ञासावान व्यक्ति की बुद्धि की पहुँच में आ सके और वह भावों की गहराई के कारण घबरा न जाए। संक्षेप में तिलक को शैली में वह सुविधा है जिससे पाठक के पैर जमीन पर हीं रहते हैं, तर्क की सुसंगता स्पष्ट रहती है। वे वाचक को विचारों के उस रम्य कुहासे में कभी नहीं ले जाते जो परम्परागत अध्यात्मवादी परिभाषा के विलास से निर्मित होता है इसके विपरीत, परिचित तथा अपरिचित गूढ़ आध्यात्मिक कल्पनाओं के विशाल विस्तार से योगी अरविन्द का प्रतिपादन तज्ज्ञ वाचक को भी चक्कर में डाल देता है। तज्ज्ञ वाचक को भी कई बार यह मालूम होता है मानों वह अनन्त दूरी पर स्थित तारों तथा तेजों मेघों के बीच निराधार अवस्था में फेंका गया हो। विचारों की मंजिलें भली-भाँति समझ में आते-आते सहसा ओझल हो जाती हैं। विज्ञान तथा दर्शन के पाश्चात्य तथा पौर्वात्य पारिभाषिक शब्दों और कल्पनाओं को अरविन्द के प्रतिपादन में भरसक पिरोया गया है अतएव उनकी सहायता से सिद्धांतों का अनुसरण करने का हम सब प्रयत्न करते हैं, परन्तु हम कहां खड़े हैं, कितने पानी में हैं इसकी थाह को पाना भी कई बार मुश्किल हो उठता है। उस प्रतिपादन के तत्त्वों तथा सिद्धांतों की तेजोमय मूर्तियां सायंकाल के क्षितिज पर अंकित, प्रतिक्षण परिवर्तनशील चेतोहर आकृतियों की तरह निरन्तर बदलती रहती है। सायंकालीन क्षितिज पर विलास करने वाली किरणों की बहुरंगी सृष्टि को स्पर्श करना जिस तरह असंभव है, ठीक उसी तरह अरविन्द की विचार सृष्टि के ऊपर के स्तरों का आकलन करना बुद्धि के लिए असंभव हो उठता है। आध्यात्मिक भावना के सहारे इन स्तरों की अनुभूति संभव है, परन्तु बुद्धि के सहारे इनकी कल्पना नहीं की जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती और कल्पना करना भले ही संभव हो, उन्हें सिद्ध तो किया ही नहीं जा सकता। इन विचारों में तर्क-संगतता है, परन्तु उपपत्ति बहुत कम है। भव्य भावनाओं का आविष्कार करने वाली गूढ़वादी काव्य की तरह उक्त प्रतिपादन में औचित्य संवेदनाओं का निर्माण करने की शक्ति है। उसमें आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तों तथा समस्याओं से वंचित होने वाले आध्यात्मिक अभिप्राय अधिकार पूर्ण वाणी में कहे गये हैं। विज्ञान के ये सूचित अर्थ विज्ञान की परिधि के बाहर की आध्यात्मिक विज्ञान संवेदनाओं के आधार बनते हैं। किसी भव्य प्रसाद के स्तम्भों के पदतल में या उनके ऊपर की नोक पर खुदी गई और बाहुओं से हाथों से या मस्तक से आधार प्रदान करने वाली मूर्तियों की ही तरह विज्ञान के अभिप्राय अरविन्द के अध्यात्म-प्रासाद को आधार प्रदान करते हैं वह आधार वास्तव में एक आभास मात्र है।

भगवद्गीता के सन्देश को स्पष्ट करने के लिए योगी अरविन्द ने गीता पर विस्तृत निबन्ध लिखे हैं। समाज की रचना तथा विचार पद्धति में निरन्तर इतिहासिक विकास होता रहता है। अतएव सहस्रों वर्ष पूर्ण युग की गीता के विचार नवीन युग के लिए किस तरह स्फूर्तिदायी हो सकेंगे इस प्रश्न को बार-बार उपस्थित करके उन्होंने उसका उत्तर दिया है। वे कहते हैं :-

जिस समय भगवद्गीता की रचना हुई उस समय से लेकर आज तक अनेक लम्बे युग बीत गये हैं। उस रचना के उपरान्त विचारों तथा अनुभवों में अनेकों परिवर्तन हुए हैं। इस अवस्था में भी वर्तमान मानव मन के लिए भगवद्गीता के सन्देश का व्यवहारोपयोगी मूल्य अथवा उसकी आध्यात्मिक उपयुक्तता कायम रही है। मानव-मन सदैव आगे बढ़ता रहता है, दृष्टिकोण में परिवर्तन करता है और विचारों के सार को रूप प्रदान करता है इस तरह के परिवर्तनों के कारण पुरानी विचार पद्धति निरर्थक बन जाती है। यदि उसकी सुरक्षा करना चाहें तो उसके मूल्यों को व्यापक बनाना पड़ता है, उसके लिए मर्यादा रखनी पड़ती है। उसमें परिवर्तन करना होता है परन्तु यह संभव है कि प्राचीन सिद्धान्तों में दीर्घ जीवन शक्ति का निवास हो, उसकी सीमाएं भी निर्धारित हों। वे निरर्थक भी हो उठते हैं, परन्तु ये दोष उनकी रचना से सम्बद्ध रहा करते हैं। उनकी तह में विद्यमान सत्य की संजीव दृष्टि उनके निरन्तर प्रामाण्य तथा उनकी अवित्ता को कायम रख सकती है। गीता यह पुस्तक ही कुछ ऐसी है जिसकी रचना सचमुच असाधारण है, उसमें ताजगी है, उसका सच्चा सार पूर्णतया नवीन है। अनुभव में उसे पुनरपि नवीनता प्राप्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के सभी धार्मिक विचारों पर उसका प्रभाव है। उसका प्रभाव केवल तात्त्विक और विशिष्ठ नहीं है, वह साक्षात् तथा सजीव है, विचारों तथा कृतियों पर वह प्रभाव है। वह एक सामर्थ्यवान रचना करने वाला अंश है जो राष्ट्र तथा संस्कृति के जीर्णोद्धार अथवा नव-जीवन के लिए आवश्यक है। एक अधिकार सम्पन्न वाणी ने (लोकमान्य तिलक) हाल ही कहा है कि हमारे लिए नितान्त आवश्यक आध्यात्मिक जीवन के आध्यात्मिक सत्य के दर्शन गीता में होते हैं।

वेदों तथा उपनिषदों के विचारों के निचोड़ का सुचारु रूप से संग्रह करके गीता धैर्य के साथ आगे बढ़ती है, क्योंकि पवित्र धर्म ग्रन्थ वास्तव में अन्तस्थल में निहित स्वयं प्रकाश सत्य का शब्द रूप आविष्कार है। अन्तस्थल में विद्यमान वह वेद ही उसकी आधारशिला है। शब्द की तुलना में सत्य महान है। धर्मग्रन्थों के शब्द बन्धन विभ्रमों का निर्माण करते हैं। ईसाई धर्म के प्रेषित ने अपने शिष्यों को चेतावनी दी कि शब्द नाश करता है और अभिप्राय तारता है। एक ऐसी मंजिल आती है जहां धर्मग्रन्थ की उपयुक्तता आप ही आप समाप्त होती है।

भगवद्गीता के उत्तर से यह निर्णय नहीं निकलता जो विद्यमान मानव जाति के सम्मुख उपस्थिति सम्पूर्ण प्रश्न को सब प्रकार से सुलझाने वाला सिद्ध हो। वह उत्तर अधिक प्राचीन मनःस्थिति से मेल खाता है। अतएव आधुनिक मन पर सामूहिक प्रगति का जो बोझ पड़ता है वह उसके साथ मेल नहीं खाता। यह पुकार सामाजिक जीवन की है, इसी में अन्ततोगत्वा वह आध्यात्मिक ध्येय मूर्त रूप धारण करेगा जो अधिक महान बौद्धिक नैतिक तथा गतिशील होगा। गीता का उत्तर इस पुकार के अनुरूप नहीं है। (गीता पर लिखे गये निबन्ध, पृ० ५०७)।

लोकमान्य तिलक ने गीता के जिस रहस्य का प्रतिपादन किया उसी को योगी अरविन्द ने गूढ़वाद की तथा तत्त्वज्ञान की अद्यावत आध्यात्मिक परिभाषा में कहा। परन्तु "लोकसंग्रह के लिए कर्मयोग" की कल्पना को स्वायत्त करके उसे पर-पारे पहुंचकर योगी अरविन्द ने कर्मयोग का समर्थन किया है। योगी अरविन्द की विचार पद्धति गीता रहस्य में बीज रूप में अवश्य है, परन्तु उसका विस्तार तथा परिष्कार पूर्णतया अभिनव याने नवीन विचारों से समृद्ध है। योगी अरविन्द ने आध्यात्मिक दृष्टि को सम्पूर्ण वैभव प्रदान किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगी अरविन्द ने विश्व के दो स्वभावों का प्रतिपादन किया है–एक है भौतिक अविद्यामय प्रकृति और दूसरी दिव्य, कल्याणमय तथा चैतन्यमय पराप्रकृति पहली प्रकृति बन्धनकारी तथा अज्ञानमय है और दूसरी स्वातंत्र्यमय एवं सम्पूर्ण ज्ञानमय। इन दोनों प्रकृतियों को ध्यान में रखकर गीता ने वे आदेश दिए हैं जो मानवी विकास की विभिन्न ऊँच-नीच अवस्थाओं के अनुसार है। अन्तिम अवस्था में मानव सम्पूर्ण दिव्य जीवन का अधिकारी होता है, पुरुषोत्तम की पराप्रकृति से एकरूप होता है दिव्य जन्म की प्राप्ति होकर दिव्य कर्म का प्रारंभ होता है ज्ञान, भक्ति तथा कर्म का महान समन्वय सम्पन्न होकर पूर्ण योग निष्पन्न होता है क्या यह ज्ञान, क्या भक्ति, क्या कर्म विशुद्ध मोक्षावस्था का महत्तम आविष्कार है। विश्वात्मक पुरुषोत्तम की यह चिन्मय लीला है। इसमें हृदयस्थ परमात्मा के विशुद्ध संकेत की अभिव्यक्ति होती है। यह अवस्था निवति पर संन्यास योग नहीं है। संन्यासमय मोक्ष ज्ञान के इस ओर की अवस्था है, वह पूर्णावस्था या चरम अवस्था नहीं। लोकमान्य तिलक यह कहने का साहस न कर सके, क्योंकि उन्होंने आद्य शंकराचार्य के (ज्ञानादेव तु केवल्यम्) याने ''ज्ञान से ही केवल्य'' या (ज्ञान से ही मोक्ष) के सिद्धान्त को मान्यता दी थी। अतएव वे यह कहने पर बाध्य हुए कि ज्ञानवान व्यक्ति लोकसंग्रह के लिए कर्म करता है अवश्य, परन्तु मोक्ष से कर्म का साक्षात् सम्बन्ध नहीं है। योगी अरविन्द ने इस स्थिर सिद्धान्त की घोषणा की कि ज्ञान विश्वव्यापी प्रेम (भक्ति) तथा कर्म तीनों मोक्षावस्था के, पुरुषोत्तम अवस्था के ही आविभाज्य अंश हैं।

भाववादी तत्त्वज्ञान और आधुनिक विज्ञान की सम्मतियों को ध्यान में रखकर अपने ''दिव्य जीवन'' (The Life Divine) नाम के महा निबन्ध में योगी अरविन्द ने दिव्य परा प्रकृति की बड़ी ही विस्तृत मीमांसा की है। जड़वादी विचार पद्धति के आशय की यहां समुचित समीक्षा की गई है। विकासवाद को स्वीकार करके भौतिक तथा जड़ विश्व से लेकर ईश्वर तक के विश्व विकास का विज्ञान चित्र उक्त महान निबन्ध में खींचा गया है उसमें सांख्यदर्शन के सत्कार्यवादी तर्कशास्त्र की उपयोगी एक विलक्षण अर्थ में किया गया है। वहां विकास की सोपान परम्परा निम्नानुसार मानी गई है–जड़ तथा निरिन्द्रिय जगत, वनस्पति सृष्टि, मनः सम्पन्न प्राणी, ज्ञान सम्पन्न मानव और अन्त में ईश्वरीय जीवन। सांख्यदर्शन का युक्तिवाद यह है कि सृष्टि में या संसार में जो कार्य दिखाई देता है वह उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान तो रहता ही है। वह कारण में स्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्तियों के रूप में विद्यमान रहता है। मानव में दिव्य जीवन की आकांक्षा है। अमरता को पाने के लिए वह अतीव उत्सुक है। ईश्वर के अस्तित्त्व में श्रद्धा है। यह जीवन, यह अमरता अथवा ईश्वरीय अस्तित्त्व ही मानवी विकास अथवा विश्व विकास का अन्तिम दृष्टि है। अन्तस्तल में निहित शाश्वत तथा दिव्य सत्य की जानकारी ही मानव की श्रेष्ठता है। यही अमरता है और यही ईश्वर है। यही वह मन (Super-mind) है जो सर्वव्यापी तथा वरिष्ठ है। भौतिक विज्ञान के विकासवाद का कथन है कि मानव ही सृष्टि के विकास की चरम सीमा है। परन्तु मानव की उत्कण्ठाएं, आकांक्षाएं, आदर्श विषयक कल्पनाएं, अमरता की अभिलाषा तथा ईश्वर के अस्तित्त्व की भावना सब उसके अपने सीमित, क्षणिक, सदोष मर्त्य तथा बन्धनों से जकड़े हुए जीवन के उस पार निहित भावी विकास की ओर उसे जो एक अमित आकर्षण हैं, उसे सूचित करती है। इसके अभाव में इस अनन्त भौतिक विश्व में पानी के बुलबुले की तरह मानव के क्षुद्र जीवन का मूल्य शून्य ही होगा। उसके व्यक्तित्व की परिधि के बाहर उसके आदर्शों तथा प्रयत्नों का विस्तार होता है मानव के अन्तस्तल का अन्वेषण करके और उसकी अनुभूतियों का अद्यावत निष्कर्ष निकाल करके योगी अरविन्द ने उसके भावी (आगामी) दिव्य जीवन के स्वरूप को निश्चित करने का प्रयत्न किया है।

विश्व का विकास करने वाली शक्ति मानव के उस पार स्थित परमात्मा के स्वरूप को अवरुद्ध करने के प्रयत्न में निरत है और ईश्वर को प्रकट करके ही यह प्रयत्न समाप्त होगा। इसका अर्थ यह होता है कि ईश्वर का जन्म अभी भविष्य की वस्तु है। इस पर योगी अरविन्द ने यह उत्तर दिया है कि मानवी ज्ञान के अनुसार यह अर्थ निकलता है कि जिसका जन्म नहीं हुआ उसका अस्तित्त्व है हीं नहीं परन्तु जब तक मानव की ज्ञान शक्ति अविद्या के बन्धन से जकड़ी हुई है तब तक मानव की बुद्धि देश काल की परिधि में ही वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर सकती है। विश्व के अर्थ को भली-भांति समझने के लिए मानव ने विकासवाद की कल्पना की है और इससे व्यंजित होने वाला तात्त्विक अभिप्राय अधिक महत्त्वपूर्ण है। विकासवाद के अनुसार विकास की जो अवस्था अस्तित्त्व में नहीं है उसका अस्तित्त्व उस विशुद्ध प्रज्ञा को प्रतीत होता है जो काल की सीमा का अस्वीकार करती है। ईश्वर का अस्तित्व शाश्वत है। ईश्वरीय अस्तित्त्व की उच्चतम भूमिका से विश्व के गर्भ में बीजात्मक अवस्था में जो कुछ विद्यमान रहता है वह अनुभूति का विषय तो बनता ही है। सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उस उच्चासन पर आरूढ़ होने से भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों दृष्टि को अवरुद्ध नहीं कर पाते। इस दृष्टि के कारण ईश्वर के सच्चिदानन्द स्वरूप की प्रतीति निर्बाध रूप से होती है। वह स्वरूप स्वयंवेध है।

योगी अरविन्द ने मानवी इतिहास के तत्त्वज्ञान को "मानवी चक्रनेमिक्रम" नाम के अपने ग्रन्थ में ग्रंथित किया है। उसमें मानव जाति की एकता ही मानव के जीवन की सफलता का निर्बाध तत्व है इस सिद्धान्त को स्वीकार करके समाज गति शास्त्र के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

योगी अरविन्द के गतिशास्त्र सम्बन्धी सिद्धान्त वास्तव में "लम्प्रेखट" नाम के जर्मन इतिहास शास्त्र के सिद्धांत हैं। अपने प्रतिभा का संस्कार करके योगिराज ने उसको स्वीकार किया है। उन्होंने इसमें उन मानसिक सोपान परम्पराओं के आकारों का वर्णन किया है, जो मानव-समाज की प्रगति होते हुए निर्मित होती हैं। परन्तु इस वर्णन में बड़ी सावधानी का उपयोग किया गया है कि मानव अथवा सामाजिक मन के आविष्कार अतीत समिश्र, पारम्परिक संयोग से तथा अनेक दिखाओं से युक्त होते हैं, अतएव उन पर सोपान परम्पराओं के भिन्न-भिन्न रूपों का पृथक्करण लागू नहीं हो सकता। परन्तु यह सत्य है कि इसमें क्रमिक अवस्थाओं का साधारण दिग्दर्शन होता है उक्त मानसिक अवस्थाएं पांच हैं। प्रथम अवस्था वह है जो प्रतीकमय (Symbolic) होती है याने दृश्यमान विश्व तथा जीवन के अन्तरंग की सूक्ष्म अनुभूतियों को अथवा धार्मिक स्फूर्ति को अभिव्यक्त करने वाले प्रतीकों से सम्पन्न होती है। द्वितीयावस्था सुडोलता को प्रधानता देने वाली (typal) याने नैतिक व्यवस्था तथा तत्त्वों को व्यक्त करने वाली अवस्था है। इसमें दिव्य शक्ति की आराधना तथा नीति के तत्त्व इनमें अन्तर माना जाता है। तृतीयावस्था वह है जो रूढ़ि के बन्धनों को प्रधानता (Conventional) देती है। इसमें परम्परा द्वारा निर्धारित अनुशासन को अतीव प्रधानता प्राप्त होती हैं, आज्ञाकारिता तथा नियमबद्धता तक नियमबद्धता का बड़ी सावधानी के साथ उपयोग किया जाता है, इसे सुवर्णयुग कहते हैं। इससे शास्त्र के शब्द प्रामाण्य का पालन बड़ी सूक्ष्मता के साथ किया जाता है परन्तु ऊपरी तौर पर दिखाई देने वाली श्रद्धामय शान्तता के गर्भ में निर्दयता एवं दासता दोनों चुपचाप विश्वास करती है। चतुर्थ अवस्था व्यक्तिवादी (Individualistic) है। इसमें परम्परा का विरोध करने वाली प्रतिक्रिया ही सर्वोपरि स्थान पाती है। बुद्धिवाद का विद्रोह इस अवस्था में सफल होता है। बुद्धिवाद व्यक्तिस्वार्तंव्य से पाँचवी आत्मनिष्ठ अवस्था का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदय होता है इस अवस्था में आत्मस्वार्तव्य अत्यन्त गहरी विश्वव्यापी अनुभूति से तथा मानवव्यापी ध्येयवाद से सम्पन्न होता है इस अवस्था का आशादायी अरुणोदय वर्तमान काल के मानवतावाद अथवा मानव-धर्म (Religion of Humanity) में दिखाई देता है। स्वातंत्र्य, समता तथा बन्धुत्व; ये ध्येय इस धर्म के स्वरूप की ओर संकेत करते हैं। इस धर्म के रूप में मानव जाति के अन्तरंग का नियंत्रण करने वाला ईश्वरत्व वह प्रयत्न कर रहा है जो इसी भूलोक पर देवताओं के राज्य की स्थापना करेगा। यही समूची सृष्टि के विकास का अन्तिम फल है। यही यथार्थ में दिव्य जीवन है। लोकसत्ता इसका बाह्य लक्षण है। (The Human Cycle, पृ० ४३६)

सामाजिक परिणति के आदर्श भूत नियम का प्रतिपादन करते हुए योगी अरविन्द उक्त ग्रन्थ में लिखते हैं, "समूचे समाज का ध्येय कुछ ऐसा होना चाहिए जिससे वह हरेक व्यक्ति की सेवा में सब प्रकार के व्यक्तिगत विकास के साधनों की पर्याप्त सामग्री उपस्थित करे, ताकि हरेक व्यक्ति देवी पूर्णता को प्राप्त करने वाले भव्य मार्ग पर आसानी से आगे बढ़ने में समर्थ हो। समाज को वह प्रयत्न करना चाहिए जिससे स्वातंत्र्य तथा सामञ्जस्य का निर्माण हो। स्वातंत्र्य से विशिष्ट गुणों की वृद्धि होती है और सामंजस्य से एकता की प्राप्ति। आज तक मानव जाति ने जो अनेकों प्रयत्न किए हैं, उनमें अव्यवस्था थी, अधूरापन था। उक्त दोनों तथ्य (स्वातंत्र्य तथा सामंजस्य) ही वास्तव में प्रगति तथा सफलता के प्रमुख साधन है। हरेक मानव को चाहिए कि वह समान ध्येय को प्राप्त करने के लिए अपने स्वभाव के अपनी प्रकृति के धर्मों के अनुसार अपने भीतर से विकास करने का प्रयत्न करें। इसका निर्माण यांत्रिक पद्धति से और अनुशासन की चाहरदीवारी में नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार के विचारों का योगी अरविन्द ने बड़े विस्तार के साथ प्रतिपादन किया है।

व्यक्ति समाज-शरीर की पेशी नहीं, इमारत का पत्थर भी नहीं और सामूहिक जीवन का पराधीन साधन भी नहीं है। मानव-जाति की रचना इस तरह कदापि नहीं हो सकती। प्रत्येक मानव व्यक्ति के रूप में स्वतंत्र आत्मा है इस सत्य को अगर हमने ध्यान में रखा तो यही समझना चाहिए कि हम मानव में स्थित दिव्य सत्ता के दर्शन नहीं कर पाए। मानवी शक्ति अन्तरंग के स्वातंत्र्य के ही कारण विकास की ओर उन्मुख होती है। यदि कोई धर्मशास्त्र यह कहना आरंभ करे कि मेरे इस मार्ग पर ही तुम्हें चलना होगा और विकास करना होगा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा रास्ता तुम्हारे लिए है नहीं और एक नियत परिधि या सीमा के बाहर तुम प्रगति नहीं कर पाओगे, तो उसका स्वीकार कदापि नहीं करना चाहिए। कोई भी राज्यसंस्था, कोई भी विधिज्ञ या कोई भी सुधारक उस व्यक्ति के जीवन को बलात सीमित नहीं कर पाएगा। क्या राज्य व्यवस्था क्या राष्ट्र, क्या संस्कृति, क्या ध्येयवाद सब उसकी तत्कालिक मदद कर सकते हैं, वह उन्हें लांघने में समर्थ है। आधुनिक युग के अनुसार समाज ही राष्ट्र है। राष्ट्रीय जीवन के विकास से मानव जाति के सम्पूर्ण जीवन की सहायता करता है, परन्तु वह जिस राष्ट्र का तथा मानव जाति का है उसी तरह ईश्वर का भी है। (The Human Cycle, पृ० ७७३-७४)

वही समाज सामंजस्यपूर्ण जीवन का निर्माण कर सकता है जिसमें अपने निर्बाध विकास की तथा अन्यों के बाधाहीन विकास की सहायता करने की सम्पूर्ण सुविधा रहती है। इसी व्यवस्था से मानव जाति की पूर्णता स्थापित होगी। अध्यात्म की शक्ति से सम्पन्न समाज संस्था का निर्माण करने का यही मार्ग है। जब समाज संस्था आध्यात्मिकता में प्रथम प्रवेश करती है तब वह मानव में स्थित दिव्य आत्मा के आविष्कार या अन्वेषण का आरंभ करती है। क्या उसके प्रयत्न, क्या उसकी शिक्षा, क्या ज्ञान, क्या विज्ञान, क्या नीति, क्या कला, क्या आर्थिक, या सामाजिक रचना सबका हेतु यही रहता है। भौतिक तथा मानसिक विज्ञानों का उद्देश्य केवल यह नहीं रहेगा कि प्रकृति अथवा विश्व की गति के कर्मों का अन्वेषण करे और मानवों को भौतिक आकांक्षाओं की पूर्ति करे, अपितु उनका उदिष्ट होगा दिव्य आत्मतत्त्व के आवरणों का निरास करने के जो मार्ग हैं उनका अन्वेषण करना। भविष्य में समाज व्यवस्था का नीतिशास्त्र मानव को सिर्फ द्विपाद पशु समझकर उसके लिए सामाजिक बन्धनों का निर्माण करने वाली विचार पद्धति का पूरक मात्र नहीं रहेगा। भविष्य की समाज संस्था इस बात का स्वीकार कदापि नहीं करेगी कि मानसिक तथा बाह्य विश्व की आकृतियों को अहित करना ही कला का कार्य है, अपितु तुम उक्त आकृतियाँ अर्थपूर्ण और सृजनशील साक्षात्कार का विषय बनेगी। इस साक्षात्कार में यह दिखाई देगा कि ये आकृतियां वास्तव में वे प्रतीक हैं जो दृश्यमान विश्व तथा जीवन के अन्तरंग के सत्य और सौन्दर्य का आविष्कार करते हैं। क्योंकि बाह्य पदार्थ वास्तव में मूलभूत सत्य के बनावटी रूप (मुखावर्त) ही हैं।

आत्मनिष्ठ बनी हुई समाज व्यवस्था हमारे वर्तमान समय के समाजशास्त्र की तरह वह क्रूरता नहीं दिखाएगी जो साधु से लेकर अपराधी तक के सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तियों को समाज के घटक मानकर कौशल से निर्मित यंत्र के द्वारा उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार आकार देती है। वह (समाज व्यवस्था) अपराधियों को जाल में फंसी हुई, व्याकुल एवं दुःखी आत्माएँ मानेगी और उन्हें आश्रय देकर बचाने का प्रयत्न करेगी और साधुओं को जाल से बची हुई तथा विकास करने वाली आत्माएँ मानकर उन्हें अधिक प्रोत्साहन देना अपना कर्त्तव्य समझेगी। इस समाज संस्था के अर्थशास्त्र का प्रधान उद्देश्य यह होगा कि हरेक व्यक्ति अपने-अपने काम में सर्वोपरि आनन्द का अधिकारी हो, एवं काम उसके स्वभाव के अनुरूप हो, प्रत्येक व्यक्ति को आत्मविकास के लिए पर्याप्त अवसर मिले और सभी व्यक्ति सम्पन्न एवं सुन्दर जीवन को बिताने में समर्थ हो। स्पर्धा या सहयोग के तत्त्व के आधार पर उत्पादन के प्रचण्ड यंत्र का निर्माण करने में उक्त अर्थशास्त्र अपने को कृतार्थ नहीं समझेगा। उक्त समाज व्यवस्था का राज्यशास्त्र लोगों को समूह रूप आत्मा मानेगा। यह आत्मा वास्तव में वह देवत्व ही है जिसका अन्वेषण मानव समूहों ने अपने-अपने भीतर ही कर लिया है। अन्तस्थ प्रेरणा के बल निर्बाध रूप से अपनी-अपनी आत्मा को विकास करते हुए अखिल मानव-जाति का महान कार्य एक ही है, इस सत्य को भली-भाँति समझकर वे परस्पर सहयोग देंगे। व्यक्ति तथा समूह या समुदाय में बाहर से और भीतर से भौतिक, प्राणमय, मानसिक तथा आध्यात्मिक सामर्थ्य का सर्वश्रेष्ठ सर्वोपरि एवं अत्यन्त सम्पन्न रूप से विकास करना हीं वह महान कार्य है, इसी को दिव्य आत्मा का अन्वेषण कहते हैं। उक्त समाज व्यवस्था का राज्यशास्त्र नागरिकों को प्रचण्ड राज्य यंत्र की सुरक्षा करने वाले सैनिक समझकर उन्हें अन्य राष्ट्रों से युद्ध करने वाले राष्ट्र देवता के पुजारी नहीं बनाएगा, राष्ट्र देवता की वेदी पर जिनकी बलि चढ़ाई जाने वाली है ऐसे असहाय व्यक्ति नहीं बनाएगा, उन्हें राष्ट्र देवता के शीर्ष पर रक्त का सन्नत अभिषेक करने वाले पात्र नहीं समझेगा। इस समाज व्यवस्था के अनुसार न राष्ट्र, न राज्य आपस में युद्ध की घोषणा करने की पूर्व सब प्रकार के आतंक एवं विध्वंस शस्त्रशास्त्रों का बड़े पैमाने पर निर्माण करने वाली मिलों के मालिक हैं, न राज्य वह वस्तु है जिसमें कोटि कोटि निःशस्त्र प्रजाओं के घरों, परिवारों एवं जीवितों के मटियामेट होने की तनिक भी परवाह न करते हुए बड़ी नृशंसता से यंत्रों के सहारे अग्नि की भीषण वर्षा तथा विषैली वायुओं का बेहिक उपयोग करने वाले राक्षस हृदय राजनीतिज्ञ निर्बाध रूप से अपना काम करते रहे।" (The Human Cycle, पृ० २८५-८६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मनिष्ठ समाज संस्था के निर्माण के पूर्व यह नितान्त आवश्यक है कि एक अथवा अनेक व्यक्ति स्वयं आत्मनिष्ठ जीवन का प्रयोग करें। व्यक्तियों को चाहिए कि वे नवीन व्यवस्था के आदर्शों को अपने जीवन में उतारे, क्योंकि आत्म स्वातंत्र्य की प्रत्यक्ष अनुभूति से ही उक्त प्रकार की समाज व्यवस्था का निर्माण करना है और आत्मस्वातंत्र्य ही उसकी मूलभूत शक्ति है।

योगी अरविन्द के तत्त्वज्ञान की हमने यहाँ सिर्फ एक झांकी ही उपस्थित की है। अद्यावत् ज्ञान-विज्ञानों का परामर्श लेने वाला प्रकाण्ड पाण्डित्य, भाषा पर विस्मयजनक अधिकार, कवित्व, शील, समाधि तथा प्रज्ञा से योगी अरविन्द का व्यक्तित्व प्रकाशमान है। इस तरह के महानुभाव के विचार सामर्थ्य की थाह पाना सचमुच कठिन है।

४. महात्मा गाँधी, पाशविक शक्तियों से संघर्ष करने वाली आत्मशक्ति

विचार जिस तरह स्वयं अपने रूप में, याने बौद्धिक रचना के रूप में व्यक्त होता है उसी तरह रूपान्तर के सहारे इच्छा शक्ति तथा कृति के भी रूप को धारण करके वह प्रकट होता है भौतिक अथवा ऐहिक विश्व के विषय में बड़ी तीव्रता से जागृत भारतीय ज्ञान को गाँधी जी ने इच्छाशक्ति और कृति के रूप में प्रकट किया। यद्यपि गांवों का तत्त्वज्ञान बौद्धिक रचना के रूप में अभिव्यक्त नहीं हुआ है तो भी यह मानना पड़ेगा कि वह प्रत्यक्ष आचरण में प्रकट हुआ है। तो भी यह मानना पड़ेगा कि वह प्रत्यक्ष आचरण में प्रकट हुआ है। कृति तत्त्वज्ञान की बोधक बन सकती है, वह शब्द की भी अपेक्षा अधिक व्यंजक एवं प्रभावी हो सकती है।

भारतीय सन्तों का अध्यात्मवाद संसार के अध्यात्मवाद के, खासकर ईसाई अध्यात्मवाद के वातावरण में परिपुष्ट हुआ है और गाँधी मार्ग के द्वारा व्यवहार में अवतीर्ण हुआ। लोकमान्य तिलक तथा योगी अरविन्द घोष द्वारा प्रतिपादित दिव्य जीवन का अनुभव करने वाले कर्मयोगी स्थितप्रज्ञ का जीवन गाँधी में प्रतिबिम्बित हुआ।

गाँधी के पास काल में अन्तरंग को पहचानने वाली प्रज्ञा थी। अतएव स्वयं एक भक्त तथा धार्मिक सन्त होते हुए भी जब उन्होंने देखा कि राजनीतिक भारत तथा समूचे संसार के व्यवहार का केन्द्र स्थान बनी हुई है तब सन्तों की हमेशा की प्रसिद्ध परिपाटी का त्याग करके उन्होंने राजनीति की बागडोर सँभाली। भजन, पूजन, जप, तप, ध्यान तथा तत्त्व चिन्तन ही सन्तों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्र व्यवसाय रहता है। अहन्ता तथा ममता को तिलांजलि देते हुए सात्त्विक व सरल नैतिक आचरण एवं उपदेश की सहायता से परोपकार तथा विश्व के ार का कार्य सन्तों द्वारा निरन्तर होता रहता है। गाँधी जी अपने जीवन क्रम रूप में उक्त परम्परा में सम्पूर्ण परिवर्तन उपस्थित किया। गाँधी ऐसे साधु जो केवल पारलौकिक क्षेत्र में ही नहीं, अपितु इसी भूलोक पर इसी लोक में मानव का पद स्थिर, दृढ़मूल तथा निरापद कैसे होगा इसी चिन्ता निरन्तर रहे। इसीलिए इस सन्त के पाश्चात्य संस्कृति के यूनानियों के समय ते आए उस दृष्टिकोण को अपनाया जो राजनीति पर केन्द्रित था।

गाँधी ने यह नवीन समस्या उपस्थित की जो मानव जाति की राजनीतिक म्परा के विरुद्ध थी। सन्तपना वह शक्ति है जो बन्धनों को तोड़कर नवीन त्र में प्रवेश कर सकती है, इसका यह ताजा उदाहरण है। राजनीतिक शक्ति क सम्मिश्र शक्ति है। मानवी व्यवहार तथा संगठन का वह एक प्रमुख अंश है इसलिए नैतिक शक्ति तथा भौतिक सामर्थ्य दोनों बिना जाने मिलकर जनीतिक शक्ति बन जाती है। राजनीति में भौतिक सामर्थ्य की, जबर्दस्ती के धनों की बड़ी मान्यता है। अतएव संस्कृत में राज्य शास्त्र को "दण्डनीति" सा बिल्कुल सार्थ अभिधान प्राप्त है। समाज की सहायता से दण्ड की क्तियों तथा दमन के साधनों पर अधिकार पाकर ही राजनीति अपने कार्य में वृत्त होती है। यही कारण है कि पुलिस, कारावास, शस्त्रास्त्र, सेना, युद्ध संस्था आदि दमन करने में सहायक शक्तियों को ही राज्य का मूलभूत बल माना जाता है इस बल का योग्यायोग्य प्रयोग सत्ता के सम्पादन तथा रक्षण और संगठन तथा विस्तार के लिए करना राज्यशास्त्र में उचित एवं प्रशस्त माना जाता है गाँधी ने इस मूलभूत सिद्धान्त पर ही कुठाराघात किया। दमन करने वाले भौतिक सामर्थ्य को हतप्रभ करने के लिए उन्होंने अहिंसात्मक आत्म शक्ति का आवाहन किया। यह माना जाता है कि समाज संस्था के स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाली हिंसक शक्ति का निर्दालन करना राज्य संस्था का एक मूल उद्देश्य है। इस स्थान पर साध्य तथा साधन के सम्बन्ध की समस्या का उदय होता है समाज के स्वास्थ्य के लिए हिंसक शक्ति का विध्वंस करना नैतिक है, क्योंकि राज्यशास्त्र यह मानता है कि वह विध्वंस विशुद्ध साध्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है रूढ़ राज्यशास्त्र के अनुसार शुद्ध साध्य की सिद्धि के लिए अशुद्ध या अशुचि साधनों का उपयोग करना समझदारी का लक्षण माना जाता है इस विषय में गाँधी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्यशास्त्र को चुनौती दी। उन्होंने इस सिद्धांत की स्थापना की कि विशुद्ध साधनों का उपयोग करके ही विशुद्ध साध्य की सिद्धि संभव है।

उक्त सिद्धान्त की स्थापना के लिए अनुकूल ऐतिहासिक परिस्थिति मिल गई। भारतवर्ष में उदारमतवाद तथा प्रजातंत्र शासन के वायुमण्डल में विस्तृत अँग्रेजी राज्यसत्ता से कलह का निर्माण हुआ था। इस कलह में गाँधी अगुआ बने। अँग्रेजों के उदारमतवाद से सुसंगत एवं सुसंवादी हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त को महात्मा गाँधी ने अपनी राजनीति का प्रमुख सूत्र बनाया। असन्तुष्ट एवं राज्य विरोधी प्रजा पर राज्य करना अनुचित है, उतना ही नहीं, असल में इस तरह के राज्य का अस्तित्त्व ही नहीं रह सकता, इस पश्चिमीय राज्यशास्त्र के सिद्धान्त का अंगीकार करके ही अँग्रेजी राज्यकर्ताओं की मनःस्थिति साम्राज्य के सूत्रों का संचालन करती थी। इसी कारण से महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक राजनीतिक आन्दोलन को वह यश मिला जो सचमुच इतिहास में अभूतपूर्व था।

महात्मा गाँधी ने अपने अध्यात्मवाद के आधार पर समूचे विश्व को व्याप्त करने की अभिलाषा रखने वाली पाश्चात्यों की यंत्र संस्कृति तथा उस पर आधारित आधुनिक सुधारों को अस्वीकार किया। उनकी सूक्ष्म प्रज्ञा ने यह भली-भाँति पहचाना कि आधुनिक यांत्रिक सुधारों के प्रचण्ड संगठन के यंत्रों में मानव शनैः-शनैः पराधीन हो रहा है, वह आत्मविश्वास रूप धन को ही खो बैठा है। यन्त्रयुग के पूर्व विश्व की आश्चर्यमय प्राकृतिक शक्तियों के प्रभाव के नीचे दबोचा गया मानव बिल्कुल असहाय बना था। प्राकृतिक शक्तियों का नियंत्रण करने की सामर्थ्य यन्त्रयुग ने उसे प्रदान अवश्य की, परन्तु यंत्रयुग के ही कारण उत्पन्न समाज संगठन के असीम उलझनों के व्यवहारों के बीच व्यक्ति के रूप में स्वयं मानव ही तृणवत् बना है। "मैं धूलि-कणों की तरह नाचीज हूँ, नगण्य हूँ, इस तरह की भयकारी तथा निराशाजनक भावना उसके मन को घेर रही है।" गाँधी ने उक्त यांत्रिक संस्कृति को मानव की नैतिक अवनति करने वाला पाप मान लिया और भारत को अतीत की भारतीय ग्राम संस्था के विश्व की ओर खींचने के नवीन उद्योग का सूत्रपात किया।

यंत्र-संस्कृति के शाप से बचने के लिए गाँधी ने ग्रामोद्योगी अर्थशास्त्र के जीर्णोद्धार के प्रयोग का आरंभ किया। इस प्रयोग में उन्होंने मानव के स्नायुओं में स्थित मन को जागृत करने का प्रयत्न किया। बर्बर अवस्था के बाहर आने के उपरान्त मानव दो दलों में विभाजित हुए। स्नायु शक्ति का उपयोग करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...श्रमशील व्यक्ति अथवा श्रमजीवी और स्नायु शक्तियों को अधिकतर पहुँचाने वाले बुद्धिजीवी। इस भेद को मिटाने के लिए महात्मा गाँधी ने ...र्ग का अन्वेषण किया। मानव अपने लिए अन्न, वस्त्र, पात्र, पादत्राण, ...दि साधनों का स्वयं ही निर्माण करें और विश्व के साथ बन्धुत्व की ...को जागृत रखे, इसलिए उन्होंने नवीन आध्यात्मिक साधन को दरसाने आश्रम संस्था का निर्माण किया।

गाँधी जी ने इस आश्रम संस्था की ओर से मानवों में नवीन सम्बन्धों की ...कैसे की जाय, इस बात को प्रत्यक्ष दिखाना तय किया। इस आश्रम ...का आदर्श है उन कार्यकर्ताओं के महान, प्रपंच का विस्तार करना जो ...सम्पन्न तथा स्वावलम्बी जीवन बिताने वाले हो, जिन्होंने अहन्ता और ...का होम किया हो और जिनका हृदय तेजस्वी, कर्तृत्यवान तथा सर्वव्यापी ...प्रेम से लबालब भरा हुआ हो। गाँधी ने आश्रम जीवन की कल्पना को ...जन्म दिया कि वह वर्गभेद तथा राष्ट्रभेद के क्षुद्र, अहंकार को तनिक ...न न देने वाला सर्व मानवों का विश्वास स्थान हो। स्वराज्य को नवीन ...का प्रदान करने वाली आत्मशक्ति के केन्द्रों को देश भर में फैलाने ...कांक्षा इस कल्पना की तह में विद्यमान थी। यह विलक्षण साधना वास्तव ...प्रवृति है जो आपत्तियों में फंसे हुए संसार को आश्वासन देने वाली है। ...क गाँधी जीवित थे तब तक यह आशा थी कि आश्रम जीवन का यह स्वप्न साकार होगा।

वर्तमान समय में महात्मा गाँधी के अस्त के साथ-साथ उनके ध्येयवादी ...के प्रकाशक का भी पूर्णतया अस्त हो गयी। गाँधीवादी अनेक हैं, परन्तु ...रिस्थिति पर उनका नियंत्रण बिल्कुल नहीं रहा, क्योंकि स्वीय अन्तरंग पर ...अधिकार रखने वाला स्थिर निश्चय तथा उस निश्चय से प्रभावित ...इच्छाशक्ति दोनों नष्ट हुए हैं। गाँधीवाद का वह ज्वलन्त प्रमाण तथा ...उदाहरण कहीं भी नहीं मिलता जो "नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्ध्वा" की तरह ...क मानव को स्पष्टतया स्वीकार करने पर बाध्य करेगा। इसका कारण ...स्पष्ट है। गाँधीवादियों के मन में अब तक उस मनीषा का उदय नहीं हुआ ...जो वर्तमान समय के विशाल ज्ञान विज्ञानों की नेतृता में निर्माण होने वाले ...न आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याओं को सुलझाने वाला ...बौद्धिक उत्कर्ष प्राप्त कर ले। वे इस सत्य से परिचित नहीं है कि प्रत्यक्ष ...रण को प्रोत्साहन देने में बौद्धिक उत्कर्ष से भी बल प्राप्त होता है अगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम इस बात की ओर भली-भाँति ध्यान दे कि नवीन यांत्रिक संस्कृति की बौद्धिक शक्तियां बड़ी-बड़ी आध्यात्मिक श्रद्धाओं की जड़ों को हिलाती हैं, उनको डाँवाडोल बनाती हैं, तभी यह संभव है कि महात्मा गाँधी जीवन का उद्देश्य सफल हो। भौतिक शक्ति को आत्मशक्ति द्वारा नियन्त्रित करना ही वह जीवनोद्देश्य है।

५. मानवेन्द्रनाथ राय, नवमानवतावाद

भाई मानवेन्द्रनाथ राय को सच्चे अर्थों में विश्व के नागरिक कहा जा सकता है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आन्दोलन और अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद का आन्दोलन दोनों में सम्मिलित होकर अनुभूतियों से अपने जीवन को समृद्ध करके आधुनिक ज्ञान-विज्ञानों का विस्तार के साथ परामर्श करते हुए राय महोदय ने अपने नवमानवतावाद के नवीन निष्कर्ष को संसार के सम्मुख रखा है। नवमानवतावाद विश्वव्यापी विचार प्रवृत्ति है। परन्तु वह साम्यवाद की तरह का तत्त्वज्ञान नहीं है जिसकी बड़ी बारीकी के साथ निश्चित रचना हुई हो, जिसे साम्प्रदायिक रूप प्राप्त हुआ हो और जो धर्म सम्प्रदायों की तरह प्रमाण ग्रन्थों की चारदीवारी में नपी-तुली पैमाइश में रखा गया हो। यह तत्त्वज्ञान किसी व्यक्ति विशेष के नाम से प्रसिद्ध नहीं है, क्योंकि यह उन तत्त्वचिन्तकों का वैचारिक आन्दोलन है जो समूची मानव जाति की मूलभूत एकता का हृदय से स्वीकार करने वाले और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रधानता देने वाले व्यक्ति हैं। राय ने इन विचारों की एक निश्चित पद्धति को जनता के सम्मुख रखा है।

अतीत के ध्येयों का उनके मूल रूप में या उन्हें नवीन भेष पहनाकर स्वीकार करना राय बिल्कुल पसन्द नहीं करते। उनका मत है कि अतीत के अवशेषों का जीर्णोद्धार करने से अतीत के या भूतकाल के बन्धन अधिक दृढ़ होते हैं। उनका कहना है कि भूताल आधुनिक विश्व का तथा वर्तमान भारत का मार्गदर्शन नहीं करेगा, अपितु उनकी दृष्टि को अवरुद्ध करेगा। राय वास्तव में जीर्णोद्धार के तीव्र द्रष्टा थे, पुराने तथा नवीन देवताओं के सख्त विरोधी थे। उनमें साहसी तथा मूर्तिभजक प्रवृत्तियों की चरम सीमा के दर्शन होते हैं। उनकी राय में मृत धर्मों, मृत कलाओं, मृत नीतिधर्मों तथा मृत राज्यशास्त्रों के जिन पिशाचों का निर्माण किया गया है वे राष्ट्रों के प्राणों पर बीती हुई विपत्तियों में निरन्तर वृद्धि कर रहे हैं, भूतकाल का स्वतन करने वाले मंत्रपाठ प्रतिगामी तथा पुराणप्रिय प्रवृत्तियों पर मोहनी सी डालते हैं और सड़ी-गली लाशों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करते हैं और अतीत के उच्च स्वर से घोषित ये मंत्रपाठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शील विचारकों की भी कमर तोड़ते हैं, उनके धैर्य को विचलित करते हैं। उनकी नसीहत है भूतकाल के ध्येयों को भविष्य का रूप मत दीजिये। श्रद्धा यथार्थ में सत्य की अनुभूति नहीं है। वस्तुवाद इतना आसान नहीं है, के लिए परम्परा द्वारा निर्मित भावनाओं की मंजिलों तथा बुनियाद को जड़ उखाड़ने तथा हवा में उड़ने की नितान्त आवश्यकता है। परन्तु ऐसा करने मानव के सिर पर निराधार होने का भय सवार रहता है, नवीन अज्ञात क्षेत्रें प्रवेश करने में उसका मन हिचकिचाता है। परन्तु भावनाओं के ये बन्धन के साक्षात्कार में बाधक सिद्ध होते हैं। विचारों की शुद्धता चित्तशुद्धि का अंग है। कोई एक विचार या भावना कितनी ही पवित्र क्यों न हो, अगर विचारों की अग्नि परीक्षा में स्थिर न रह सकी तो सत्य दर्शन में वह कैसे गी सिद्ध होगी। अन्तिम प्रश्न यह है कि क्या कोई भी चीज सत्य से र पवित्र हो सकती है?

आज तक सन्तों तथा धर्म के द्रष्टाओं ने जिस पारलौकिक भावगम्य णीय सत्य की कल्पना की है वह तत्त्व बिना बुद्धि की कसौटी को स्वीकार र कल्पना शक्ति के द्वारा स्वीकृत हुआ है। इस तत्व का आश्रय लेकर मानव अनिष्ठ नहीं हो सकेगा। धर्म का अन्तिम आदेश यही है कि मानव की ा अत्यन्त श्रेष्ठ ईश्वर की शरण में पहुँचे। इससे आधुनिक मानव की उन स्याओं का समाधान नहीं होगा जो महान उत्तरदायित्वों से युक्त है। वर्तमान कांकाल आधुनिक युग की जिस तरह की रचना की आवश्यकता को सूचित र रहा है उसकी रचना शरणागत मानव द्वारा कैसे सम्पन्न होगी? इस विश्व कौन सी शक्ति मानव की अपेक्षा मंगल तथा पवित्र है जो उसकी मदद करने के लिए उपस्थित होगी? धार्मिक ध्येयवाद में मानव के आत्मविश्वास को दृढ़ करने की शक्ति है ही नहीं। मानवी विश्व का उद्धार या विध्वंस करने का उत्तरदायित्व मानव का अपना है। उसे निभाने के लिए मानव को वह दृष्टिकोण प्रदान करना चाहिए जो प्रबल आत्म विश्वास का निर्माण करेगा। अनुभूति तथा बुद्धिवाद को ही नवीन दृष्टिकोण की आधारशिला बनाना आवश्यक है।

मानव का प्राधम्य तथा उसकी श्रेष्ठता ही उक्त विचार पद्धति का प्रथम सूत्र है। सृष्टि के विकास क्रम में, इस अखिल विश्व में मानव से अधिक उच्चतर मूल्य का निर्माण अब तक नहीं हुआ, न उसका अस्तित्त्व भी है। अध्यात्मवादी तत्त्वज्ञान से देखा गया पुरुषोत्तम अथवा परमात्मा वास्तव में मानव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अपने स्वरूप का वह अतिशयोक्ति पूर्ण रूप है जो उसने कल्पना के द्वारा बढ़ाया तथा देखा है।

वर्तमान काल में मानव-समाज का आपत्तियों में उलझ जाना अनुभव सिद्ध है और यही आपत्तिमयता राजनीति में प्रतिबिम्बित हुई है। सब सामाजिक पाप राजनीति ही साकार एवं सजीव हो उठते हैं। आजकल राजनीति उस यश को पाने पर तुली हुई है जो अदूरदर्शी, स्वार्थ साधन में निरत एवं तात्कालिक है। अतएव मुख्य प्रश्न यह है कि क्या राजनीति को शुद्ध बुद्धि के आधार पर खड़ा किया जा सकता है। राजनीति तक नीति का पारस्परिक सम्बन्ध किस तरह का रहे इसके निर्णय पर ही राजनीतिक बुद्धिवाद की कसौटी निर्भर है। इसका कारण यह है कि क्रान्तिकारी प्रेरणा के मूल में भी नैतिक ध्येय की उत्कण्ठा ही रहती है। अतएव अनैतिक एवं अशुद्ध साधनों से क्रान्ति के आदर्शों का निर्माण करने की रूढ़ तथा भ्रष्ट परम्परा को बाधित करना अतीव आवश्यक है। इसी परम्परा ने क्रान्ति की शक्तियों को याने श्रमिकों तथा मजदूरों के वर्ग और आम जनता को उस अवस्था में फेंक दिया है जो बौद्धिक अव्यवस्था, निराशावाद तथा मानसिक दुर्बलता से परिपूर्ण है। इस उलझन से उन्हें मुक्त करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हम नैतिक बुद्धिवाद तथा व्यक्तिवाद का हृदय से स्वीकार एवं समादार करें। इसी को मूलगामी दृष्टिकोण कहा जाता है

समाज, राष्ट्र, वर्ग अथवा पक्ष की भाषा की अपेक्षा व्यक्ति मानव की भाषा ही अधिक मूलभूत है। सामाजिक संस्था तथा राजनीतिक संगठन को मानव की स्वतंत्रता के समर्थ साधन बनाना ही सामाजिक शास्त्रों का आदर्श होना चाहिए। परस्पर विरोधी सिद्धान्तवाद अथवा विविध विसंगत विचार पद्धतियां समाज में रहेंगी तो अवश्य ही, परन्तु उनके मूल्यों का माप-तोल मानवी स्वतंत्रता के निष्कर्ष पर ही करना उचित होगा। मानव की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का विकास एवं वृद्धि करने के उद्देश्य से ही समाज संस्थाओं का निर्माण होना चाहिए। मानवों में परस्पर सहयोग की मंगल भावना का निर्माण करके ही समाज़ संस्था सफल होती है। सैकड़ों पीढ़ियों के परिश्रम से अर्जित अनुभूतियों का भण्डार ही अपने समुदित रूप में प्रत्येक व्यक्ति के विश्व को समृद्ध करता है वर्ग, राष्ट्र पक्ष आदि मानव निर्मित संगठन के आकारों को मानवों की तुलना में श्रेष्ठ मानने से मानव का आत्मबल अवरुद्ध होता है व्यक्तित्व को सामर्थ्य सम्पन्न, विकसित एवं प्रगलभ बनाना ही सामाजिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगठनों का अन्तिम उद्देश्य होना चाहिए। इस चरम उद्देश्य का अस्वीकार करने वाले सब दर्शन यथार्थ में मानव के लिए अन्यान्य बन्धनों का निर्माण करने के साधन बनते हैं। निरन्तर बन्धन मुक्त होने वाले आत्मनिष्ठ मानव का निर्माण करना ही मानव संस्कृति का सर्वोपरि उद्देश्य है।

गत तथा वर्तमान शताब्दी के सांस्कृतिक आन्दोलन की उक्त मीमांसा राजा राममोहन राय, लोकमान्य तिलक, योगी अरविन्द, महात्मा गाँधी तथा भाई मानवेन्द्र नाथ राय इन पाँच महानुभावों के तत्त्व-विचारों के परामर्श से पूर्ण हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार

उपादेयता :

विश्व के इतिहास पर विहङ्गम दृष्टिपात करने से हम इस निष्कर्ष पर बिना किसी सन्देह के पहुँचते हैं कि विश्व में प्राप्त होने वाली समस्त संस्कृतियों में यदि कोई प्राचीनतम संस्कृति है तो वह वैदिक संस्कृति ही है। संसार के अन्य राष्ट्र जब अज्ञानान्धकार में निमग्न थे, उस समय वैदिक आर्य सम्पूर्ण कला, कौशलों के विशेषज्ञ थे। इस तथ्य को भले ही विश्व के शिक्षाभिमानी दुराग्रह के कारण स्वीकार न करें, किन्तु उन्हें पाश्चात्य आलोचक विन्टरनिट्ज के हृदयोद्गारों को अपनी दृष्टि से ओझल नहीं करना चाहिए-

If we wish to learn the beginning of our own culture, if we wish to understand the oldest Indo-European Culture, we must go to India where the oldest literature of an Indo-European people is preserved.

आज भी भारतीय संस्कृति वस्तुतः वैदिक संस्कृति के बहुमुखी, व्यापक, तथा शाश्वतिक प्रभाव को लेकर जीवन-यात्रा कर रही है। इसके तत्त्व इतने पुष्ट हैं कि वह विशाल जीवन-यात्रा में कभी पथभ्रष्ट नहीं हुई है। इस संस्कृति के तत्त्व प्राचीनतम वैदिक संस्कृति के तत्त्व हैं, जो कि विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। उस संस्कृति की प्राचीनता की घोषणा विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ वेद स्वयं कर रहे हैं-"सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा।" विश्व के द्वारा त्वरणीय अर्थात् आनन्ददायिनी संस्कृति वैदिक संस्कृति ही है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी अपने हृदयोद्गार इस प्रकार अभिव्यक्त किए हैं-

प्रथम प्रभात उदय तब गगने।
प्रथम सामरब तब तपोदने॥

संस्कृति के समानांतर एक अन्य शब्द है-सभ्यता। किन्तु सभ्यता एवं संस्कृति-इन दोनों ही शब्दों में अन्तर है। सभ्यता से अभिप्राय मानव की भौतिक विचारधारा से है तथा संस्कृति शब्द मानव के आध्यात्मिक एवं मानसिक क्षेत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विकास का सूचक है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि मानव-जीवन में अध्यात्म का महत्त्व भी स्वाभाविक है, भौतिक विकास से शारीरिक क्षुधा तृप्त होती है किन्तु आत्मा अतृप्त ही रहती है। इसी आत्मा से सम्बद्ध विकास के लिए किये गये कार्य संस्कृति के अन्तर्गत गृहीत होते हैं। मनुष्य केवल भौतिक परिस्थितियों से सन्तुष्ट नहीं हो सकता है। वह केवल भोजन से ही अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण नहीं कर सकता है। शरीर के साथ मन और आत्मा भी हैं। भौतिक विकास से शारीरिक क्षुधा की तृप्ति तो सम्भव है, किन्तु मन एवं आत्मा सर्वधा अतृप्त ही रहेंगे। मन एवं आत्मा की तृप्ति के लिए मानवीय विकास एवं उन्नति को हम संस्कृति कहें तो अनुपयुक्त न होगा। मानवीय जिज्ञासा का परिणाम धर्म और दर्शन का उदय है, मनुष्य सौन्दर्य तत्त्व की खोज में लीन होकर संगीत, साहित्य आदि अनेक कलाओं को जन्म एवं विकास प्रदान करता है।

इस प्रकार मानसिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नति के द्योतक तत्त्व को हम संस्कृति का अंग कहें तो अनुपयुक्त न होगा। पारिभाषिक रूप में इसे हम यों कह सकते हैं–

किसी समाज, देश या राष्ट्र के मानवों के धर्म, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान से सम्बद्ध क्रियाकलाप तथा आदर्श, सभ्यता, संस्कार–इन सभी का जो सामञ्जस्य है वही संस्कृति है अथवा स्थूल रूप से संस्कारों का नाम ही संस्कृति है जो कि दुर्गुण, दुर्व्यसन् तथा पापयुक्त भावनाओं को हृदय से निकालकर उसे निष्पाप तथा शुभ गुणों से युक्त करती है। संस्कृति का निर्माण सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु क्तिन् प्रत्यय के योग से होता है इस प्रकार संस्कार, संस्कृत एवं संस्कृति तीनों शब्दों का मूल एक ही है तथा अर्थ है–संवारना तथा शुद्ध करना।

वैदिक संस्कृति में मानव का जीवन उल्लासमय तथा आशामय था, निरन्तर आगे बढ़ने की लालसा थी, यत्र-तत्र-सर्वत्र वैदिक मन्त्रों में यही ध्वनि प्रतिध्वनित होती है। जिस प्रकार परवर्त्तीकाल में मानव को निराशावादी एवं पलायनवादी तक बनना पड़ा, उसका वैदिक काल में नामोनिशान तक न था। वैदिक विचारधारा के अनुसार जीवन का चरम लक्ष्य दुःख का अभावरूप मुक्ति या मोक्ष जैसा न होकर निश्चित रूप भावात्मक ही है। वह चरम लक्ष्य केवल अमृतत्व आनन्त्य या निश्रेयस् ही कहा जा सकता है। बहुत से विद्वानों को भी यह जानकर आश्चर्य होगा कि वैदिक संहिताओं में मुक्ति, मोक्ष अथवा दुःख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द का प्रयोग एक बार भी हमको नहीं मिला। हमारी समझ में उपर्युक्त वैदिक दार्शनिक दृष्टि की पुष्टि में यह एक अद्वितीय प्रमाण है। वैदिक ऋषियों ने सर्वदा प्रकृति माता की गोद में क्रीड़ा करने की कामना की है, उनके लालन-पालन तथा पोषण में अमृतत्व के आनन्द की अनुभूति की है। यही नहीं, प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों में निहित प्रसादनी शक्ति को अपने मन में आविर्भूत होने की कामना की है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में तो बहुत ही स्पष्ट शब्दों में–

पश्येम शरदः शतम्। जीवेम शरदः शतम् ।
दुध्येम शरदः शतम्। रोहेम् शरदः शतम् ।
पूषेम शरदः शतम्। भवेम शरदः शतम् ।
भूषेम शरदः शतम्। भूयसी शरदः शतम् ।

अर्थात् सौ वर्ष से भी अधिक जीने, देखने, सुनने, ज्ञानार्जन करने, बढ़ने, पुष्ट होने और आनन्दमय जीवन की कमनीय कामना है। "जीवन के विषय में यह सुखद स्वरूप, भव्य और स्वर्गीय भावना कितनी उत्कृष्ट है। भारतीय संस्कृति की लम्बी परम्परा में यह निःसंदेह अद्वितीय है और गंगा की लम्बी धारा की परम्परा में गंगोत्तरी के जल के समान दिव्य और पवित्र है।" इस सांस्कृतिक अभ्युदय काल में आर्य जाति उत्साहमय स्वस्थ वातावरण में यशस्वी जीवन की विजय-यात्रा में अग्रसर हो रही थी, उसका जीवन उस काल में वेद था, कर्मकाण्ड की इस युग में प्रधानता थी, इससे आगे क्रमशः विकासशील वैदिक ऋषि परमात्मा के विभूति रूप सूर्य, वायु, उषा आदि देवों के साथ सरल भाव से विचरण करते हुए प्रतीत होते हैं। इसी युग में जातीय जीवन को सुव्यवस्थित और संगठित करने की प्रवृति के आधार पर याज्ञिक कर्मकाण्ड का एक विशिष्ट कर्मकाण्ड के रूप में प्रारंभ हुआ था। इस पृष्ठभूमि के उपरान्त हम वैदिक संस्कृति के कुछ मूलाधार तत्त्वों का विवेचन संक्षेप में करेंगे, जिनमें हमें पता चलेगा कि वर्तमान भारतीय संस्कृति के निर्माण के मूल में किन-किन तत्त्वों का योग है।

अध्यात्मवाद :

वैदिक संस्कृति की प्रथम विशेषता या मूलाधार ऋत और सत्य की भावना है, समस्त संसार प्राकृतिक शक्तियों के अधीन नियमानुकूल चलायमान है। इन नियमों में कहीं वैषम्य नहीं है, इसी विषमता के अभाव को ऋत कहा जाता है मानव-जीवन के प्रेरक नैतिक तत्त्वों का नाम सत्य है। डॉ० मंगलदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी ने लिखा है कि अपने वास्तविक स्वरूप के प्रति सच्चा रहना ही वास्तविक धर्म है, परन्तु वैदिक आदर्श इससे भी आगे बढ़कर ऋत और सत्य को एक ही मौलिक तथ्य के दो रूप मानता है। इसके अनुसार मनुष्य का कल्याण प्राकृतिक नियमों और आध्यात्मिक नियमों में परस्पर अभिन्नता को समझते हुए उसके साथ अपनी एकरूपता के अनुभव में ही है। इसी ऋत एवं सत्य की भावना का बहुत अधिक स्पष्ट एवं व्यापक रूप अध्यात्म तत्त्व में भी देख सकते हैं।

यह अध्यात्मवाद हमें भोगवाद से दूर कर ईश्वर विषयक ज्ञान की ओर ले जाता है, यह हमें प्रकृति से प्रेम करना भी सिखाता है। ईशोपनिषद् के आरम्भ में जगत् तत्त्व की खोज में तीन ऋषियों ने अपनी विचारधारा को क्या आध्यात्मिक, क्या सामाजिक, क्या आर्थिक तथा क्या शारीरिक, सभी क्षेत्रों में मानवीय कर्त्तव्यों को सूत्र रूप में निबद्ध किया है–

ईशावास्यमिदं सर्व यात्किञ्चित् जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्त न भून्जीया मा गृधः कस्यस्विद्धनस्।

सम्पूर्ण विश्व ईश्वर से व्याप्त है। इसी भाव को गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

"जड़ चेतन गुण-दोषमय विश्व कीन्ह करतार।"

इस प्रकार ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करना ही आस्तिकता है। ईश्वर सर्वव्यापक है अर्थात् पाँचों तत्त्वों पर एक महान शक्ति का शासन है, यह स्वीकार कर लेने पर मानव पाप कर्म के लिये जो एकान्त चाहता है, उस एकान्त का तो सर्वत्र ही अभाव होगा, क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक है। इस प्रकार आत्मिक उन्नति के लिए इस ईश्वर की सर्वव्यापकता के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेना ही होगा, इस सिद्धान्त को हृदयंगम कर लेने से आत्मा में शक्ति का आविर्भाव होगा, विश्व की अशान्ति का शमन होगा, विश्व बन्धुत्व का प्रसार होगा। यह आस्तिकवाद का सिद्धान्त कि ईश्वर सर्वव्यापक है, आज भी विश्व के मनुष्यों को अनुप्राणित कर रहा है कबीरदास के शब्दों में–

"कस्तुरी कुण्डलि बसे, मृग ढूढ़े वन माँहि।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि॥"

इस आस्तिकवाद को अर्थात् ईश्वर की सत्ता को पाश्चात्य वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं। जेम्स जीन्स महोदय सृष्टि की रचना में आदि कारणभूत एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनन्त शक्ति को स्वीकार करते हैं। शिकागो विश्वविद्यालय के प्राध्यापक क्रोन्स्ट महोदय भी इसी विचारधारा को स्वीकार करते हैं। सन् १९३७ के सितम्बर मास में होने वाली एक सभा, जिसका सभापतित्व स्वर्गीय आईन्स्टीन ने किया था, में ईश्वरीय शक्ति को स्वीकार किया गया था, अन्य वैज्ञानिक भी प्लेटो की विचारधारा का समर्थन इस प्रकार करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं–

Beyond all finite existence and secondary cause, laws, ideas and principles there is an intelligent mind.

इस प्रकार एक महान् शक्ति की सत्ता भारतीय ही नहीं, पाश्चात्य वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं। वैदिक संस्कृति का दूसरा आधार त्यागभाव है। संसार का भोग त्यागभाव से करना चाहिए। पदार्थों के उपभोग का इस संस्कृति में निषेध नहीं है। अपितु भोगवाद में लिप्त हो जाने का निषेध है। यह सिद्धान्त जीवन जलयान के लिए प्रकाश स्तम्भ है, जिसमें जीवन जलयान "[1]भोगवाद रूपी चट्टानों से चकनाचूर होने से बच जाय।" फैजी के शब्दों में, "यदि मैं ममता-मोह की मृग-मरीचिका में फंस जाऊं उस समय कर्त्तव्य की पुकार होने पर मैं अपनी रक्षा त्यागभाग से कर सकता हूँ। यदि असमंजस के वात्याचक्र में कुछ निर्णय न होता हो तथा हमारे ज्ञान-चक्षु सांसारिक कृत्रिम चाकचिक्य में चमत्कृत हो गए हों, उस समय वैदिक त्यागभाव की प्रवृत्ति ही भौतिक भावनाओं के कदम से मेरा उद्धार करेगी, संकीर्णता से मेरा उद्धार होगा, मानवता की यही परिभाषा है, सात्त्विकता का यही मूलमंत्र है।" यही त्यागभाव "मागधः कस्यास्वितद्धन् स्वधया परिहितां" का उपदेश देता हुआ मानवमात्र को अशान्ति से शान्ति की ओर ले जाने का यत्न करता है। वस्तुस्थिति तो यह है कि जब स्वर्ग देवता बन जाता है तो भयभीत मानवता चीत्कार कर उठती है। जब धन संग्रह की प्रवृत्ति बढ़ जाती है तो मानवता की दुहाई देता हुआ मानव पशु पीड़ितों के शवों को रौंदता हुआ आगे बढ़ता है। क्या इस प्रकार का मानव समाज में उपकारी हो सकता है? आज भी "दादा बड़ा ना भैया, सबसे बड़ा रुपया" जैसी कहावतें सुनकर ज्ञात होता है कि विश्व का वातावरण धन के लिए क्षुब्ध है। त्यागभाव इस विचार के लिए अंकुश के समान है।

मैक्समूलर की दृष्टि से "मानवीय चिन्तन शक्ति यहां पर अपने सर्वोच्च शिखर पर है। इसके आगे कुछ शेष नहीं है, आर्थिक जगत की समस्याओं के हल का यही मूल सिद्धांत है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोल्डस्मिथ के शब्दों में "जहाँ कुछ स्थान पर धन का ढेर होता है वहाँ मानवता का पतन होता है, राष्ट्र विनाश के गर्त्त में गिरता है।" इन उद्धरणों से वैदिक त्यागभाव की महत्ता स्वतः स्पष्ट है।

कुर्वन्नेदेह कर्माणि जिजीविषच्छतं समा।
एवत्तवयि नान्यथेतोतास्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

कर्मशील रहते हुए सौ वर्ष जीवन की कामना। कर्मयोग के अतिरिक्त जीवन सफल्य का अन्य कोई श्रेष्ठ मार्ग नहीं है। भगवान कृष्ण ने भी गीता में अर्जुन को इसी का उपदेश दिया है। निष्कर्मण्यता, पाप एवं अभिशाप है। श्रम न करने से आयु क्षीण होती है। पड़े-पड़े लोहे में भी जंग लग जाती है फिर मांस-मज्जा, अस्थि, रक्तादि से निर्मित मानव का कहना ही क्या? इस प्रकार यह कर्मवाद मानव को कर्मण्यता तथा आशावाद का सन्देश देता है। यह कर्म ही जीवन है। वैदिक संस्कृति का चतुर्थ आधार आत्म-विश्वास है, आत्मा का हनन करना पाप है, यजुर्वेदीय चालीसवें अध्याय का यह मन्त्र भी यही कहता है–

असुर्क्ष्यानाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

वे आत्मघाती हैं, जो स्वार्थ-संकुचित वृत्ति वाले तथा भोगपरायण हैं। आत्म हननकर्त्ता अन्धकारकृत लोकों में जाकर नरक के भागी होते हैं। आत्मविश्वास के बिना जीवन व्यर्थ है। इस बौद्धिक एवं कर्म संघर्षरत युग में मानव की अशान्ति का मूल कारण आत्मविश्वास की उपेक्षा ही है।

वैदिक संस्कृति का पाँचवँ तत्त्व पुनर्जन्मवाद है, यह पारलौकिक भावना ही मानव को शुभ आचरण करने का उपदेश देती है। इसी भावना से प्रेरित हो, भारतीय वीर एवं वीरांगनाएं अपने धर्म तथा देश की रक्षा के लिए हंसते हुए प्राणार्पण कर देते थे। पुनर्जन्मवादी यह सोचता है कि "अयमेव लोका न परः अपि", इसका परिणाम होता है कि मानव सदाचार आदि का पालन करता हुआ अगले जीवन को सुखद बनाने की चेष्टा करता है।

वैदिक संस्कृति में विश्वबन्धुत्व की भावना का भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है, इसी आधार पर "वसुधैव कुटुम्बकम्" तथा "आत्मव्रत्सर्वभूतेषु" की भावना परवर्त्ती काल में पल्लवित हुई, जिसका परिणाम राजा एवं रंक में स्नेह भावना का संचार करता है। उदाहरणस्वरूप कृष्ण-सुदामा की मैत्री को हम ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं, जो कि भारतीय इतिहास में अमर है। विश्वशान्ति और विश्वबन्धुत्व की उदात्त कमनीय भावना का निदर्शन इस मन्त्र में मिलता है—'मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षाम' है। इसी प्रकार वैदिक साम्यवाद की उदात्त भावना—

संगच्छध्वं सवंदध्वं सं वो मंनासि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे संजानानामुपासते॥

अर्थात् हे भगवान्। हम सभी समान भाव से विश्व में गति करें, श्रेष्ठ भाषण करें, हमारे हृदय भी कल्याणकारी विचार वाले हों। जिस प्रकार प्राचीन काल में देव कल्याणकारी विचारों की ही उपासना करते थे, ऐसे ही हम भी बनें। यही नहीं, विश्व कल्याण की कामना ही इस संस्कृति का मूल मन्त्र है—

सर्वे भवन्तु सुखनिः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कंश्चिद् दुःखभाग भवेतु॥

विश्व के प्राणीमात्र सुखी हों, प्राणीमात्र निरोग हों, सभी मंगलदर्शी हों, सभी सुखी हों। इसी प्रकार "पुमान् पुमांस परिपातु विश्वतः" मानवमात्र की परस्पर रक्षा और सहायता करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। "तत्कृण्मो ब्रह्मवो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः" हम सभी मिलकर मनुष्यों में परस्पर सुमति और सद्भावना के विस्तार की उपासना करें। इस प्रकार की उदार घोषणाएं वैदिक संस्कृति की है। विश्व की अन्यान्य संस्कृतियों में इसका अभाव ही है। उदाहरणतः यूनान में सुकरात को जहर का प्याला पीना पड़ा, ईसा को फांसी के तख्ते पर बैठना पड़ा। मय संस्कृति का विनाश भी यूरोपियनों ने किया। अतः यह मानना ही पड़ेगा कि वैदिक संस्कृति विश्व को सुपथ का मार्ग अपनाने का ही आदेश देती है।

"असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय
म्त्योर्मा असृतं गमयेति।"

समन्वयवाद एवं विचार सहिष्णुता भी भारतीय संस्कृति का एक आधार है जिसमें आर्य-अनार्य संघर्ष के उपरान्त अनार्यों का मिलन सहिष्णुता का ही परिचायक है, यही कारण है कि भारत अनेक जातियों का एक राष्ट्र है तथा शैव, शाक्त, वैष्णव, ईसाई, जैन, बौद्ध आदि अनेक धर्मों का एक धर्म है, वह उसी प्रकार जैसे समुद्र नदियों (जल) का घर होता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स यथा सर्वासामपां समुदमेकायनम्।

भारत में सभी धर्म एवं सभी जातियाँ समान भाव से फलती एवं फूलती आज की संस्कृति का निर्माण केवल वेदों से ही नहीं हुआ है अपितु आगमों भी हुआ है। यह निगमागमसक्त संस्कृति है। भारत में प्राचीनकाल से ही वार-सहिष्णुता एवं धार्मिक विश्वास तथा पूजा-विधियों को पूर्ण स्वतन्त्रता त है। इसका स्पष्ट उदाहरण ऋग्वेद के इस उदाहरण में प्राप्त है-"एकं द्विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात् वह शक्ति एक ही है, किन्तु विद्वान् उसे विभिन्न मों से अभिहित करते हैं। गीता में भी इसी विचारधारा का प्रतिपादन हुआ -"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव जभाम्यहम्" अर्थात् जो जिस रूप में भजन रते हैं, मैं उन्हें उसी रूप में प्राप्त होता हूँ।

सर्वांगीण अभ्युदय का इस संस्कृति में विशेष ध्यान रखा जाता है, सीलिए पुरुषार्थ चतुष्ट्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को समान भाव से महत्त्व त है। धर्म इस संस्कृति का प्राणभूत सिद्धांत है, धर्म ही उन्नति का मूल है था जन्म-जन्मान्तर का साथी, यह धारणा प्रत्येक भारतीय के हृदय में वद्धमूल -"धर्मः सखा परमहो परलोक याने", धर्म के बिना कार्य संचालन असम्भव । काम सृष्टि निर्माण का मूल है। मोक्ष भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा का मूल तु है। इस प्रकार इस संस्कृति में ऐहिक तथा पारलौकिक उन्नति के साथ यक्तिगत जीवन में शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक उन्नति को समान महत्त्व प्त है। इसके विपरीत सुकरात ने आत्मा को ही महत्त्व प्रदान किया है। पश्चात्य केवल भौतिकवादी विकास के लिए कटिबद्ध है। भारत में सर्वांगीण विकास के लिए चार वर्ण एवं चार आश्रमों की व्यवस्था की गयी थी।

आशावाद :

भारतीय विचारधारा में दार्शनिक सम्प्रदायों के उदय के साथ ही संसार असार है, जीवन क्षणभंगुर एवं नश्वर है, आदि जैसी निराशावादी भावनाएं पल्लवित हो चुकी थीं, इन भावनाओं ने मानवीय विकास में एक बड़ा व्याधात उपस्थित किया था, किन्तु वैदिक संस्कृति एवं साहित्य आशावादी भावनाओं से अनुप्राणित है। यत्र-तत्र-सर्वत्र जीवन के अभ्युदय एवं सौ वर्ष जीने की कामना वेदमन्त्रों में मिलती है। वैदिक ऋषियों की जीवन के प्रति सदैव उत्साहपूर्ण धारणा रही है। समस्त वैदिक साहित्य अमृतमय, प्राण संजीवन वचनों से साभृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यजुर्वेद के मन्त्र में लिखा है कि आत्मत्व या आत्म-चेतना का विस्मृति रूप आत्महत्या (जीवन में आदर्श भावना का अभाव) किसी भी प्रकार की प्रेरणा से विहीन अज्ञानान्धकार में गिराकर सर्वनाश का हेतु है। (यजु० ४०.३.१)। यही नहीं, वेद में भी कहा है—"आशा हि परमं ज्योति नैराश्यं परमं तम" तथा "चरैवेति" के रूप में चलते रहने का उपदेश भी वैदिक संस्कृति का ही है। आशय यही है कि दार्शनिक सम्प्रदायों ने निराशावादी भावना का प्रसाद यद्यपि किया था, किन्तु वैदिक साहित्य की आशावादी भावना के समक्ष वह पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त न कर सका।

वैदिक संस्कृति में मानव मात्र के कल्याण की भावना का समावेश है, स्वस्तिवाचन प्रकरण के संकलित मन्त्रों में इसी भावना का पल्लवन हुआ है। भगवान से सर्वत्र इस प्रकार की कामना की गई है कि—भगवान जो भद्र या कल्याण है, उसे हमें प्राप्त कराईये, भद्र या कल्याणमय मार्ग पर चलते हुए हम पूर्ण जीवन को प्राप्त करें। हे देव! हम कानों से भद्र सुनें और आंखों से भद्र देखें। भगवान्! हमें प्रेरणा दीजिए कि हमारा मन सर्वदा भद्र मार्ग का ही अनुसरण करे तथा भगवान! हमें निरन्तर कल्याण की प्राप्ति कराईये।

वैदिक संस्कृति में मानवमात्र का लक्ष्य, शिक्षा का लक्ष्य एकमात्र ब्रह्म की प्राप्ति है—"ब्रह्मातल्लक्ष्यमृच्यते" तथा उस ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है तप-तपसा चीयते ब्रह्म १.१.८ तथा तपसा किल्वषं हन्ति।।

तप के द्वारा पाप नष्ट होते हैं। तप से हमारा तात्पर्य यम नियमादि के पालन से है। यम-नियम भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व हैं। इनका पालन किए बिना मानव-जीवन मात्र पशु-जीवन है। निर्दिष्ट ब्रह्म अन्तरात्मा का विषय है।

उपरिनिर्दिष्ट तत्त्व वैदिक संस्कृति के आधारभूत सिद्धांत हैं जिनका स्थालीपुलकन्याय में संक्षिप्त परिचय मात्र ही प्रस्तुत किया गया है वैदिक संस्कृति मानव को मानवता का संदेश देती है। वैदिक संस्कृति के ये तत्त्व चरमोत्कर्ष के द्योतक हैं। इसीलिए यह संस्कृति विश्व की अन्यान्य संस्कृतियों को देखते हुए आज भी जीवित है, उसी वैदिक संस्कृति की उत्तराधिकारिणी संस्कृति के लिए महाकवि इकबाल ने ठीक ही लिखा है—

यूनान मिश्र रोमां सब मिट गये जहां से।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी यही अमर संस्कृति चिरकाल से विश्व का पथ-प्रदर्शन करती रही और आज ही नहीं, भविष्य में भी अक्षुण्ण बनी रहकर विश्व का मार्ग प्रदर्शन , यही एक कामना है।

ाजिक स्थिति :

आर्य-अनार्य संघर्ष, आर्य-आर्य संघर्ष के पश्चात् आर्यों के समाज की रूपरेखा तैयार हुई, यही उनकी विकसित सामाजिक व्यवस्था थी। आर्यों के ाजिक जीवन एवं संगठन पर सर्वाधिक प्रभाव आर्य-अनार्य सम्पर्क का ही है।

वैदिक सभ्यता के नयनोन्मीलन काल में मानव मात्र दो वर्णों में विभक्त -आर्य एवं अनार्य। आर्य धर्म इस काल में एक था, उसमें खान-पान, रोटी, , का निकट सम्बन्ध था, उनमें पूर्व व्यावसायिक स्वतंत्रता थी, जैसा कि ऋषि का कहना है-''मेरा पिता वैद्य है, मेरी माता पीसनहारी है, मैं कविता ा हूँ।" (तथापि कुछ ऐसे तत्त्व भी प्राप्त होते हैं जो सामाजिक विकास के ांत में तथा सामाजिक वर्गीकरण के कारणभूत हैं। ऋग्वैदिक काल में कुछ सामाजिक परिस्थितियां आईं, जिनसे पृथक्-पृथक् वर्गों को जन्म मिला, न्तु वर्गों में विभक्त होने पर भी एक आस्था, एक विश्वास, एक उद्देश्य और तः एकात्मकता थी। मयूर (Muir) ने लिखा है कि ऋग्वेद काल में तिप्रथा नहीं थी, पुरुष सूक्त में ब्राह्मण, राजन्य वेश्य एवं शूद्र चार वर्णों का ल्लेख है। पर यह सूक्त बहुलवाद का है। अतः ऋग्वेद के मुख्य भाग के नाकाल का चित्रण इसमें नहीं है, परन्तु आर्यों एवं दासों में वर्ण के आधार र जातिप्रथा का उदय होता है यह भी कहा जाता है कि जिस समय ऋग्वेद अधिकांश मन्त्रों का सृजन हो रहा था, उस विश्वामित्र व वशिष्ठ के समय पुरोहित वर्ग या राजन्य-वर्ग परंपरागत न था। विराट् पुरुष द्वारा चार वर्गों की त्ति का विवरण पुरुष सूक्त में प्राप्त है। उन्हीं के आधार पर इन वर्गों का कर्मानुसार विभाजन परवर्ती काल में इस प्रकार किया गया है-धार्मिक त्य-व्यवस्था, अध्ययनाध्यापन के लिए एक ब्राह्मण बना, होतृ, पोतृ, नेष्ट्र, ास्तृ, अध्यवर्यु, ब्रह्मा आदि सप्त पूरोधा इन्हीं में से होते थे। ब्राह्मण वर्ग के स्परिक विवाह आदि सम्बन्ध उन्हीं के वर्ग में होते थे। किन्तु कभी-कभी अन्य वर्गों में भी हो जाया करते थे। द्वितीय वर्ग राजन्य था, धार्मिक कृत्य के र ब्राह्मण। राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए, सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस राजन्य वर्ग का निर्माण हुआ। वैसे तो आर्यों को भारत में प्रारंभ से ही युद्ध करने पड़े थे। अतः उस काल में सभी सैनिक थे, किन्तु कालान्तर में धार्मिक यज्ञों के कर्त्ता–एक वर्ग का आविर्भाव हुआ तो धार्मिक यज्ञ-योगादि की रक्षा के लिए यह वर्ग शस्त्र धारण करता था, अनार्यों से आर्यों की रक्षा करता था। ऋग्वेद के एक मन्त्र में लिखा है कि आर्य सर्वतः शत्रुओं को घिरे हुए हैं, मानव नहीं है। इन परिस्थितियों में राजन्य वर्ग के सैनिक वर्ग की आवश्यकता नितान्त अपरिहार्य थी। सैनिकों के कार्य कठोर थे, अतः इनकी शिक्षा भी दुरूह थी, सैनिक कार्य में कुशलता पिता से पुत्र को सहज रूप में मिलती थी क्योंकि पूर्वजों के कार्यों में कुशलता प्राप्त होना मनोवैज्ञानिक सत्य है। इन परिस्थितियों में जो समुदाय या वर्ग बना, उसका नाम क्षत्रिय वर्ग था। इसी वर्ग के समस्त सामाजिक तथा व्यावहारिक विवाहादि कार्य भी इसी वर्ग में होने लगे। कुछ अन्य वर्ग भी जीवन श्वासे ले रहे थे, जिनका संकेत मात्र ही हमें मिलता हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल में ब्राह्मण-क्षत्रियों से अवशिष्ट आर्य जनता "विश" कही जाने लगी। प्रारंभ में यह शब्द भ्रमणशील आर्य जनता के लिए एक स्थान पर बैठ (विश) जाने से सम्पूर्ण आर्य जनता के लिए था, किंतु कुछ समय बाद यह एक वर्ग विशेष के लिए प्रयुक्त होने लगा। इन वर्गों के लिए ऋग्वेद के दशम मण्डल के एक-एक मन्त्र की प्रार्थनाएं हैं। वैश्यों का कार्यक्षेत्र विशाल था। इसी पर समाज की व्यवस्था आधारित थी क्योंकि प्रथम दोनों वर्गों के कार्य भिन्न थे। ऋग्वेद के दशम मण्डल के अनुसार शूद्र तो "पदभ्यामजायत" थे अतः उनका कार्य सेवा मात्र था। इसलिए समाज की जीविका आदि का निर्वाह वैश्य ही करते थे। समाज का समस्त उत्पादन उवं वितरण वैश्य वर्ण पर ही अवलम्बित था।

वैदिक काल में समाज का जो वर्गीकरण किया गया था–उसे वर्ण-व्यवस्था न कहकर वर्ग-व्यवस्था कहना अधिक समीचीन होगा, क्योंकि वह तो मात्र एक वर्गीकरण ही था, किन्तु यही सच है कि इसी वर्गीकरण में भावी वर्ण-व्यवस्था का मूल निहित था।

परिवार में पितृप्रधान सत्ता थी। एक पत्नी प्रथा थी, बहुपत्नी प्रथा भी अज्ञात न थी, किन्तु बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन राज-परिवारों में ही था। गृहकार्यों का पति ही सर्वेसर्वा था तथा पत्नी गृहस्वामिनी थी। पिता या पितामह कुटुम्ब का प्रधान होता था, वही गृहपति था, वही पालन-पोषण का भार वहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ा था, गृहपति का पद वंशानुगत था। वही सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता ऋग्वेद के अनुसार प्रत्येक को चल-सम्पत्ति का अधिकार था। पशु, अश्व, भूषण, अस्त्र, दास आदि व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप माने जाते थे। परिवार भूमि पर भी व्यक्तिगत अधिकार होता था। इसी अर्थ में "क्षेत्र" शब्द हृत हुआ है। अपाला नामक कुमारों का अपने पिता के उत्तराधिकारी के ा ही अपना उर्वर क्षेत्र था। भूमि नापी जाती थी, खेतों के बीच मेड़ें बनाई ी थीं। भूमि वितरण की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि भूमि अधिक थी। त्ति का अंकन जन एवं पशु-समुदाय की अधिकता के अनुसार होता था, नहीं, किन्तु पिता की एकमात्र सन्तान होने पर सह सम्पत्ति की अधिकारिणी ी थी। दत्तक पुत्र प्रथा थी। एक बात यह विशेष थी कि सम्मिलित परिवार थी, सामूहिक उत्तरदायित्व वहन करना पड़ता था, जो कि पारिवारिक ह का कारण बनता था, भ्रातृहीन बहनों की स्थिति अच्छी नहीं थी, -बहन की शादी निषिद्ध थी, बाल-विवाह अज्ञात था, वर के वरण करने स्वतंत्रता थी। एक बात और यह विशेष थी कि परिवार में पुत्र की कामना धिक थी।

आर्यों का सामाजिक संगठन इस प्रकार का था कि नारी का उसमें त्वपूर्ण स्थान था। कुमारी अवस्था तक वह पिता, भ्राता के संरक्षण में रहती ; इसके पश्चात् पति के, पति के अभाव में पुत्र के। पर्दा-प्रथा नहीं थी, यों को शिक्षा दी जाती थी, वे विदुषी होती थीं, विद्या के क्षेत्र में वे पुरुषों पीछे नहीं थीं, किन्तु रणक्षेत्र में उनका प्रवेश नहीं होता था। वैसे तो ऋग्वेद विष्पला नामक एक स्त्री युद्ध में जाती है तथा घायल होने पर अश्विनकुमारों उनकी चिकित्सा की थी, का उल्लेख मिलता है। विदुषी एवं वीर स्वभाव नारियों को पूर्ण स्वतंत्रता थी, स्वयंवर प्रथा का तो हम उल्लेख ऊपर कर चुके हैं। इसी के साथ नारी अपने रूप पर गर्व भी किया करती थी, अतः -सौन्दर्य एवं सौन्दर्यानुभूति की प्रधानता थी। आदर्श विवाह केवल एक जाता था, विवाह पर आज के समान उत्सव मनाये जाते थे। बारात, रोहित, अग्निपरिक्रमा आदि सभी कुछ होता था। वधुओं का अत्यधिक सम्मान था, उनकी मंगलकामना सर्वत्र होती थी—"हे वधू! अपनी सास-ससुर को वशीभूत कर लो, अपनी ननद तथा देवरों के मध्य रानी की भाँति सुशोभित हो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यों के वस्त्र युगानुकूल ही थे। वे तीन प्रकार के वस्त्र धारण करते थे, एक तो नीवी अर्थात् धोती, दूसरा वास और तीसरा अधिवास। ऊनी तथा सूती दोनों ही प्रकार के वस्त्रों का प्रचलन था। धन सम्पन्न व्यक्ति स्वर्णग्रथित वस्त्र धारण करते थे। उत्सवों पर उज्ज्वल एवं विशेष वस्त्र धारण करने की प्रथा थी। आभूषण-प्रथा भी प्रचलित थी। आभूषणों में कुण्डल, हार, अंगद, वलय गजरे आदि प्रमुख थे। नारियाँ साज-शृंगार भी खूब करती थीं क्योंकि तेल-कंघी सभी का उल्लेख मिलता है। पुरुष भी बड़े-बड़े बाल रखते थे। दाढ़ी रखने की प्रथा थी, कुछ व्यक्ति दाढ़ी मुंड़वा भी देते थे। सम्पूर्ण आर्य जाति स्वच्छ जीवन बिताना चाहती थी। ऋग्वेद काल में एक स्त्री चार वेणियाँ रखती थी।

भोजन में दूध महत्त्वपूर्ण था, दही-घृत का भी प्रयोग होता था, "क्षीर पक्वमौदकम्" भी था। पनीर भी भव्य था। रोटियां, चावल, घी के साथ खाये जाते थे। सम्भवतः बलि आदि के अवसर पर मृत पशुओं—भेड़, बकरी आदि का मांस भक्ष्य था। गाय के लिए 'अघन्या' शब्द का प्रयोग हुआ है। सुरा-सुन्दरी का भी चमत्कार प्रचलित था। अतः यदा-कदा समाज में दुराचार भी सुनने को मिल जाता था। मधुर पेय पदार्थ सोम था जिसके गुणगान से ऋग्वेद का नवम मण्डल भरा हुआ है।

आमोद-प्रमोद के साधनों में रथ-दौड़, घुड़दौड़, नृत्य-संगीत प्रमुख थे। जुआ भी प्रचलित था। जुआरी की दुर्दशा का वर्णन भी प्राप्त होता है पुरुष और स्त्रियां नृत्य भी किया करते थे। वाद्य-यन्त्रों में दुन्दुभी, कर्करा, वेणु नाड़ी आदि का उल्लेख मिलता है।

वैदिक काल की सामाजिक स्थिति का अध्ययन कर हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि युगानुकूल आर्यों की सामाजिक स्थिति अच्छी थी, नैतिक स्तर उन्नत था। मनुष्य सदाचारी थे। समाज में सुख-शान्ति थी।

भारतीय सभ्यता के इतिहास में राजसंस्था चिरकाल से चली आ रही है। वैदिक काल में भी इसकी महत्त्वपूर्ण स्थिति थी। वेद मंत्रों को देखकर हमें यह भी आभास मिलता है कि उस काल में जनतन्त्र की भावना और जनता का भी अपने राज्य-शासन में महत्त्वपूर्ण स्थान था। राष्ट्रीय उन्नति के लिए सर्वांगीण उन्नति की सर्वत्र कामना है। कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि वैदिक कालीन भारत की शासन-व्यवस्था को सुसंगठित थी। राजनीतिक अवस्था के अध्ययन के लिए हम समस्त शासन-व्यवस्था को पांच विभागों में विभक्त कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ओ–१. कुटुम्ब, गृह या कुल, २. ग्राम, ३. विश, ४. जन, ५. राष्ट्र। कुटुम्ब– वैदिककालीन कौटुम्बिक जीवन अत्यधिक सुगठित था। कुटुम्ब ही राष्ट्र के ...न की इकाई था। कुटुम्ब का वृद्ध व्यक्ति गृहपति था। प्रत्येक कौटुम्बिक ...स्या का समाधानकर्त्ता भी यही था। प्राचीन काल में प्रायः ग्राम के ग्राम एक कुटुम्ब के सदस्य होते थे। ग्राम–जब कभी कई कुटुम्ब एक ही स्थान पर ...े लगते थे, तब वे ग्राम कहलाते थे, उन सभी व्यक्तियों की सम्मिलित ...स्था के लिए एक नये अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी, उसका नाम ...णी था। ग्रामणी के निर्वाचन का आधार क्या था, इसका ऋग्वेद में किसी ...ार का संकेत नहीं मिलता है, किन्तु शासन–व्यवस्था ग्रामणी का अत्यधिक ...त्वपूर्ण स्थान था ऋग्वेद में ब्रजपति शब्द का प्रयोग सम्भवतः ग्रामणी के ...र ही हुआ है। विश–विश के संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा ...ता है। फिर भी एक स्थान पर यह आभास मिलता है कि विश एक ...-विशेष था। विश का प्रधान विशपति कहलाता था। इसी विश से वैश्य ...ि का उद्भव माना जाता है कई विश मिलकर जन बनते थे। जन का प्रधान ... कहा जाता, गोप का शासन–व्यवस्था में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान था। ...-देश के लिए राष्ट्र शब्द का व्यापक प्रयोग मिलता है। राष्ट्र शब्द से यह ...ुमान सहज ही किया जाता है कि उस समय में शासन–व्यवस्था सुविकसित ...ति में थी। संघात्मक सरकार होने की भी सम्भावना की जा सकती है। राजा ... राष्ट्र की शासन–व्यवस्था का सर्वेसर्वा तथा कर्णधार होता था। ऋग्वेद में ...ा शब्द का व्यापक प्रयोग हुआ है। यजुर्वेद के एक उल्लेख के अनुसार राजा ...ी स्थिति प्रजा पर निर्भर होती है–"विशि राजा प्रतिष्ठितः" तथा हे राजन्! ...ु प्रजाओं द्वारा राज्य–शासन के लिए चुने जाओ–"त्वां विशो वृणुता राज्याय", ...थर्ववेदीय यह उद्धरण भी इसी भाव को पुष्ट करता है कि राजा ही राष्ट्र का ...धिकारी होता था, प्रजा का उसमें महत्त्वपूर्ण स्थान था। राजा शब्द की उत्पत्ति ... सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु ऐतरेय तथा तैत्तिरीय ...ह्मण में दो कथाएं आती हैं जिनसे राजा के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश पड़ता ...। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि देवासुर संग्राम में असुर विजयी हुए। उस ...मय देवों ने कहा कि हमारी पराजय का मुख्य कारण राजा का न होना ही ...। इसलिए हमें राजा का निर्माण करना चाहिए। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से ...्वीकृत हुआ। तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है कि देवासुर संग्राम में देव एवं असुर ...ोनों ने ही अपने–अपने सेनापतियों के पुत्रों को छिपा दिया, किन्तु राजा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभाव में युद्ध कैसे हो सकता था। अतः देवों ने प्रजापति से कहा कि राजा के बिना युद्ध असम्भव है, फिर देवों ने यज्ञ किया और इन्द्र से राजा होने की प्रार्थना की तथा विजय प्राप्त की। इन पौराणिक आख्यानों से हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्राचीन काल में युद्ध संचालन के लिए किसी शक्ति सम्पन्न व्यक्ति की आवश्यकता होती थी। वही सुरक्षा का भार लेकर न केवल सैनिक संगठन अपितु धन-संचय, शान्ति-व्यवस्था व सुन्दर शासन-व्यवस्था भी करता था। ऋग्वेद में मित्र, वरुण, अग्नि आदि देवताओं ने अपने राजस्व के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, उससे ज्ञात होता है कि वे राजा वैभवशाली होते थे। इनका शासन सर्वत्र अप्रतिहत था। ऋग्वेद के मंत्रों से राजा ही न्याय करता था, वही दण्ड देता था, गुप्तचरों का भी अपने शासन के लिए उपयोग करता था। राजा प्रजापालक, दीनबन्धु था, उसे जनता से उपहार भी मिलता था। ऋग्वैदिक काल में ब्राह्मण रक्ष्य थे। राजा वैभवशाली थे, सहस्र स्तम्भों से निर्मित स्वर्णिम भव्य एवं सुन्दर महल उसके निवास स्थल थे।

ऋग्वेद के अध्ययन करने पर हमें अन्य शब्द भी मिलते हैं जिनका राज्य-शासन में योगदान स्वीकार किया जा सकता है। राजन्य-शब्द इसी प्रकार का है। इस शब्द का वेद में अत्यधिक प्रयोग किया गया है जिसका तात्पर्य जमींदार या राजा होता है। राजन्य निश्चित ही राजा के सहायक होते थे, स्वयं भी प्रजाहित में संलग्न रहते हैं। अधिक कहें तो राजन्य ही परिवर्त्ती काल में क्षत्रिय कहे जाने वाले वर्ग के पूर्वज थे। सम्राट् शब्द भी अनेकशः वेद में प्रयुक्त हुआ है। सम्भवतः यह किसी चक्रवर्ती राजा के लिए प्रयुक्त हुआ है, किन्तु प्रमाणभाव में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। उस काल में राजाओं की सहायता या मन्त्रणा देने के लिए मंत्री भी होते थे। अधिकतर मंत्री पुरोहित वर्ग के ही थे। इन राजा के सहायकों में सर्वप्रधान पुरोहित था, वह राजा के सभी कार्यों में सहायक होता था। यज्ञ कार्य सहायक पुरोहित या पुरोधा होते थे। यही पुरोहित राजा का अभिन्न हृदय, मित्र, पथ-प्रदर्शक, रणक्षेत्र का साथी, मंत्रदृष्टा तथा स्तुतिकर्त्ता भी होता था जहां पुरोहित एक ओर धार्मिक कृत्यों में प्रधान सहायक होता था। वहीं वह युद्ध एवं राज्य-शासन में भी राजा का हाथ बंटाया करता था। कीथ ने लिखा है–

''पुरोहित राजा के साथ रणक्षेत्र में जाता था और अपनी प्रार्थनाओं व मन्त्रों द्वारा राजा की विजय का यत्न करता था, अपनी इस सेवा के लिए अनेकशः पुरस्कृत भी होता था। इसलिए यह कहा जा सकता है कि पुरोहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रतिष्ठा लब्ध सम्पन्न व्यक्ति होता था। युद्ध-संचालन के लिये एक सेनानी या सेनाध्यक्ष की सत्ता का भी संकेत हमें वेद मंत्रों में मिलता है, जिसकी नियुक्ति सम्भवतः राजा स्वयं ही करता था। ऊपर हमने ग्रामणी का संकेत किया है। ग्रामणी के कुछ अन्य सहायक या उसी वर्ग के ''उपस्थित'' तथा 'इम्य'' नामक पदाधिकारी भी होते थे। राज्य-शासन-व्यवस्था के लिए सदाचार वाहक दूत भी होते थे जो कि बुद्धि-सम्पन्न एवं कार्य-कुशल तथा राजा के प्रियजन थे। अस्तु, हम कह सकते हैं कि उस सभ्यता के स्वर्णिम प्रभात में आर्यों ने अपनी राजनैतिक स्थिति दृढ़ बनाने के लिए सुशासन के लिए समुचित व्यवस्था कर रखी थी।

वेद के मंत्रों में हमें सभा, समिति एवं सभ्य तीन शब्दों शब्दों का भी उल्लेख मिलता है जो कि प्रजा का प्रतिनिधित्व करने वाली इकाइयां भी थीं। इन सभा एवं समिति के प्रधान पद का अधिकारी राजा ही होता था। लुडविग ने लिखा है कि सभा में उच्च कुल के व्यक्ति भाग लेते थे तथा समिति में जन साधारण। किन्तु सिमर की अपनी कुछ भिन्न मान्यता है। उसके अनुसार समिति में समस्त जनता भाग लेती थी किन्तु सभा केवल गांव के लिए होती थी। इसी सम्बन्ध में कीथ ने अपनी उद्गार इस प्रकार व्यक्त किये हैं–

"समिति सम्पूर्ण जाति के लिए जनता की बैठक थी और सभा समिति के एकत्र होने का स्थान था जहां सामाजिक बैठक होती थी।" हाँ, एक बात स्पष्ट है कि सभा एवं समिति के सदस्य को सभ्य कहा जाता था। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि राज्य संचालन के लिए सभा एवं समिति आवश्यक तत्त्व थे जो कि शासन व्यवस्था में अपना योगदान देते थे। निरंकुश होते हुए राजा पर कभी-कभी प्रतिबन्ध भी लगाती थी।

वैदिक काल में राज्य शासन के संचालन के लिए न्याय व्यवस्था भी थी। एक बात उस न्याय-व्यवस्था की विशेष थी वह यह कि दण्ड कठोर था, अर्थात् खून का बदला खून ही था। मनुष्य की कीमत भी निश्चित थी। वैदिक न्याय-व्यवस्था की कठोरता का संकेत हमें मनुस्मृति में मिल जाता है। ऋग्वेद में मनुष्यों के लिए बन्दी गृह भी थे। अपराध सिद्ध के लिए जल एवं अग्नि संबंधी परीक्षाएं होती थीं।

वैदिक काल का प्रमुख अपराध पशु चोरी था और कभी-कभी अन्न, वस्त्र, द्रव्य के चोरों का भी संकेत मिल जाता है, किन्तु इन अपराधियों का पता लगने पर उन्हें कठोर दण्ड भी दिया जाता था। न्याय-व्यवस्था का यह प्रथम प्रयास था जो कि क्रमशः सुधारोन्मुख था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध :

आर्यों को युद्धप्रिय कहा जाता था, यह उनका एक विशिष्ट गुण था। ऋग्वेद में इसका पर्याप्त उल्लेख हुआ है। युद्ध विशेषतः आत्मरक्षा, विजय तथा सांस्कृतिक प्रसार के लिये किया जाता था। सेना में पैदल तथा रथों का प्रमुख स्थान था। रथों में दो, तीन, चार तक अश्व जोते जाते थे। ऋग्वेद-कालीन अस्त्रों में धनुष, बाण, कवच, हस्तघ्न (बाहुरक्षक) तलवार, भाला, बर्छी आदि थे, किन्तु इन सामान्य अस्त्रों से भी युद्ध भयंकर तथा दीर्घकालीन होते थे। राजा के नेतृत्व में सेना आक्रमण करती थी, पुरोहित उत्साहवर्धन एवं अपने पक्ष की विजय के लिए प्रार्थनाएं करते थे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आर्यों ने अपने सुख एवं शान्ति के लिए एक संगठित शासन व्यवस्था का निर्माण किया था।

आर्थिक स्थिति :

वैदिक आर्यों के समग्र जीवन पर दृष्टि निक्षेप करने पर हम कह सकते हैं कि वे राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन में पर्याप्त विकास कर चुके थे। उनका जीवन सुव्यवस्थित जीवन था। इसलिए वैदिक आर्यों को हम सुसंस्कृत एवं सभ्य जातियों के समान ही आर्थिक जीवन के विकास के लिए पशुपालन, कृषि, गृह, उद्योग, धन्धे तथा व्यापार करते हुए पाते हैं।

आर्यों की आर्थिक अवस्था का मूलाधार पशुपालन ही था, सांड एवं बैलों से कृषि की जाती थी। ये पशु अन्न एवं भोज्य पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का कार्य भी करते थे। अन्य पालतू पशुओं में भेड़, बकरा-बकरी, गदहे तथा कुत्ते प्रमुख थे लेकिन सर्वाधिक महत्त्व गाय को दिया गया। इन पशुओं के लिए चारागाह एवं चरवाहों का भी उल्लेख ऋग्वेद में मिल जाता है इन पशुओं के स्वामित्व के चिह्न के लिए कानों पर चिह्नांकित रहता था। उस काल में प्रायशः पशुहरण किया जाता था। पशु धन में गाय के बाद घोड़े का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। घोड़े, युद्ध के अतिरिक्त रथ खींचने के काम में आते थे।

आर्यों का जीवन कृषक जीवन था। पशुपालन के अतिरिक्त उनकी जीविका का साधन कृषि थी। कुछ ऐतिहासिकों का कहना है कि कृषि, आर्यों का प्राचीनतम व्यवसाय है जो सर्वथा सत्य है। हमें ऋग्वेद "कर्षण" शब्द अनेकशः मिलता है। कर्षण शब्द भारतीय ईरानी आर्य कृष् धातु से निष्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानते हैं। अतः हम यह भी कह सकते हैं कि इन दोनों जातियों के विभाजन से पूर्व ही कृषि-कर्म प्रधानता प्राप्त कर चुका था। यद्यपि आज की भांति ही बैलों से हल जोते जाते थे, किन्तु हलों में छः, आठ, बारह बैल तक जोड़ दिये जाते थे। उस काल में प्रधान खेती "यव" तथा "धान्य" की होती थी। यही आर्यों के प्रिय भोजन के अंग थे। सिंचाई व्यवस्था के लिए कुंओं का निर्माण किया जाता था। ऋग्वेद के दशम मण्डल के एक मन्त्र में लिखा है कि कूप से जल निकालकर एक बड़े तालाब या नहर में सिंचाई के लिए भर दिया जाता था। कुल्य (नाली) तथा झीलों से सिंचाई का कार्य होता था। अच्छी फसल पैदा करने के लिए उस समय खाद भी प्रयोग किया जाता था, खाद को "करिष" कहते थे। आशय यह है कि अच्छी प्रकार से जुताई-बुवाई करके खाद द्वारा खेतों को उर्वर बनाया जाता था, सिंचाई की व्यवस्था भी थी और वैदिक आर्य अच्छी खासी फसल पैदा कर लेते थे। फसल तैयार होने पर स्त्रियां (हंसिया) से उसे काटते थे। उसका गट्ठर या बोझ बनाते थे। अन्न को एकत्र कर रौंदकर धान्यकृत (ओसाते) करते थे और अपनी फसल तैयार कर घर ले जाते थे। यत्र-तत्र फसल को हानि पहुंचाने वाले कीड़े-मकोड़ों का भी वेद में उल्लेख मिल जाता है कभी-कभी अनावृष्टि एवं अतिवृष्टि भी शस्य को क्षति पहुँचा देती थी।

निम्न वर्ग के व्यक्ति अपने जीवनयापन के लिए आखेट भी करते थे जो कि उनके जीवन के मुख्य कार्यों में से एक था। शिकारी धनुष वाण एवं जाल का उपयोग करते थे। जाल से सिंह पकड़ने का वर्णन भी मिलता है। खन्दक में हिरण को गिराकर तथा कुत्तों द्वारा सूअर का शिकार भी किया जाता था। चिड़ियां जाल में फंसाई जाती थीं। हाथियों को वश में करने के लिए पालतू हाथियों का उपयोग किया जाता था। बाण के द्वारा भैंसों का शिकार होता था।

वैदिक काल में विभिन्न प्रकार की दस्तकारी का भी उल्लेख मिलता है। उस समाज में बढ़ई का आदरपूर्ण स्थान था, क्योंकि यह युद्ध आदि के लिए रथ बनाता था तथा कृषि आदि के लिए गाड़ी व हल बनाता था। वह लकड़ी पर नक्काशी का कार्य भी किया करता था। धातुकार और लोहार को समाज में द्वितीय स्थान प्राप्त था। आग धोकने के लिए पंखे का प्रयोग होता था। हिरण्यकार हिरण्य से आभूषण बनाता था। ऋग्वेद से यह भी पता चलता है कि सिन्धु जैसी नदियों में स्वर्ण प्राप्त होता था, इसलिए, सिन्धु को स्वर्ण निर्झरिणी भी कहा जाता है कभी-कभी भूमि से सोना भी निकाला जाता था। आशय क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था? यह अनिश्चित है। उस समाज का चौथा व्यक्ति चर्मकार था जिसे चमड़ा पकाने की कला का ज्ञान था, जो कि चमड़े से विभिन्न चीजों का निर्माण करता था। स्त्रियां कपड़ा सीने, बुनने तथा चटाई बनाने का कार्य करती थीं। इन सभी कार्यों को करने वाले को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था जैसा कि आज के समाज में देखा जाता है विभिन्न प्रकार के कार्य करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र था। वेद में एक स्थान पर वर्णन मिलता है कि–"मैं कवि हूँ, मेरे पिता वैद्य हैं और मेरी माता पीसनहारिन है।" दास अपने स्वामी के कार्यों में सहायता करते थे, चाहे वे कार्य कृषि के हों, अथवा औद्योगिक या पशुपालन सम्बन्धी ही क्यों न हों। मत्स्य पालन का स्पष्ट वर्णन वेद में नहीं है और न सामुद्रिक व्यापार में ही आर्य कुशल थे, किन्तु नदी पार करने के लिए नाव का प्रयोग होता था।

व्यापार के क्षेत्र में आर्यों ने उस युग में जो उन्नति की, वह सीमित साधनों को देखते हुए पर्याप्त थी। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही प्रकार के व्यापार उस युग में चलते थे। आर्यों ने सिक्कों का भी निर्माण किया था। कुछ विद्वानों ने "निष्क" को एक सिक्का कहा है। अन्य उसे एक आभूषण कहते हैं। अधिकतर व्यापार विनिमय प्रथा द्वारा ही होता था। ऋग्वेद में इन्द्र की मूर्ति का मूल्य गायें लिखा है। ऋग्वेद में एक स्थान पर सौदा तय करने में मोल-तोल करने का सुंदर वर्णन आया है, ऋण के लेन-देन का भी वर्णन मिलता है। पशु भी धन था, अश्व को भी धन लिखा है। वीर को भी धन की संज्ञा दी है। योग्य पुत्र भी धन बताया गया है कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वैदिक भारत में आर्थिक विषमता न थी, जन जीवन सुखमय था।

धार्मिक स्थिति :

वैदिक काल भारतीय आर्यों का स्वर्णिम प्रभात है। उस स्वर्णिम काल में ही उन्होंने अध्यात्म जगत में प्रथम पदार्पण किया था, किन्तु इस स्वर्णिम उदयकाल में ही आर्यों ने जो उन्नति एवं विकास किया था, तदनुरूप उनकी मान्यताएँ आस्थाएं आज तक अविचल रूप में प्रतिष्ठित हैं। मेरा तो अपना विश्वास है कि वैदिक काल में आध्यात्मिक क्षेत्र में जो अभ्युत्थान हुआ उसके पीछे शताब्दियों की शिक्षा, योग्यता एवं मान्यताओं का योग है जिनके योग से आर्यों ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया है।

वैदिक शिक्षा का आदर्श महान् था, प्रान्त, परम्परा, सभ्यता एवं संस्कृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रक्षा इस शिक्षा का उद्देश्य था, ब्राह्मण गुरु था, शिक्षक था, उनके घर तथा आश्रम शिक्षालय थे। श्रुति का अध्ययन श्रवण करके ही होता था। शिक्षा पद्धति में तप का महत्त्वपूर्ण स्थान था। आत्मशिक्षण, आत्मानुभूति की प्रधानता थी। इस प्रकार गुरुचरण सुश्रूषा, तप एवं त्याग तथा श्रवण, मनन निदिध्यासन उस शिक्षा के आदर्श थे। इन आदर्शों से निर्मित आर्यों का धर्म एवं दर्शन अद्वितीय था। वैदिक जीवन में पुरोहितों का महत्त्वपूर्ण स्थान था, ऋग्वेद में प्रतिबिम्बित धार्मिक जीवन में आदिवासियों का सा विश्वास नहीं है अपितु पुरोहितों के चिरचिन्तन की साधना की छाप है। मनुष्य प्रकृति के निकट था, अतः सर्वप्रथम प्रकृति की उपासना होती थी। ऋग्वेद में तैंतीस देवों का उल्लेख है। परवर्ती संहिताओं में प्रजापति आदि देवों का और भी विकास अवधेय है। मुख्य देवताओं के रूप में द्यौ, पृथ्वी, वरुण, इन्द्र की पूजा होती थी। पाँच सौर्य देवता थे–सूर्य, सविता, मित्र, पूषन, विष्णु। शिव रूद्र के नाम से कथित हैं। अश्विनी, मरुत, वायु, वात, पर्जन्य, उषा भी ऋग्वेदकालीन देवता थे। इन देवों में से इन्द्र, अग्नि, सोम को लक्ष्य कर पर्याप्त सूक्तों का सृजन हुआ है। सूर्य को भी अनेक नामों से याद कर उसे महत्त्व प्रदान किया गया है कुछ भावात्मक देवता थे, जैसे–श्रद्धा, मन्यु, प्रजापति, आदित्य तथा अदिति। परवर्ती साहित्य में यही भावात्मक देव प्रजाति अत्यधिक महत्त्व प्राप्त करती है। वैदिक थियोलॉजी की प्रकृति देवताओं को युगल या समूह रूप से कहने की भी रही है, जैसे–मित्रावरुणी, द्यावा पृथ्वी तथा समूह रूप में, यथा मरुत, आदित्य, वसु, शिश्वदेवाः आदि। कुछ के साथ स्त्रीत्व बोधक नाम संयुक्त हैं, जैसे–पृथ्वी उषा। अधिक सरल प्रकृति पूजा का रूप उन मन्त्रों में है जिनमें वृक्ष पर्वत आदि वर्णित हैं। देवता की पशुरूप में भी सत्ता दृष्टिगोचर होती है। इन्द्र एवं द्यौ को बैल के रूप में सूर्य का अश्व के रूप में वर्णन किया गया है वर्षा के निरोधक तत्त्व "अहि" शब्द से कथित है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उस सभ्यता के आदिकाल में बहुदेवतावाद और प्रकृति की उपासना का समन्वय है। प्रकृति पूजा अपने स्थूल रूप में न होकर लाक्षणिक ही थी। देवी देवताओं की उपासना के लिए किसी असाधारण या अमानवीय दैवी शक्ति की कल्पना करना अनिवार्य है और कल्पना उसी स्थिति में सम्भव है जब कल्पितवस्तु का कभी साक्षात्कार हो चुका हो। प्रकृति-विद्युत-सागर, वात, अग्नि आदि की शक्ति का साक्षात्कार मानव को सर्वप्रथम हुआ, अतः इसी शक्ति में उन्होंने देवताओं को आरोपित किया होगा। अतः भारतीय आर्यों का धर्म प्रकृति-पूजा पर आधारित बहुदेववाद था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु ऋग्वेद काल से या ऋग्वेद में ही एकेश्वरवाद की ओर जो स्पष्ट संकेत प्राप्त है, वह भी इनकी अध्याय की उन्नति की पराकाष्ठा का द्योतक है। इन सारे देवताओं से परे उन्होंने एक एक सत्ता की कल्पना की जो सर्वोपरि है और समस्त सृष्टि की जन्मदात्री है। वह सर्वोपरि शक्ति कुछ नहीं है जिसे "एक सद्विपा बहुधा वदन्ति" के द्वारा प्रतिपादित किया गया है श्री बलदेव उपाध्याय ने लिखा है कि–"ऋग्वेद के आदिकाल में बहुत देवताओं की सत्ता मानी जाती थी जिसे वे पॉलीथिज्म (बहुदेववाद) की संज्ञा देते हैं। कालान्तर में जब वैदिक आर्यों का मानसिक विकास हुआ तब उन्होंने इन बहुदेवताओं को अधित्राति या प्रधान रूप में एक देवता विशेष की कल्पना की। इसी का नाम है–मनोथीज्म (एकेश्वरवाद)।" अतः बहुदेवतावाद के बहुत काल के पीछे एकेश्वरवाद का जन्म हुआ और उसके भी अवान्तर काल में सर्वेश्वरवाद (मैनथीज़्म) की कल्पना की गई। सर्वेश्वरवाद का सूचक पुरुष सुक्त दशम मण्डल का ९०वां सूक्त है जो पाश्चात्य गणना के हिसाब से दशरथी के मण्डलों में सबसे अधिक अर्वाचीन है।

देवता मानव के रक्षक, मित्र, पिता आदि सभी रूपों में सहायक थे– अग्निदेव को रक्षक, घर का स्वामी तथा निकट सम्बन्धी कहा गया है यही नहीं, वह तो कृपालु, मित्र, पिता, भ्राता, पुत्र तथा सर्वपालक भी है। इसी प्रकार इन्द्र की पिता, रक्षक, धनदाता आदि रूप से प्रशंसा की गई है। मनुष्य अपने देवों को प्रसन्न रखने के लिए प्रार्थनाएं करते थे। दूध, घृत, सोम तथा अन्य खाद्यान्न उसके नाम से यज्ञों में हविष्य देते थे, यज्ञों को प्रधानता प्राप्त थी, ब्राह्मण काल में तो यज्ञ ही सर्वस्व थे। यज्ञों से होता नामक ऋत्विज मन्त्र पाठ करता था, अध्यवर्यु शारीरिक क्रियाएं करता था, उद्गाता नामक ऋत्विज उच्च स्वर में सामगान करता था, ब्रह्म नामक ऋत्विज क्रिया–कलाप की देख रेख करता था।

दर्शन :

भारतीय दर्शन का उदय भी ऋग्वेद के दशम मण्डल में दृष्टिगोचर होता है बहुदेवतावाद के विषय में प्रश्न उठाया गया है विश्व की एकता का प्रतिपादन किया गया है असत् से सत् के उत्पन्न होने की बात कही गई है। सर्वप्रथम जल की उत्पत्ति हुई, फिर तेज की उत्पत्ति हुई है। धीरे–धीरे समग्र सृष्टि उत्पन्न हुई। इस विषय के अनेक मन्त्र मिलते हैं। जिनमें सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकेत किया गया है सृष्टि की रचना विश्वकर्मा या हिरण्यगर्भ से कही गई है। पुरुष के यज्ञ से विश्व की उत्पत्ति बतलाई गई है। मृत्यु के उपरान्त शव जलाये जाते थे अथवा गाड़ दिये जाते थे। यदि जलाए भी जाते थे तो उनकी भस्म गाड़ देते थे। सतीदाह नहीं होता था यद्यपि यह अज्ञात न था।

नैतिक आदर्श :

वैदिक साहित्य में नैतिक आदर्शों पर बल दिया गया है नैतिक आदर्श की महानता पर ही धर्म की श्रेष्ठता प्रतिष्ठित थी। कोरा दर्शन ही सब कुछ नहीं था, नैतिक आदर्श ही मानवता के निर्माण में सहायक होते थे। ऋग्वेद में लिखा है कि देवता, मित्र, वरुण, अमृत को जीतकर ऋत का पालन करते हैं। वरुण, अमृत से घृणा करते हैं और ऋत की वृद्धि करते हैं। देवता ऋत में पैदा होते हैं, ऋत को पालते हैं तथा अमृत से सर्वथा घृणा करते हैं। यजुर्वेद की चालीसवें अध्याय में दूसरे के धन के लिए लालच का निषेध किया गया है, "मागृधः कस्यास्विदनम"। उपनिषदों में आचार्य शिष्य को जो उपदेश देता है, वह नैतिकता की चरम सीमा का उपदेश है—सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो। स्वाध्याय में आलस्य मत करो। सत्य से विचलित नहीं होना चाहिए। धर्म से विचलित नहीं होना चाहिए अर्थात् सत्य एवं धर्म के पालन में प्रमाद नहीं करना चाहिए। स्वाध्याय और उपदेश सुनने में प्रमाद नहीं करना चाहिए। माता के भक्त बनो, पिता के भक्त बनो, आचार्य के भक्त बनो, अतिथि के भक्त बनो अर्थात् इनकी सदा सर्वदा सेवा करो। अन्त में आचार्य बड़े ही भावों की बात कहता है कि हमारे जो उत्तम कर्म हैं उनका सेवन करना चाहिए, दूसरे (निन्दित) का नहीं। जो हमारे सदाचार हैं उन्हीं को तुम्हें अपनाना चाहिए, दूसरों को नहीं।

सत्यं वद। धर्मंचर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।
सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्।
कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्।
स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।
मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्या देवो भव।
अतिथि देवो भव।
यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि।
यान्मस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।

वैदिक काल में सदाचार की प्रधानता थी। एक ऋषि प्रार्थना करता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि उसने भाई, साथी, पड़ोसी या किसी अपरिचित का कुछ अहित किया हो तो वरुण देव उसका पाप हर लें। इसी प्रकार सविता देव से भी अपने समस्त पापों को दूर करने की प्रार्थना है।

प्राचीन आर्यों में अतिथि-सत्कार का महत्त्वपूर्ण स्थान था। प्राचीन सभ्यता के अनुयायी भारतीय ग्रामों में आज भी अतिथि को देवता के समान पूजा जाता है ऋग्वेद में अग्नि को अतिथि कहा है उसका आशय यह है कि जिस प्रकार अग्नि पवित्र और उपास्य है इसी प्रकार अतिथि उपास्य, पूज्य एवं पवित्र है। दिवोदास अतिथि सत्कार में सदैव तत्पर रहता था। अतः उसे "अतिथिग्व" की उपाधि से विभूषित किया गया था। गृह का श्रेष्ठतम प्रकोष्ट अतिथि के लिये दिया जाता था।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैदिक आर्यों की धार्मिक, दार्शनिक तथा नैतिक मान्यताएं उत्कृष्ट थीं। निःसन्देह चिरन्तन काल से वेद भारतीय संस्कृत के प्रकाश स्तम्भ रहे हैं। भारतीय समाज के संगठन और उसकी जीवनचर्या के नियम और व्यवस्थापन के साथ-साथ उसकी आध्यात्मिक कथा अन्य उदात्त भावनाओं की प्रेरणा में भी वेद का प्रमुख स्थान रहा है।

नारी का स्वरूप :

ममता की मञ्जूषा, स्नेह का सदन, दया का उद्गम, क्षमामय सुमेरू, विधाता की कलापूर्ण सृष्टि का शृंगार, पृथ्वी की कविता-देश के निर्माण की आधारशिला, उमा-रमा सरस्वती के समान नारी, तेरा इस भारत वसुन्धरा पर सदा-सर्वदा से आदरणीय स्थान रहा है नारी तुझे ही लक्ष्य कर किसी कवि ने ठीक ही अपने भावोद्गार इस रूप में व्यक्त किए हैं–

मानवता है मूर्त्तिमती तू भाग्यभाव, भूषण भण्डार।
दया क्षमा ममता की आकर विश्व प्रेम की है आधार॥

किन्तु प्रकृति में सत्त्व, रज, तम नाम के तीन गुणों का साम्य है। मानव मात्र में इन तीन गुणों का होना परम आवश्यक है। अतः कर्मानुसार कोई सात्त्विक, कोई राजस और कोई तामस होता है इसलिए हम कह सकते हैं कि सृष्टि के आदि से आज तक इन तीनों गुणों के आधार पर ही सृष्टि संरचना होती रही है। प्राचीन काल में सात्त्विक व्यक्तियों की प्रधानता थी अतः समाज में शान्ति थी, व्यक्ति आदर्श चरित्र थे, किन्तु यह कहना सर्वथा असंगत होगा कि उस काल में राज्य और तामस प्रकृति के व्यक्ति नहीं थे। इसलिए वैदिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल में जहां मन्त्र द्रष्टा ऋषिकाएं थी वहीं क्रूर स्वभाव नारियां न हों यह कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता है। संसार में शुभ-अशुभ, अच्छाई-बुराई का द्वन्द्व शाश्वत् है। देवासुर संग्राम, इन्द्र-वृत्त संग्राम विश्व के प्रतिफलन के आवश्यक तत्त्व हैं। अतः समाज में देव और दानव दोनों की सत्ता रहती है और सदा से रहती आई है।

वैदिक ऋषियों की यह सदा कामना रही है कि समाज में सद्वृत्तियों का प्रसार हो, अतः वेद के मन्त्रों में सर्वत्र भ्रष्ट व्यक्तियों से बचने के लिए प्रार्थना है कि यम-यमी का संवाद ऋग्वेद में नैतिकता का अमर सन्देश देता है। एक ओर सृष्टि प्रवर्तन के लिए यमी अपने भाई से अनुचित सम्बन्ध के लिए कहती है, किन्तु यम समझाते हुये अंत में मंगल कामना के साथ कहता है—"यमी, तुम किसी अन्य पुरुष का ही भली-भांति आलिंगन करो। जैसे लता वृक्ष का वेष्टन करती है, वैसे ही अन्य पुरुष तुम्हें आलिंगन करें, उसी का मन तुम हरण करो, वह भी तुम्हारे मन का हरण करे, अपने सहवास का प्रबन्ध उसी के साथ करो—इसी में मंगल होगा।"

ऋग्वेद का अध्ययन करने पर विदित होता है कि कन्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक स्त्री जाति का बड़ा सम्मान व सत्कार था। जो कन्या पितृ कुल में जीवन भर अविवाहित रहती थी, उसे पितृ कुल में ही अंश मिलता था। इन्द्र जैसे आमरण माता-पिता के साथ रहने वाली पुत्री अपने पितृ कुल से ही अंश के लिए प्रार्थना करती है (२.१.७.७)। वैदिक आर्य कमनीय कन्या की प्राप्ति के लिए कामना करते थे। ऋग्वेद के नवम मण्डल में पूषा देव से कमनीय स्त्री एवं कमनीय कन्या की याचना है। (९.६७.१०.१२) ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में यथाविधि विवाहित और सती महिला की महान प्रशंसा है। बलि के राज्य के समान सती का सतीत्व सुरक्षित माना गया है उसी सूक्त में आगे शुद्ध चरित्र की नारी की प्रशंसा है, वहां यह भी कहा है कि तपस्या और सच्चरित्रता से निकृष्ट पदार्थ भी उत्तम स्थान को प्राप्त कर सकता है। (१०.१०९)।

ऋग्वेद में नारी के विवाह के सम्बन्ध में अनेक मन्त्र हैं। वहां लिखा हुआ है कि विवाह के समय वधू वस्त्रों से ढकी रहती है। सूर्य के विवाह का अलंकारिक वर्णन है। पति-पत्नी के मिलकर रहने की कामना है। वधू को सौभाग्यवती और सुपुत्र वाली होने की कामना है। पति-गृह में जाकर गृहिणी बनने का आशीर्वाद भी है। पति-गृह में सन्तान उत्पन्न करके प्रसन्न होना, वहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावधान होकर कार्य करना, स्वामी के साथ एक हो जाना तथा वृद्धावस्था तक अपने गृह में प्रभुता करने का संकेत मिलता है। देव ही पति को पत्नी देते हैं, वह इसलिए कि दोनों ही गृहस्थ धर्म का पालन करे। दोनों के लिए सौ वर्ष जीवित रहने की कामना है। सूर्या विवाह सूक्त में पति-पत्नी को एक माना है। एक मन्त्र में तो लिखा है कि "वधू, अपने कर्म से तुम सास-ससुर, ननद और देवरों की साम्राज्ञी (महारानी) बनो, सबके ऊपर प्रभुत्व करो।"

ऋग्वेद काल में एक पुरुष का विवाह आदर्श था, जिस स्त्री का सम्मान उसका पति करता था, वह उस समाज में अभिनन्दनीय नारी मानी जाती थी। ऋग्वेद के सूक्तों को पढ़ने से यह विदित होता है कि उस समय स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी। ऋग्वेद के १०.२७.२ मन्त्र में लिखा है कि—"कितनी ऐसी स्त्रियां हैं जो केवल द्रव्य से प्रसन्न होकर स्त्री चाहने वाले पुरुष के ऊपर आसक्त होती हैं। जो भी भद्र और सभ्य है, जिसका शरीर सुसंगठित है, वह अनेक पुरुषों में से अपने मन के अनुकूल प्रिय पात्र को पति स्वीकार करती है।" इस मन्त्र में धन के लिए शादी करने वाली तथा दूसरी सत्पुरुष को चाहने वाली, दोनों स्त्रियों की ओर संकेत मिलता है। इससे पता चलता है कि स्त्रियों को अपने जीवन साथी के चुनाव के लिए पर्याप्त स्वतन्त्रता थी।

देवरमणियों को यज्ञ में बुलाया जाता था। इला को धर्मोपदेशिका बताया गया है पितृ-गृह में वृद्धावस्था तक रहने वाली घोषा नामक स्त्री ब्रह्मवादिनी बनी थी। घोषा आदि अनेक स्त्रियों ने अनेक सूक्तों का स्मरण किया था, वे यज्ञ करने के साथ उपदेश देती थीं, वेद पढ़ती थीं। एक बात और भी स्पष्ट कर दी जाय, वह यह कि प्राचीन समय में स्त्रियां दो प्रकार की थीं—"एक ब्रह्मवादिनी, दूसरी, साधारण। जो ब्रह्मवादी थीं, वे हवन करती थीं, घर में ही वेदाध्ययन करती थीं, भिक्षा, मांग कर लाती थीं।" यमस्मृति में कहा गया है—"पुराने समय में कन्याओं का उपनयन होता था (गोभिल गृह्यसूत्र २ या प्रपाठक) वे वेद पढ़ती थीं गायत्री भी पढ़ती थीं, परन्तु उन्हें पिता, पितृव्य या भ्राता ही पढ़ाते थे, दूसरे नहीं।"

ऋग्वेद में कुछ मन्त्र ऐसे भी मिलते हैं जो नारी हृदय का दूसरे रूप में चित्रण करते हैं। इन्द्र ने प्रायोगिक के सम्बन्ध में कहा था, "स्त्री के मन का शासन करना असम्भव है। स्त्री की बुद्धि छोटी है। (८.३३.१७)।"

राजा पुरूरवा से चिढ़कर एक मन्त्र में उर्वशी कहती है कि स्त्रियों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम व मैत्री चिरस्थायिनी नहीं होती। स्त्री और वृकों का हृदय एक समान होता है इसलिए हे राज–तुम मृत्यु की कामना मत करो। ऋग्वेद में एक मन्त्र में विषयान्ध पुरुष को लक्ष्य कर कहा गया है कि "स्मैण पुरुष स्त्री की प्रशंसा करता है। सौतिया डाह का भी एक स्थान पर उल्लेख मिलता है जिससे यह आभास मिलता है कि किसी–किसी व्यक्ति के दो–दो पत्नियां थीं इसलिए कहा है–"मेरी सपत्नी नीच से नीच हो जाय मैं अपनी सपत्नी का नाम तक नहीं लेती। सपत्नी सबके लिए अप्रिय है। मैं उसे दूर से भी दूर भेज देती हूं।" (१०.१४५.३.५)। ऋग्वेद के एक मंत्र ७.७६.३ में कुल्टा की निन्दा और पतिव्रता की प्रशंसा है। विपथगामिनी, पतिविद्वेषिणी और दुष्टाचरण शीला स्त्री नरक स्थान को उत्पन्न करती हैं।" यही नहीं, उपपत्नी (रखैल) का भी एक स्थान पर उल्लेख मिलता है। जार और व्याभिचारिणी स्त्री का भी उल्लेख मिलता है।

किन्तु एक बात यहां विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि समाज में इस प्रकार के अपवादस्वरूप स्त्री–पुरुष थे, जिन्हें लक्ष्य कर ही ऋग्वेद में यत्र–तत्र बुराइयों से बचने व कल्याण की कामना है।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि वैदिक काल में पितृ प्रधान सत्ता थी। एकपत्नी प्रथा प्रचलित थी किन्तु राजपरिवारों में बहुपत्नी प्रथा अज्ञात न थी। घर का स्वामी पति एवं स्वामिनी पत्नी थी। स्त्रियों का चरित्र समष्टि रूप में बहुत ऊंचे स्तर का था। बहन–भाई, पिता–पुत्री का विवाह निषिद्ध था जैसा कि यम-यमी सूक्त से संकेत मिलता है। स्वयंवर प्रथा थी। स्त्री अविवाहितावस्था में पिता व भाईयों के संरक्षण में रहती। दहेज प्रथा थी, कन्या को खरीदा जा सकता था। वैदिक मंत्रों में पाणिग्रहण की अत्यधिक प्रशंसा की गई हैं विधवा स्त्री सन्तान हीन होने पर अपने देवर के साथ विवाह कर सकती थी। दत्तक पुत्र ग्रहण करने की प्रथा उस काल में थी। स्त्रियों का सम्मान पूर्ण स्थान उस समाज में था। वैदिक युग का साहित्य नारी समाज का उज्ज्वल रूप प्रस्तुत करता है।

शिक्षा का आदर्श :

शिक्षा के ध्येय एवं उद्देश्य के विषय में विचार करते समय हम निःसन्देह यह कह सकते हैं कि अन्तः शक्तियों को समुचित रूप में विकसित कर देना ही शिक्षा का प्रथम एवं अन्तिम ध्येय है। इसी आदर्श को हृदयंगम कर वैदिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि अपनी शक्तियों के विकास के लिए परमात्मा से प्रातः सायं इस प्रकार से प्रार्थना किया करते थे–ईश्वर! हमारी बुद्धि को सद्‌मार्ग में प्रेरित करो–धियो यो नः प्रचोदयात। हे अग्निदेव! हमें आप सद्‌मार्ग से विश्व में ले चलें, ले ही न चलें अपितु आप हमारे हृदयों में पाप, दुर्गुण एवं पाप से भावनाओं को निकालकर निष्पाप तथा शुद्ध पवित्र बुद्धि प्रदान करें, इसके लिए हम पुनः आपकी प्रार्थना करते हैं–अगेनय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानिविद्वान् युयोध्यस्मज्जुहराणमनों भूयष्ठान्तिं नमः।" उक्ति विधेम। वैदिक ऋषि पवित्र भावभूमि पर स्थित होकर पुनः बुद्धि को मेधावी बनाने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है–

या मेधां देवगणां पितरश्चोपासते
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरू।

इस प्रकार बुद्धि को मेधावी बनाने के लिए ही प्रार्थनाएं नहीं की जाती थीं, अपितु उस बुद्धि को पवित्र एवं कालुष्य रहित बनाने के लिए भी–

पुनन्तु मां देवजना पुनन्तु मनासाधियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेद पुनीहि मा।।

इस प्रकार वैदिक शिक्षा का मूल आधार मानव की बुद्धि का परिष्कार कर सुपथ का दर्शन कराना था। वस्तुत यही प्राचीन शिक्षा का ध्येय था। क्या आज की शिक्षा में कहीं भी इस प्रकार पाठ्यक्रम निर्धारित है जो बुद्धि को मानवता के मार्ग का पथिक बना सके? जिससे कि हम उच्च स्वर से आयु, धन, तेज को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करते हुए अपने बल का सदुपयोग करने के लिए सहनशीलता को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करना न भूलें–

तेजोऽसि तेजोमयि धेहि।
वीर्यमसि वीर्यमयि धेहि।
बलमसिबलं मयि धेहि।
सहोऽसि सहोमयि धेहि।

प्राचीन काल में "सत्यं शिवं सुन्दरम्" के अनुसार विश्व की कल्याण कामना ही वैदिक संस्कृति का प्रयोजन था। उसकी सिद्धि के लिए ऐहिक एवं पारलौकिक उन्नति करते हुए ब्रह्म के स्वरूप में भारतीय निमग्न हो जाते थे। वह ब्रह्म तप से प्राप्त होता था–"ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते", "तपसा चीयते ब्रह्म"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प की कसौटी के रूप में यम नियमों का पालन करने के लिए एक प्रत्येक विद्यार्थी को तो दिया जाता था, साथ ही मानव मात्र को इनका करना आवश्यक था। यम के अन्तर्गत–

"तत्रा: हिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यम:" तथा नियमों में "शौच स्तप: स्वाध्यायेश्वर प्राणिधानानि नियमा:" अर्थात् अहिंसा, सत्य अस्तेय, र्य अपरिग्रह तथा मन, वचन, कर्म में पवित्रता शौच, सन्तोष, तप, ाय और ईश्वर प्राणिधान। इन यम एवं नियमों की उपयोगिता, महत्त्व एवं ार्यता के विषय में कुछ कहना उचित न होगा। वस्तुत: ये मानव को पूर्ण बनाने के साधन थे। इनका आज के छात्र समाज में पूर्णत: अभाव-सा ष्टिगोचर हो रहा है जिस ब्रह्मचर्य का पालन कर देवताओं ने इच्छा मृत्यु की थी, उसका भी धवल यश वैदिक साहित्य में गाया गया है–

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युपाध्यनत:
मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात्।"

चरित्र की भी प्रशंसा की गई है कि चरित्र से रहित मनुष्य मृतप्राय: ही

"अक्षीणो वित्तत: क्षीणो वृत्तातस्तु हतो हत:।"

इस प्रकार प्राचीन निर्देशों के अनुसार हम कह सकते हैं कि प्राचीन छात्र एवं तपस्वी बनकर शिक्षोपार्जन किया करते थे।

प्राचीन काल में शिक्षा के मूल में श्रद्धा की भावना थी, किन्तु आज के समाज में उसका पूर्णत: अभाव है। वस्तुत: मानव जीवन की सफलता के विभिन्न तत्वों में श्रद्धा का प्रधानतम स्वार्थ है। श्रद्धा से समस्त कार्य ास ही सम्पन्न हो जाते हैं। श्रद्धा की भावना अपने गुरुजनों को वश में का सर्व-सुलभ साधन है–

श्रद्धायाग्नि: समिध्यते श्रद्धया हूयते हवि:
श्रद्धा भगस्य मूर्धान वचसावेदयामसि।

श्रद्धा भावना जब ऐश्वर्य तथा कल्याण की प्रदाता है तो क्या आज के ों में श्रद्धा की भावना संचार होने पर गुरु प्रदत्त शिक्षा जीवनोपयोगी नहीं हो ती है? अवश्य हो सकती है। आज शिक्षा के क्षेत्र में फैली विश्रृंखलता का ण छात्रों में श्रद्धा का अभाव है। वस्तुत: श्रद्धा ज्ञानार्जन का मूलतत्त्व है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस श्रद्धा की भावना ने नचिकेता को समर्थ बनाया था। क्या वही श्रद्धा आज की शिक्षा में, जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं करा सकती। संसार में श्रद्धाहीन मानव सदा से पददलित होते आये है। उनका सदा विनाश हो रहा है आज विनाश से बचने के लिए छात्र समाज को श्रद्धालु बनाने का उपाय करना चाहिए। लेकिन हम देखते क्या है? आज का छात्र, माता, पिता एवं गुरुजनों के प्रति पूर्णतः अवज्ञा की भावना को लिए उन्हें सदैव तिरस्कृत-सा करता है। यही कारण है कि उन्हीं गुरुजनों से प्रदत्त शिक्षा छात्र के लिए अभिशाप बनकर दुःखदायी ही सिद्ध हो रही है। अतः छात्रों को तपानुष्ठान का आचरण कर श्रद्धाशील बनाना चाहिए। वेद के शब्दों में वह व्रतपालन से ही संभव है-

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षामाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणाश्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।।

अर्थात् व्रत से दीक्षा, दीक्षा से दक्षिणा, दक्षिणा से श्रद्धा, श्रद्धा से सत्य। इस प्रकार क्रमशः मानव को सुपथ पर ले जाने के लिए यह एक पद्धति वेद में निर्दिष्ट है। इसका पालन कल्याण की कामना करने वाले के लिए आवश्यक है।

विद्या स्वयं ही दुष्टाचारण कर्ताओं से भयभीत रहती है अतः उनके पास जाकर भी उनका कल्याण न कर अहित साधन ही करती है। इस सम्बन्ध में निरुक्त के ये वचन दृष्टव्य हैं-

विद्या आचार्य से कहती है-हे आचार्य। मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारी शरण हूँ। ईर्ष्यालु, कुटिल एवं दुराचारी को मेरा दान करो-

विद्याह वं ब्राह्मणमाजगाम गोपायमा शेवधिष्टेऽहमस्मि,
असूयकायनृजवेऽयताम न मा ब्रूया वीर्यमती यथा स्याम्।

पुनश्चः-विद्या उन्हें भी फलीभूत नहीं होती है जो गुरुओं का आदर नहीं करते-

अध्यापिता ये गुरं नाद्रियन्ते विप्र वाचा मनसा कर्मणा
यथैव ते न गुरोर्भोजतियास्तथैव तान्नमुनक्ति श्रृतंतत्।

विद्या पवित्र शुद्धाचरणकर्त्ता मेधावी ब्रह्मचारी को अपनी कृपा से अनुगृहित करती है।

भगवान् मनु का यह वचन भी दर्शनीय है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पादक ब्रह्म दात्रोगरीन्ब्रह्मदः पिताः।
ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम्॥

उत्पादक पिता की अपेक्षा आचार्य अधिक महत्त्व का भागी होता है उत्पादक पिता ने तो केवल एक जन्म प्रदान किया है किन्तु इस गर से संतरण करने के लिए आचार्य ही मानव का पूर्ण व पवित्र निर्माण है।

योगदर्शन में पंचक्लेशों का अर्थात् दुःखों का वर्णन मिलता है जिनमें ा का परिगणन सर्वप्रथम किया गया है–"अविद्याऽष्मिता रागद्वेषाभिनिवेषा लेशा।" वस्तुतः अविद्या मानव को पतन के गर्त में ले जाकर यथासम्भव से पीड़ित करती है। अतः इन दुःखों से यदि मुक्ति प्राप्त करनी है तो न करना चाहिए क्योंकि "ऋते ज्ञानायन मुक्ति" ज्ञान की प्राप्ति का त्र साधन शिक्षा सम्बन्धी भारतीय विचारधारा का अनुपालन ही है। क्योंकि पात्रापात्र का विचार कर ही अनुग्रह करती है।

अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि शिक्षा का पूर्ण विकास की संस्कृति के आधार पर ही हो सकता है क्योंकि उसकी पृष्ठभूमि में देश के आदर्शों का वरदहस्त रहता है जिस प्रकार एक पौधा अपने ल जलवायु एवं मिट्टी से पृथक् हो, अन्य भूमि पर विकसित नहीं हो है उसी प्रकार किसी राष्ट्र की शिक्षा पद्धति अपनी संस्कृति की शिला का परित्याग कर उन्नति नहीं कर सकती है। वैदिक काल की का पूर्ण विकास इसी पृष्ठभूमि पर हुआ है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि–वैदिक भारत का निर्माण राजनीतिक, क या सामाजिक क्षेत्र में न होकर धर्म के क्षेत्र में हुआ था। सर्वांगीण में धर्म की प्रधानता थी, धर्म ही यहां की जनता के जीवनश्वास के रूप , फलस्वरूप प्राचीन भारतीय रीति नीति स्वार्थमूलक न होकर परमार्थमूलक व्यष्टि का विकास समष्टि के विकास का मूल था, वैदिक सामाजिक न सर्वथा मानवीय उदात्त भावनाओं तथा नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित था। का एक उद्देश्य था, एक आदर्श था और उस आदर्श की उपलब्धि का चरम लक्ष्य था। वैदिक भारत की शिक्षा के मूल में यही व्यष्टि-समष्टि उत्थान की भावना थी और इसी भावना के अनुकूल उसका विकास भी था। वैदिक भारत में शिक्षा तथा ज्ञान की खोज केवल ज्ञान प्राप्त करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए ही नहीं हुई थी, अपितु धर्म के प्रशस्त पथ पर चलकर ब्रह्म के साथ तदाकार परिणति के लिए हुई थी। वैदिक ऋषियों ने अदृश्य जगत् और आध्यात्मिक तत्त्व के मनोहारी गीतों का गान किया है और सम्पूर्ण जीवन को तदनरूप निर्मित भी किया है। वैदिक ऋषियों ने सर्वदा भौतिकवाद की उपेक्षा करते हुए आध्यात्मिक उत्थान को प्रधानता दी है। इस प्रकार यदि हम यह कहें कि प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य ही चित्त-वृत्ति का विरोध था तो अनुपयुक्त न होगा। विद्यार्थी इस जगत् के सम्पूर्ण विप्लव, विद्रोह से परे प्रकृति के मनोरम अंक में अपने गुरु के चरणों में बैठकर आध्यात्मिक समस्याओं की साधना श्रवण, मनन अपने चिन्तन के द्वारा किया करते थे।

जिज्ञासु शिष्य गुरुगृह में रहकर उनकी सेवा करता हुआ गुरु के आदर्श गुणों को अपने में धारण कर लेता था। विद्यार्थी के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए यह आवश्यक था, क्योंकि गुरु ही आदर्शों, परम्पराओं तथा सामाजिक नीतियों का प्रतिभूत था। वह शिक्षा प्रणाली जीवनोपयोगी थी। गुरुगृह में रहते हुए विद्यार्थी समाज के निकट सम्पर्क में आता था। गुरु के लिए समिधा तथा जल का लाना तथा गृह कार्य करना उनका कर्त्तव्य समझा जाता था। इस प्रकार गृहस्थ धर्म की शिक्षा के साथ-साथ श्रम, गौरवपाठ और सेवा का आदर्श पाठ पढ़ता था। गुरुओं की सेवा से विद्यार्थियों में विनय तथा अनुशासन का भाव उत्पन्न होता है इसीलिए आज की तरह उस काल में शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन की समस्या कहीं भी उत्पन्न दिखाई नहीं देती थी, इसके साथ-साथ विद्यार्थी जीवनोपयोगी उद्यम, पशुपालन या कृषि आदि में भी सहज ही कुशल हो जाता है सादा जीवन और उच्च विचार की भावना उस काल की शिक्षा की प्रमुख देन है। छान्दोग्योपनिषद् में सत्काम गुरु की गायों की सेवा करते करते उनकी संख्या चार सौ से एक हजार तक पहुंचा देते हैं। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि उस काल में शिक्षा केवल सैद्धांतिक और पुस्तकीय नहीं थी अपितु जीवन की वास्तविकताओं से निकट थी। उस शिक्षा में शारीरिक श्रम का महत्व था। जीवन की गूढ़तम समस्याओं का समाधान जीवन के सामान्य कार्य-क्षेत्रों से ही हो जाता था, वैदिक शिक्षा पद्धति जीवन की प्रयोगशाला में ही पल्लवित हुई थी। गुरुगृह में रहते हुए विद्यार्थी अपने एवं गुरु के भोजन के लिए भिक्षान्न प्राप्त करने के लिए गृहस्थियों के पास जाता था। यह प्रथा विद्यार्थी को परमुखापेक्षी बनाने की अपेक्षा त्याग, दान तथा मानवीय गुणों के विकास का कारण बनती है। विद्यार्थी अहंकार आदि दुर्गुणों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचकर विनम्र तथा समाज हित की भावना से युक्त होता था। समाज के म्पर्क में आने से वह वास्तविक जीवन से भी परिचित हो जाता था। इस प्रकार चीन शिक्षा स्वावलम्बन के पाठ के साथ समाज के प्रति कर्त्तव्यपरायणता था कृतज्ञता का पाठ भी पढ़ा देती थी। वैदिक शिक्षा पद्धति का विकास ोजनानुसार हुआ था, उसकी जड़ें समाज के अन्तरतम में थीं, भले ही शिक्षा ने का स्थान अरण्य और कानन थे। बंगलों और काननों के अंक में स्थित ाकृतिक रमणीय छटा से आच्छादित ये शिक्षा केन्द्र सभ्यता, संस्कृति एवं ानवता के उद्गम-स्थल थे। जब विश्व की अन्य जातियां घुटनों के बल वलना सीख रही थीं, उस समय भारतीय कृषि-तत्त्वज्ञान की मीमांसा कर रहे ो। वैदिक शिक्षकों ने शिक्षा के क्षेत्र में जो अमूल्य योगदान दिया है, वह अविस्मरणीय है। उनकी साधना का एकमात्र लक्ष्य लौकिक, पारलौकिक विभूतियों का समन्वय और मानवीय जीवन की पूर्णता ही था।

वैदिक शिक्षा पद्धति की सर्वांगीण जानकारी के लिए हमें समस्त वैदिक साहित्य का परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए। ऋग्वेद वैदिक साहित्य का प्रथम ग्रन्थ है। यद्यपि इसमें हमें शिक्षा के विकास का इतिहास देखने को नहीं मिलता है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार का उच्चतम ज्ञानकोष सहज सृष्टि नहीं, उसके पीछे सहस्रों वर्षों का अध्यवसाय एवं तपःपूत ऋषियों की साधना निहित है। ऋग्वेद भौतिक वातावरण से दूर रहकर परम शांति के लिए अन्तर्मुखी प्रकृति अपनाने का सन्देश देता है। ऋग्वेद में वैदिक देवतावाद का पूर्ण ज्ञान प्रदान किया गया है। अन्य वेदों के समय में पुरोहितवाद का प्रचुर प्रचार हो जाता है, इसलिए शिक्षा का दशष्टिकोण पुरोहितवाद तथा धर्म के क्रियात्मक रूप की ओर उन्मुख हो जाता है पूजा तथा यज्ञ के बाह्य उपकरणों का इतना प्रचार हो गया था कि पौरोहित के समस्त कार्यजात की शिक्षा लेना अनिवार्य था। पुरोहितों को भी चार वर्णों में चारों वेदों के अनुसार विभक्त कर दिया था जो कि एक-एक वेद के प्रतिनिधि होते थे।

इस प्रकार इस काल में शिक्षा का लक्ष्य चारों वेदों का पूर्ण ज्ञान तथा धर्म, दर्शन, पुरोहित के कार्य-कलाप का ज्ञान था, चतुर्थवेद अथर्ववेद भारतीय चिकित्सा शास्त्र का प्रथम ग्रन्थ है। इसमें बहुत-सी जड़ी-बूटियों का, भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग निवारण के लिए, उल्लेख है। चिकित्सा शास्त्र की पूर्ण जानकारी इसमें दी गई है। ज्योतिष विद्या का इसमें उल्लेख है। गृहस्थ जीवन सम्बद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कारों का वर्णन है। तंत्रशास्त्र की ओर भी इस वेद की प्रवृति है। राजा तथा राज्यपरिषदों का भी विवेचन है, और इस प्रकार इस वेद में लौकिक विषय सामग्री की उपन्यस्त किया गया है और वेद के उदय के साथ हमें शिक्षा पद्धति में इसका दर्शन होने लगता है

वैदिक भारत में आज की तरह मुद्रण-यंत्र न थे, पुस्तकें न थीं, बड़े-बड़े विद्यालय न थे, किन्तु तप की साधना थी। गुरुमुख एवं शिष्य के कर्ण थे। ऋषियों के तप तथा योग द्वारा महान् ज्ञान प्राप्त कर लेने तथा उनके छन्दों और मंत्रों के रूप में संकलित होने के उपरान्त ऐसे साधनों का विकास हुआ, जिनके द्वारा यह ज्ञान सुरक्षित किया जा सके अथवा आगे की सन्तति को हस्तान्तरित किया जा सके। यहीं से वंश-परंपरा एवं शिष्य-परंपरा का उदय होता है वैदिक शिक्षा-पद्धति में इन परिवार या कुल शिक्षा-संस्थाओं का यहीं से उदय होता है आचार्य अपने शिष्य को उच्चारण कर करके ऋचायें कंठाग्र करा देता था, प्रत्येक विद्यार्थी योग्यतानुरूप ज्ञानार्जन करता था। सायण ने तीन प्रकार के विद्यार्थियों का उल्लेख किया हैं–१. महाप्रज्ञ, २. मध्यम प्रज्ञ, ३. अल्प प्रज्ञ। यह वर्गीकरण मानसिक स्तर के अनुरूप किया गया है। इस काल में मंत्रों का गान होता था। शब्दों, पदों तथा अक्षरों के शुद्ध उच्चारण पर ध्यान दिया जाता था। छन्द की रचना पदों से तथा पदों की अक्षरों द्वारा होती थी। वैदिक ज्ञान का उच्चारण गुरु एक निश्चित रूप से करता था। इस काल में उच्चारण की शुद्धता पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता था। यह शिक्षा मौखिक ही थी, क्योंकि इस समय तक लेखन-कला का विकास नहीं हुआ था।

संक्षेप में हम ऋग्वैदिक शिक्षा पद्धति को इस प्रकार देख सकते हैं- गुरु गृह ही विद्यालय था। उपनयन संस्कार के उपरांत शिक्षा पूर्ण हो जाने तक शिष्य गुरु के समीप ही रहता था। शिक्षक पिता के रूप में उसका संरक्षक होता था और उसके भोजनादि की स्वयं व्यवस्था करता था। गुरुगृह में विद्यार्थी का प्रवेश केवल उसके नैतिक बल और सदाचार के आधार पर ही हो सकता था। सदाचार के दृष्टिकोण से जो विद्यार्थी निम्न स्तर का समझा जाता था। उसके लिए गुरुकुल में रहना निषिद्ध था ब्रह्मचर्य का जीवन अनिवार्य था। विवाहित युवक भी विद्याध्ययन करते थे, किन्तु वे आश्रम में नहीं रह सकते थे। गुरुसेवा विद्यार्थी का परम कर्त्तव्य था। आश्रमवासी विद्यार्थी सदैव गुरुसेवा परायण रहता था। वह शिष्य मनसा, वाचा, कर्मणा गुरुभक्त रहता था। गुरु ही सर्वस्व था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद के काल में हमें वर्ण-व्यवस्था के संकेत मिलने लगे थे, किन्तु वह इतनी स्पष्ट एवं जटिल नहीं हुई थी। ज्ञान किसी वर्ण तक सीमित नहीं था वह तो व्यक्ति की साधना पर निर्भर था। अम्बरीष, त्रसदस्यु, सिन्धुदीप, मान्धाता तथा शिवि आदि क्षत्रिय अपने अध्यवसाय से ही ऋषि परंपरा में आ सके थे। इसी काल में स्त्रियां भी ज्ञानार्जन पुरुषों के समान ही करती थीं। वे यज्ञों में भाग लेती थीं, स्त्री सन्तों को ऋषिका और ब्रह्मवादिनी कहकर पुकारा जाता था। रोमसा, लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, कन्द्रु, श्रद्धा, उर्वशी, देवयानी इत्यादि ऋषिकाओं के नाम विभिन्न वेदों में मिलते हैं। ऋग्वेद में अनार्य ही शूद्र नाम के अधिकारी हैं, इन्हें भी उस समय शिक्षा दी जाती थी।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि वैदिक शिक्षा पद्धति का उद्देश्य महान् था, व्यक्ति का सर्वांगीण विकास ही इसकी आधारशिला थीं, गुरु व्यक्तिगत रूप से शिष्य से परिचित रहता था, अतः दैनिक दिनचर्या के परिचय के साथ वह उसके मानसिक स्तर से भी परिचित रहता था। उसका परिणाम विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास में होता था। जीवन के तीन ऋण-ऋषिऋण, देवऋण तथा पितृऋण, जिनका उल्लेख यजुर्वेद में मिलता है—ब्रह्मचर्य, यज्ञ और संतानोत्पति के द्वारा किया जाता था। गुरु-गृह में निवास करते हुए शिष्य ब्रह्मचर्य पूर्वक शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त करता था। वैदिक शिक्षा-पद्धति चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व का विकास तथा सामाजिक अभिवृद्धि करने में पूर्ण सफल थी।

किन्तु उत्तर वैदिक काल (ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद) हम शिक्षा के क्षेत्र में कुछ अन्तर पाते हैं किन्तु मूलाधार तत्त्व इस काल में भी वैदिक ही हैं। उत्तर वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्यपूर्ण ब्रह्म को प्राप्त करना था, यद्यपि यज्ञ और धार्मिक क्रिया-कलाप ब्रह्म प्राप्ति के साधन थे, किन्तु इन दिनों धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन पर बल दिया जाने लगा था। इस शिक्षा को स्वाध्याय कहा जाता था। स्वाध्याय ही ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का एकमात्र मार्ग था।

वेदों की शिक्षा पद्धति के समान ही इस काल में विद्यार्थियों के कुछ विशिष्ट कर्त्तव्य थे। एक तो विद्यार्थी इस काल में आचार्य के कुल का वासी होता था, दूसरे पालन-पोषण के लिए भिक्षान्न मांगकर लाता था, उसका तीसरा कर्त्तव्य गुरुगृह की पवित्र अग्नि को सदा प्रज्ज्वलित रखना था। चौथा कर्त्तव्य गुरु की गायों की सेवा करना था। इस प्रकार गुरुसेवा इस काल में भी प्रधान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान को लिए हुई थी, किन्तु सम्पन्न शिष्य इस काल में गुरुदक्षिणा भी देने लगे थे। शिक्षा वेद के अध्ययन से प्रारंभ होती थी, अक्षर, शब्द उच्चारण-छन्द तथा प्रारंभिक व्याकरण का ज्ञान भी पूरी तरह से इस काल में कराया जाता था। उच्चारण की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। शिक्षा के पूर्ण हो जाने पर गुरु उपदेश देकर शिष्य को गृहस्थ धर्म में प्रविष्ट होने की अनुमति दे देता था। यही आज का दीक्षांत भाषण उस काल में "समावर्त्तन" संस्कार के रूप में प्रतिष्ठित था किन्तु इन दोनों दीक्षान्त भाषणों तथा समावर्त्तन संस्कार क्रियाओं में पर्याप्त अन्तर हैं।

वैदिक शिक्षा पद्धति में जहां गुरु की प्रधानता थी, वहीं इस काल की शिक्षा में शिष्य की प्रधानता हो जाती है। गुरु-शिष्य परस्पर प्रश्नोत्तर करते हुए ज्ञानार्जन करते थे। यद्यपि लेखनकला का विकास हो रहा था किन्तु शिक्षा का प्रमुख साधन वाणी ही थी। इस काल की शिक्षा में तर्क, मनन की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाती है।

इस काल की शिक्षा के सिद्धांतों का संक्षेप में परिचय हम इस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं–

इस काल की शिक्षा विद्यार्थी को पूर्ण जीवन के लिए निर्मित करती थी। शिक्षा प्रणाली केवल पुस्तकीय नहीं थी अपितु वह भावी जीवन संघर्ष के लिए व्यावहारिक ज्ञान दान भी देती थी। शिक्षा के अधिकारी व्यक्ति ही रूचि एवं योग्यतानुसार शिक्षित किये जाते थे। उपनयन संस्कार सभी के लिए अनिवार्य था। तीन ऋणों से मुक्त होने के लिए शिक्षा एक आवश्यक तत्त्व था। अतः शिक्षा प्रत्येक के लिए स्वतः अनिवार्य हो जाती थी। ब्रह्मचर्य एवं तपस्या इस काल को परम अनिवार्य उपकरण थे। इस काल में शिक्षा पाँच और आठ वर्ष के बालक को अनिवार्यतः प्रारम्भ कर दी जाती थी। इस काल की शिक्षा-पद्धति में हम व्यावहारिक मनोविज्ञान को प्राप्त करते हैं। विद्यार्थी को शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाता था। उसे अन्य उपायों से शिक्षा दी जाती थी, हाँ, यदि कभी शारीरिक दण्ड दिया जाता था तो वह अन्तिम उपाय के रूप में ही भी गुरुकुलों में गुरु और शिष्य का सीधा सम्पर्क रहता था, इसलिए गुरु-शिष्य दोनों ही एक-दूसरे से पूर्णतः परिचित रहते थे। इस स्थिति में गुरु को बालक की शक्तियों और मस्तिष्क के अध्ययन का भी पर्याप्त अवसर रहता था। गुरु भी अपनी शक्ति के अनुसार शिष्य को विद्यादान देकर समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षेप में, यदि कहा जाये कि वैदिक शिक्षा पद्धति युगानुरूप पूर्ण एवं महान थी, सर्वांगीण विकास में सक्षम थी तो अनुपयुक्त न होगा।

आधुनिक काल में वेद की प्रासंगिकता

वेदों में वर्णित वाणी युग-युग की वाणी है जो काल व सीमाओं से परे है एवं इसे कभी एक खास युग की वाणी गलत साबित नहीं कर सकती है। यह बात अलग है कि प्रत्येक युग की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं जो उस समय के सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक परिस्थितियों से बहुत प्रभावित होते हैं एवं किसी भी समस्या का समाधान उस युग की विशेष परिस्थिति के संदर्भ में ही ढूंढ़ा जा सकता है, फिर भी सत्य कभी बदलता नहीं है भले ही उसका स्वरूप परिवर्तित क्यों न दिखे। वैदिक युग व वर्तमान युग की परिस्थितियों में काफी अंतर है फिर भी वेदों में वर्णित विचारधाराएँ वर्तमान युग में भी बहुत हद तक प्रासंगिक हैं।

जहाँ तक वेद की प्रासंगिकता का प्रश्न है तो इस संबंध में मैं इतना ही कहना चाहूंगी कि इसकी प्रासंगिकता का प्रश्न करना ही अपने आप में अप्रासंगिक है। क्योंकि वेद का अर्थ है ज्ञान और जीवन का अर्थ है गति। यह गति हमें ज्ञान के द्वारा ही प्राप्त होती है। इसलिए यह प्रासंगिक था, है और रहेगा। तभी तो इसे युग-युग की वाणी कहा गया है

आज विकास के इस दौड़ में जिस विज्ञान को माध्यम बनाया जा रहा है या यों हम कह सकते हैं कि विश्व के इस सम्पूर्ण विकास को जिस विज्ञान के चश्में से देखने की हम कोशिश कर रहे हैं, वह विज्ञान कोई नई बात या नया सिद्धांत नहीं दे रहा है वरन् उन्हीं पुराने सिद्धांतों या विचारों को, जिसे ऋषियों ने अपने जीवन में उतारने के बाद प्रयोग की तराजू पर तोल कर उसकी रचना की थी। तभी तो उन्हें मंत्र-द्रष्टा कहा गया है मंत्र-द्रष्टा का अर्थ है, मंत्र का दर्शन जिसे हुआ हो। वह अक्षुण्ण ज्ञान जिसमें उनके जीवन को रूपान्तरित करते हुए उन्हें न केवल मंत्र-द्रष्टा बना दिया वरन् भविष्य द्रष्टा भी। वेद का समय वह था, जहाँ विकास स्थूल सूक्ष्म से स्थूल की ओर हुआ था और विज्ञान का समय वह है जहाँ विकास से सूक्ष्म की ओर बढ़े हैं। वेद हमारे अध्यात्म ज्ञान का अक्षुण्ण भंडार हैं।

सामान्य रूप से विज्ञान और अध्यात्म को हम एक दूसरे का विरोधी मान लेते हैं। मगर दोनों एक दूसरे के पूरक हैं विरोधी नहीं। विज्ञान में हर चीज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय बन जाता है जबकि अध्यात्म में कुछ भी विषय नहीं बनता। विज्ञान खण्डों में बंटा ज्ञान होता है विज्ञान वृत्तिरूपा होता है, दूसरे की अपेक्षा पर है और अध्यात्म का कोई रूप नहीं होता है इसमें ज्ञान का कोई आधार नहीं होता है कोई विषय विशेष (विषयी विशेष रहित) होता है। इसीलिए कहा जाता है कि जहां विज्ञानों का अंत होता है वहीं से शुद्ध सत्ता का प्रारंभ होता है विज्ञान इहवैदिक और अध्यात्म पारलौकिक होता है उसके इसी संबंध को देखकर यह सोच लिया जाता है कि विज्ञान और अध्यात्म में कोई संबंध नहीं है, दो विरोधी चीजें हैं ये हमारी उस संकीर्ण मानसिकता का परिचय है जो कि या तो विज्ञान को श्रेष्ठ मानती है या अध्यात्म को। ये सच है कि आध्यात्मवाद "स्व" के बोध पर आधारित है। पर इस स्व के बोध को समझने के लिए विज्ञानों से होकर गुजरना पड़ता है। यह सोचने की बात है कि जो विशुद्ध अध्यात्म है उसका बोध भी हमें विज्ञानों के द्वारा ही होता है विज्ञानों के अभाव में हम इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं। जैसे हमें अपने होने का पता भी सामने रखे गये दपर्ण से ही होता है ठीक यही बात स्व के बोध में भी होती है। जैसे हम आँख को ही लें। आँख सबको देखती है, पर आँख को देखने के लिए हमें प्रतिबिम्ब की आवश्यकता होती है। तो जो विषयी है उसे विषय कैसे बनाया जा सकता है। पर विश्व विषयों से भरा हुआ है। इन्हीं विषयों को देखकर हमें विषयी का ज्ञान होता है क्योंकि उसे जानने के लिए विषयी की सत्ता आवश्यक है। इस दृष्टिकोण से दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, भिन्न नहीं।

वेद का अद्वैत दर्शन दुनियां का एक विशिष्ट दर्शन है जो जड़ चेतन के विवादों से उत्पन्न हुई समस्त समस्याओं का एक साथ निदान करता है। सभी प्रकार की समस्याओं का यह समन्वित समाधान देता है। इसी दर्शन ने विश्व की ही नहीं वरन् समस्त सृष्टि की एकता एवं अखंडता के सूत्र दिये हैं। विश्व बन्धुत्व की बात इसी दर्शन की देन है। इसी ने दुनियां को एक मानवीय दृष्टि दी हैं। इसी दर्शन ने समस्त सृष्टि के मंगल की कामना की है। एकेश्वरवादी दर्शन के कारण ही नास्तिकों का जन्म हुआ जिससे फ्रेडरिक नित्शे को कहना पड़ा कि ऐसा कोई ईश्वर नहीं है। "ईश्वर मर गया है" ईश्वर क्या है? कैसा है? कहां रहता है? उसका कार्य क्या है? उसकी विधि व कार्य प्रणाली क्या है? जड़ एवं चेतन से उसका क्या संबंध है? आदि अनेक प्रश्नों का समाधान इसी दर्शन से मिलता है। यह दर्शन तर्क संगत है एवं वैज्ञानिक ढंग से इन सबका विवेचन करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस दर्शन के अनुसार सृष्टि का एक ही अनादि मूल तत्त्व है जो जड़ चेतन सृष्टि का मूल कारण है। सृष्टि की जड़ एवं चेतन दोनों शक्तियां उसी एक की अभिव्यक्ति हैं। वही एक इन दोनों रूपों में प्रकट हुआ है। इसकी शक्ति ही प्रकृति कहलाती है जो इसमें साभ्यावस्था में रहती है तथा दूसरी शक्ति चेतन शक्ति है जो इसका गुण है तथा यह इसमें शान्तावस्था में रहती हैं। ये दोनों शक्तियां अभिव्यक्त होने के बाद ही इनमें जड़ व चेतन का भेद प्रकट होता है जड़ शक्ति से विभिन्न पदार्थों का निर्माण होता है तथा चेतन शक्ति उनके भीतर रहकर सृष्टि रचना का कार्य करती है। सृष्टि इसका विकास मात्र है, निर्माण कार्य नहीं है।

सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व यह अनादि तत्त्व ब्रह्माण्ड में सर्वव्याप्त था जिसकी एक, दो, तीन में गणना नहीं की जा सकती। वह सर्वशक्तिमान् था। सभी शक्तियाँ अनभिव्यक्त अवस्था में उसमें विद्यमान थी। उसका कोई व्यक्तिगत स्वरूप नहीं था। वह अनिर्वचनीय था। उसमें जड़ चेतन का भेद ही नहीं था। अभिव्यक्ति के बाद ही यह भेद उत्पन्न हुआ। इस आदि शक्ति को "ब्रह्म" नाम दिया गया। इस ब्रह्म में जड़ के भीतर चेतन था अथवा चेतन के भीतर जड़ अथवा दोनों पृथक्-पृथक् रूप में थे इसका ज्ञान किसी को भी नहीं था। इसी कारण वेदों में इसको ''नेति नेति'' कहा गया। थियोसोफी ने भी कहा कि इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह अति सूक्ष्म है जिसको देखा नहीं जा सकता। इसका अनुभव किया जा सकता है। रजनीश ने भी कहा कि यह ऊर्जा का विशाल समुद्र है जिसके बारे में दी गई सभी सूचनाएं इसके किनारे पर बैठकर दी गई सूचनाएं ही हैं।

यह ब्रह्म पूर्ण है जिससे पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति हुई है फिर भी इसकी पूर्णता में कोई कमी नहीं आई है। यह शक्ति अक्षुण्ण हैं। ईशावास्य उपनिषद् में आरंभ में ही शांति पाठ में कहा गया है–

''ॐ वह पूर्ण है और यह भी पूर्ण है, क्योंकि पूर्ण से पूर्ण की ही उत्पत्ति होती है।''

शंकराचार्य ने भी विवेक चूड़ामणी श्लोक २५३ में कहा है–

''सत् से उत्पन्न हुआ यह सत्स्वरूप सम्पूर्ण जगत् सन्मात्र ही है।'' आगे फिर सूत्र ३९२ में कहा गया है–

'' मन और वाणी से प्रतीत होने वाला यह सारा जगत सत्स्वरूप ही है।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह ब्रह्म सत्, चित एवं आनन्द स्वरूप है इसलिए उसे "सच्चिदानन्द" कहा जाता है सत् से सत् की ही उत्पत्ति होती है असत् की नहीं।

यह शक्ति का अजस्र स्रोत है जिससे अखण्ड ऊर्जा निकल रही है। वही ऊर्जा जड़ चेतन का रूप लेती है। जिस प्रकार एक चुम्बक सैकड़ों लोहों को चुम्बक बना देता है किन्तु उसके आवेशों में कोई कमी नहीं आती, जिस प्रकार एक दीपक से सैकड़ों दीपक जलाये जा सकते हैं किन्तु उसकी लौ में कमी नहीं आती, जिस प्रकार एक स्त्री की पूर्णता मे दस-दस बच्चे पैदा करके भी कोई कमी नहीं आती उसी प्रकार यह ब्रह्म शक्ति है। वह सर्व शक्ति सम्पन्न है।

जिस प्रकार एक ही मनुष्य की ज्ञान एवं क्रिया शक्ति शरीर के माध्यम से अपनी समस्त क्रियाओं का संचालन करती है उसी प्रकार एक ही ब्रह्म की चेतना रूपी ज्ञान शक्ति प्रकृति रूपी क्रिया शक्ति से सयुंक्त होकर सृष्टि रचना का कार्य करती है। ये दोनों शक्तियां अपने-अपने नियमों के अनुसार कार्य करती रहती हैं जिससे कभी व्यवधान उत्पन्न नहीं होता। जड़ शक्ति की व्यवस्था चेतन द्वारा ही होती है क्योंकि जड़ शक्ति स्वयं योजनाबद्ध ढंग से कार्य नहीं कर सकती। चेतन शक्ति के कारण ही सृष्टि में एकरूपता, नियमबद्धता एवं क्रमबद्धता है, एक व्यवस्था एवं अनुशासन है। नियम विरुद्ध यहां कुछ नहीं होता। दोनों में एक सुसामंजस्य है जो भिन्न-भिन्न होने पर संभव ही नहीं था। यह चेतन शक्ति ही दोनों का स्वामी है। इस सृष्टि का विकास किसी अन्य शक्ति से नहीं हुआ है बल्कि विचारपूर्ण एवं सुनियोजित ढंग से किसी कुशल योजना निर्माता द्वारा हुआ है जिससे इसमें कही भी अव्यवस्था नहीं है। वेद में इसे ही ऋत कहा गया है ऋत हमें सदाचार का मापदण्ड प्रदान करता है जो मानवता के पूर्ण विकास के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है, यह सदाचार ही सब वस्तुओं की एकमात्र सच्चाई है। इसके अतिरिक्त और सब असत् हैं। ऋग्वेद की उक्त ऋचा में "ऋत च सामंच" शब्द सांसारिक दृष्टि से जहां मानव की विचारधारा का मापदण्ड है, वहीं सत्य अविनाशी सत्ता के द्योतन की एक सुन्दर कल्पना भी आध्यात्मिक क्षेत्र में है।

आधुनिक विज्ञान ने भी इस चेतन शक्ति की सत्ता को स्वीकार किया है। आर्थर एडिंगटन एवं आईन्स्टीन ने कहा है-

"संसार में कोई अज्ञात शक्ति कार्य कर रही है जिसे हमं नहीं जानते कि वह क्या है? फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि वह अधिक शक्तिशाली है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वह पदार्थ-जगत् को नियंत्रित करने वाली है। पदार्थ की शक्ति से वह कई गुना अधिक शक्तिशाली है।"

"मैं विश्वास पूर्वक कह सकता हूँ कि सारी प्रकृति में एक असीम शक्तिशाली चेतन शक्ति कार्य कर रही है।"

सर ऑलिकर लॉज ने कहा है-

"यह संसार कोई आकस्मिक घटना नहीं लगता है इसके पीछे कोई सुनियोजित विधान कार्य कर रहा है एक मस्तिष्क, एक चेतन शक्ति कार्य कर रही है। अपनी-अपनी भाषा में उसका नाम कुछ भी रख लिया जाए पर वह मनुष्य की आत्मा ही है।"

यद्यपि यह सम्पूर्ण सृष्टि प्रकृति का ही खेल है किन्तु उसके विकास का कारण वह एक मात्र चेतन तत्व है जिसके बिना यह सारा खेल असंभव है। जिस प्रकार अकेली स्त्री सन्तान पैदा नहीं कर सकती उसी प्रकार बिना चेतन शक्ति के अकेली प्रकृति सृष्टि रचना नहीं कर सकती।

यह सृष्टि के लिए सौभाग्य का विषय है कि वैज्ञानिकों ने जड़ के भीतर चेतना की खोज आज कर ही ली जिसे भारतीय अध्यात्म हजारों वर्ष पूर्व ही खोज करके कह चुका था कि वह चेतना (ब्रह्म, ईश्वर) सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है। यदि वह उसमें नहीं होती तो प्रकट कहां से होती। अध्यात्म का कहना है कि सृष्टि का कोई ऐसा पदार्थ या कण नहीं जिसमें चेतना न हो किन्तु वह सुप्तावस्था (तुरीयावस्था) में है जो अप्रकट है। उचित वातावरण पाकर वही चेतना प्रकट हो जाती है जैसे जड़ बीज वातावरण पाकर वृक्ष बन जाता है वह नया निर्मित नहीं होता। मनुष्य उसके विकास की चरमावस्था है। अव्यक्त ही व्यक्त होता है।

मनुष्य इस सृष्टि की एक अद्भुत एवं विशिष्ट संरचना है जिसे पूर्ण रूप से अभी तक नहीं जाना जा सका है। यह केवल शरीर तक सीमित नही है बल्कि एक आध्यात्मिक संरचना है जिसमें आत्मा, मन एवं शरीर मुख्य हैं। यह सृष्टि की एक अविभक्त इकाई है जिसका स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं है। वह सम्पूर्ण सृष्टि के साथ बंधा हुआ है। सृष्टि का जीवन ही उसका जीवन है। जीवन एक सरिता है जो सतत् प्रवाहमान है। इसमें अवरोध उत्पन्न कर इसकी गति को रोकना नहीं है बल्कि इसे अपने गन्तव्य तक पहुंचना हैं। इसका उपयोग केवल सांसारिक लाभों को प्राप्त करने में नहीं करना है बल्कि अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चतम गुणों को प्राप्त करना है, स्वचेतना का सर्वोच्च विकास करना है। ईश्वरेच्छा को जान कर उसकी मर्जी अनुकूल चलना ही इन अवरोधों को दूर करने का मार्ग है। मनुष्य प्रकृति से लड़कर उस पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा से स्वयं ही पराजित होता है मनुष्य के मूल्याकंन का आधार यश, सम्मान, सफलता नहीं है। बाहरी सफलता की अपेक्षा आत्मिक गुणों का विकास अधिक महत्व का है। बाहरी सफलता तो झूठ, बेईमानी, ठगी, चालाकी से भी प्राप्त हो सकती है। किन्तु इसे व्यक्ति की श्रेष्ठता नहीं माना जा सकता। गुणों का अर्जन करना ही मनुष्य की श्रेष्ठता है। सफलता मनुष्य के गौरव की कसौटी नहीं है। इससे मनुष्य के व्यक्तित्व को नहीं आंका जा सकता। धूर्त्त व चालाक ही अधिक सफल होते देखे जाते हैं किन्तु इससे इनको महान् नहीं माना जा सकता। जीवन के समुचित विकास एवं ज्ञान उसे गतिमान बनाये रखने के लिए एवं कर्म दोनों का समन्वय आवश्यक है। आत्मोन्नति का मार्ग ज्ञान है व संसार का मार्ग कर्म है। दोनों की साधना ही पूर्ण जीवन है। एक पंख से पक्षी नहीं उड़ सकता, एक पतवार से नाव नहीं खेई जाती इसी प्रकार एक के सहारे चलने से जीवन में श्रेष्ठता नहीं आती न उसमें गति ही आती है। सूचनाएं मात्र एकत्र कर लेना, पुस्तकें व शास्त्र मात्र पढ़ लेना ज्ञान नहीं है। स्वयं के गुणों के विकास से ही व्यक्तित्व में पूर्णता आती है। सभी गलत कार्य गलत विचारों का ही परिणाम हैं। इसी से रूढ़ियाँ व अन्धविश्वास पनपते हैं। विचार मन की उपज है तथा मन आत्मा का ही रूप है। अतः आत्मा के पोषण से ही मन शुद्ध होता है जिससे श्रेष्ठ जीवन की ओर बढ़ा जा सकता है।

एक ही दिव्य चेतना अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुई है इसलिए सभी जीवन एक है। वही एक अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुआ है इसलिए सर्वत्र एकत्व है। इसकी अनुभूति करना ही ज्ञान है। आत्मशक्ति सभी प्राणियों में समान रूप से व्याप्त है इसलिए आत्मिक तलपर एकत्व है किन्तु मन सबके भिन्न-भिन्न हैं इसलिए भिन्नता की झूठी प्रतीत होती है। मन के पार जाकर उस दिव्य चेतना का अनुभव करना ही श्रेष्ठ जीवन का कारण बन जाता है प्रत्येक समाज की अपनी विशिष्ट परम्पराएं, रीति रिवाज आदि होते हैं किन्तु सभी के जीवन मूल्य एक हैं। रीति-रिवाजों की भिन्नता से मनुष्य भिन्न नहीं हो जाता। सभ्यता, धर्म, संस्कृति आदि की भिन्नता मानव एकता में कहीं भी बाधक नहीं है। ऊंच-नीच, श्रेष्ठ व हीन की भावना ही इस एकता में बाधक है। क्या सत्य है, क्या असत्य है इसकी कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं दी जा सकती। सत्य हमेशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न, समय व परिस्थिति सापेक्ष होता है मनुष्य अपने अर्जित संस्कारों के धार पर ही निर्णय लेता है जो सार्वभौम सत्य नहीं हो सकता। दयालुता के र्य करने से कोई दयालु नहीं हो जाता, हिंसा न करने से कोई अहिंसक नहीं जाता। यह बनावटी भी हो सकता है। मन के शुद्ध हुए बिना कार्यों में शुद्धता हीं आती। तर्क वितर्क में प्रवीण हो जाने व सूचनाओं के संग्रह से गुणों में कास नहीं होता। गुरु में प्रवचन से समझ पैदा नहीं होती। आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न हुए बिना गुणों का विकास नहीं होता। जीवन एवं सृष्टि की स्तविकता को जान लेना ही ज्ञान है जो स्वंय के अनुभव से ही संभव है। ज्ञान की तकनीक को जानने की अपेक्षा जीवन की तकनीक को जानने से सुख, शांति एवं आनन्द की प्राप्ति संभव है। जीवन की कला सभी कलाओं श्रेष्ठ है जिसके जाने बिना जीवन का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। जीवन या है? इसका श्रेष्ठतम उपयोग किस प्रकार किया जाये जिससे वर्तमान व वी जीवन उन्नत हो सके? यही जानना जीवन कला है। वर्तमान का सुधार रके यदि भावी जीवन को बिगाड़ दिया जाये अथवा भावी की रक्षा में वर्तमान ो दुःखमय बना दिया जाये तो इसे सफल जीवन नहीं कहा जा सकता। जीवन ी अखंडता एवं तारतम्यता को जाने बिना विकास संभव ही नहीं है। सृष्टि में कता का अनुभव करना ही उच्च ज्ञान है जिससे मनुष्य में मानवोत्तर गुणों का कास होता है चेतना का विकास करना ही मानव जीवन का उद्देश्य है जो ध्यात्म ज्ञान के बिना संभव नहीं है। जीवन एक अविभक्त चेतना है। भेद वल मन के स्तर पर है जिसके पार जाना है।

प्रायः सभी वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक इस बात की चर्चा करते हैं कि किसी भी मानवीय विकास के तीन पहलू होते हैं—मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक। इन तीनों पहलुओं के समुचित एवं सामजंस्यपूर्ण विकास से ही किसी व्यक्ति का सही अर्थों में विकास होता है एक उसका मानसिक तल है जो कामनाओं, आशाओं, वासनाओं से भरा स्वार्थी तल है। यह भोगवादी है। यह सम्पूर्ण सृष्टि को अपने ही भोग की वस्तु समझता है तथा अपने भोग में बाधा उत्पन्न होने पर यह विद्रोह कर बैठता है।

दूसरा उसका सामाजिक तल है जिसमें वह अपने स्वार्थों में कमी करके सामाजिक सामंजस्य बिठाता है। सेवा भावना का जागरण भी इसी से होता है। यह उच्च स्तर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन का तीसरा तल आध्यात्मिक है जिसमें यह समस्त सृष्टि से अपना एकत्व स्थापित करता है। वह समष्टि को अपने से भिन्न नहीं मानता बल्कि अपना ही रूप समझता है। अपने स्वत्व को वह समष्टि के स्वत्व में विलीन कर देता है। यह जीवन की सर्वोच्च स्थिति है। यही जीवन सफल जीवन है। जन्म से ही कोई महान् नहीं होता। आहिमक उन्नति करने वाला ही महान् होता है जिसकी साधना का अवसर यही ज़ीवन है।

जिस प्रकार किसी चित्र का मूल्य कागज व रंगों से नहीं आंका जाता बल्कि उसके अंकन में प्रयुक्त बुद्धि कौशल से आंका जाता है, किसी मूर्ति का मूल्य पत्थर एवं मजदूरी से नहीं आंका जाता उसी प्रकार मनुष्य का मूल्य न शरीर से आंका जाता है न धन-दौलत से, न सौन्दर्य से, न विद्या से बल्कि उसके निजत्व से आंका जाता है समाज में समानता एवं एकरूपता आ जाना भी आवश्यक नहीं है। विविधता प्रकृति का नियम है इसमें एकता का अनुभव करना है। सृष्टि का रक्षण व पोषण विविधता से ही हो रहा है यदि सृष्टि में सर्वत्र एकरूपता आ जाये तो सृष्टि ही नष्ट हो जायेगी। विविधता को स्वीकार करना ही समानता है। यह भाव मात्र है। लम्बी आयु होना भी श्रेष्ठता की निशानी नहीं है न उसे सौभाग्यशाली ही माना जा सकता है। गणितीय आयु से आध्यात्मिक आयु श्रेष्ठ है। अध्यात्म में भौतिक गणित काम नहीं आता। थोड़े से जीवन में संत ज्ञानेश्वर, विवेकानन्द, शंकराचार्य, अष्टावक्र आदि ने जिस आध्यात्मिक शिखर को छुआ है वही जीवन श्रेष्ठ जीवन है।

पर जब हम आज अपने आस-पास के वातावरण, परिप्रेक्ष्य एवं शिक्षा आदि को देखते हैं तो हम पाते हैं कि आज की शिक्षा पद्धति शारीरिक और मानसिक पक्ष पर ही अपना सम्पूर्ण ध्यान देती है। आध्यात्मिक पक्ष मनुष्य का पूर्णतः उपेक्षित रह जाता है। हमारे इस आध्यात्मिक पक्ष के उपेक्षित होने के कई कारण हो सकते हैं और हैं भी। किन्तु जो सबसे प्रमुख कारण है, जो व्यावहारिक जीवन में देखते हैं वो है मानवीय चिन्तन की दिशा बदल जाना। ये सच है कि प्रत्येक युग के कुछ आदर्श होते हैं, कल हमारे जीवन का आदर्श कोई बुद्ध और महावीर या चैतन्य हुआ करता था, आज हमारे युग का आदर्श वो व्यक्ति है जो ऐश्वर्य भोगता हुआ सोने चांदी से खेलता है। इसलिए भी हमारी शिक्षा डिग्री पोषक, पद पोषक और वैसे व्यक्ति हो गये हैं जिनके लिए उनकी अहं तुष्टि स्वार्थ तुष्टि ही प्रमुख है। पहले व्यक्ति का केंद्र समाज राष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास था। आज जबकि पूर्ण विश्व एक इकाई बन गया है तब उसके त्र में आकर वे व्यक्ति क्षेत्र स्वार्थ की पूर्ति समाज और राष्ट्र की पूर्ति हो है इसका एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं जैसे एक वृक्ष को देखते हैं, इसके तीन भाग हैं जड़, धड़, और शाखा। जड़ जमीन के अंदर है और उसकी मजबूती पर ही सम्पूर्ण पेड़ की मजबूती, जो बाहर दिखाई ती है, निर्भर करती है। जड़ को मजबूज करने के लिए हम उसमें पानी देते अच्छा खाद तथा कीटाणुनाशक दवा भी डालते हैं। मिट्टी भी उसकी सही की प्राप्ति होती है। जीवन भी तो एक प्रकार का ऐसा ही वृक्ष है जिसकी अध्यात्म है, मन उसका धड़ और शाखाएं उसका शरीर हैं। जड़ों को यात्मिक रूपी पोषण नहीं मिलने पर धड़ रूपी मन और शाखा रूपी शरीर नियति क्या होगी, वही जो आज हम अपनी इस युग में पाते हैं। शायद यही ण है कि आज हमारे बीच कोई मंत्र द्रष्टा ऋषि नहीं है और न ही हम कोई मानवीय समाज का चितेरा ही अपने आस-पास पाते हैं जो कि सैद्धान्तिक ो की बात न करके जीवन क्रांति की बात करे। आज का विज्ञान बड़े-बड़े प्रस्तुत करता है, किन्तु क्या विज्ञान हमें यह बता सकता है कि जीवन की ी क्रांति क्या है, क्यों मनुष्य का मन आज भी इतने ऐश्वर्य के बाबजूद ि के लिए शांति की खोज में भटक रहा है क्यूं उसकी आज भी स्वंय के ारों में कैद होकर रह जाने की प्रवत्ति है जिसे वह अपना कहता है उसे ने से भी छुपा लेने की प्रवृत्ति क्यों रखता है। ये वही परिस्थितियां हैं जिन्होंने केवल भारतीय चिन्तक अरविन्दो, महर्षि रमण/ स्वामी रामतीर्थ, विवेकानंद ें को बहुत कुछ चिंतन करके उसे व्यवहार में उतारने के लिए बाध्य किया ा है, वरन् यह वही परिस्थितियां हैं जिन्होंने काफका, कामू, हाइडेगर, स्वेता देवी आदि अस्तित्ववादी विचारकों को भी यह कहने पर बाध्य किया कि अस्तित्व प्रमुख है, तब सार है। किन्तु जिन्हें हम प्रायः ही विद्वान् मानते उनके लिए अस्तित्व, सार आदि की वैसी कोई समस्या नहीं है जैसे कि वीय जीवन को किस प्रकार सुलभ से सुलभतर बनाया जाये (बाहरी ष्टिकोण से) यही समस्या रही है। इसका परिणाम है अंधाधुन्ध औद्योगीकरण र पर्यावरण का विषैला होना। स्पष्ट है कि आज इस युग में जो भी विकास वह भविष्यगामी नहीं है वरन् उनकी दृष्टि में सिर्फ अभी, आज ही त्वपूर्ण हैं।

इसके विपरीत यदि हम फिर अपने आपको एक बार वैदिक युग तक ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाएं तो हमें वहां पर उन ऋषियों का साक्षात्कार होता है जो कि आज का विकास भविष्य को ध्यान में रखकर करते थे। इसका कारण फिर वही है उनका संतुलित विकास से उत्पन्न वह अक्षुण्ण ज्ञान जिसने उनके जीवन को रूपान्तरित करते हुए न केवल मंत्र दृष्टा बना दिया, वरन् भविष्य दृष्टा भी। हमारे यहां कुछ लोगों का ऐसा चिन्तन है कि वेद अपौरुषेय है। वेद के अपौयषेय होने का अर्थ ये नहीं है कि वे लिखे नहीं गये किसी पुरुष के द्वारा। यदि वे लिखे नहीं जाते तो भी जिस रूप में भी वो हम कब आज नहीं पहुंच पाते। वस्तुतः अपौरुषेय होने का अर्थ इतना ही है कि इसका मंत्र उन ऋषियों के जीवन में उसी तरह से अभिव्यक्त हुए, जिस प्रकार का वैज्ञानिक बाह्य जगत् में किसी चीज का अनुसंधान करता है और ये वे लोग थे जिन्होंने अपने चिंतन रूपी तप को अग्नि में स्वयं की सभी स्वार्थ पूर्ण इच्छाओं को जलाकर निःस्वार्थ रूप से अपनी अनुभूति को तपाकर प्राप्त किया। वेद में शिक्षा प्राप्ति के तीन माध्यम थे–१. तपस्या २. उपदेश ३. व्यवहार। ऋषियों ने तपस्या के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति की, अतः उनके द्वारा दृष्ट किए वेद अपौरुषेय माने गये। ऐसे मनीषियों को "साक्षात् कृत धर्माय:" कहा गया है ऋषि अपनी साधना द्वारा प्राप्त ज्ञान को उपदेश द्वारा अपने शिष्यों को सम्प्रेषित करते थे। उपदेश के लिए चार घटकों की आवश्यकता पड़ती थी–आचार्य, शिष्य, विद्या और प्रवचन व्यवहार के द्वारा शिष्य गुरु के पवित्र आचरण तथा महान आदर्शों का अनुकरण करता था। आश्रम के समस्त व्यावहारिक कार्यों को करने के कारण उसे जीवन जगत् का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता था। भारतीय संस्कृति के तीन ऋणों में शिक्षा ऋषि ऋण है।

वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य मुक्ति प्रदान करना था। "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् विद्या अथवा शिक्षा वही है जो मुक्ति का मार्ग दिखाती है। वैदिक काल से ही विद्या को मुक्ति का मार्ग कहा गया है तथा ज्ञान को मनुष्य का तृतीय नेत्र कहा गया है "ज्ञान तृतीय मनुजस्य नेत्रम"। ईशावास्योपनिषद् में विद्या के द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति की बात कही गयी है। "विद्ययामृतश्नेतु"। विद्या विनय प्रदान करती है, विनय से पात्रता आती है, पात्रता से धन की प्राप्ति होती है और धन से धर्म तथा सुख प्राप्त होता है भतृहरि ने तो साहित्य, संगीत और कला विहीन को साक्षात् पशु ही माना है।

वैदिक युग की शिक्षा के स्वरूप का मार्मिक विश्लेषण करते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहनलाल 'महतो' वियोगी ने लिखा है "वैदिक युग में शिक्षा का महत्त्व ने समझा था, क्योंकि यह वह कला थी, जिससे व्यक्ति, व्यक्ति से ज, समाज से, राष्ट्र को अभ्युदय और श्रेय की सिद्धि मिलती थी।" भौतिक द्ध और आध्यात्मिक मुक्ति की नींव शिक्षा पर ही थी। वैदिक युग के ारकों के सामने जीवन एक तस्वीर और उन्होंने शिक्षा को उस तसवीर की ता तक पहुंचाने का काम सौंपा था। अध्ययन के पश्चात् गृहस्थाश्रम में भी ध्याय तथा धर्मज्ञ विद्वानों का सत्संग चलता रहता था जिससे वह अपने ज्ञान आचरण में लाने का अवसर पाता था और अंत में सुगति या मोक्ष। शिक्षा इस रूप को हम निम्नांकित तालिका से स्पष्ट कर सकते हैं :

आचार्य कुल से अध्ययन
समावर्तन
गृहस्थ जीवन
स्वाध्याय
धर्मज्ञ विद्वानों का सत्संग
इन्द्रियनिग्रह
अहिंसा बुद्धि या मैत्री धर्म
मोक्ष

सामूहिक हित की भावना से जब व्यक्ति अपने श्रम और तप को लब्धियों का सहर्ष उत्सर्ग करने में आत्म गौरव का अनुभव करता है तभी ाजिक शील का श्री गणेश होता है इसलिए सामाजिक शील के प्रतिष्ठापरक ीषियों के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वे पारस्परिक एकता अर्थात् -अस्तित्व बोध के द्वारा सामाजिक संगठन को प्रधानता दें। वैदिक ऋषि ने र्थ प्रबुद्ध करते हुए ही कहा है कि 'हे मनुष्यो' आपस में मिलकर चलो, पूर्वक बोलो। आप लोगों के मन एक ज्ञान वाले हैं। जिस प्रकार एक अनुभव ले पूर्ववर्ती विद्वानों ने अपनी माता की विचारों के माना है उसी प्रकार आप मानें। आप लोगों का संकल्प एक हो, आप सभी का मन एक हो जिससे का अच्छा संगठन हो। स्वार्थ मद के कारण बढ़ने वाली विषमता को हटाने े लिए सभ्यानुभूति से बार-बार अनुप्राणित किया है। इन मनुष्यों के विचार क हों, समिति एक हो, मन एक हो, और चिंतन एक हो। समस्त प्राणियों के य मैत्री की सद्भावना प्राप्ति के लिए ऋषि ने परमात्मा से प्रार्थना की है–'हे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज्ञान नाशक। मुझे ज्ञान को दृढ़ करें जिससे सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। मैं मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को देखूं।' सामाजिक जीवन की एकता की आधारशिला पारिवारिक जीवन की आदर्शमयता ही होती है। वैदिक काल में परिवार का संगठन करके उसकी सुव्यवस्था कर दी गयी थी। पिता परिवार का मुखिया था और पुत्र उसका उत्तराधिकारी। पुत्र न होने पर गोद लेने की प्रथा थी अन्यथा पुत्री उत्तराधिकारिणी होती है। अथर्ववेद में पारिवारिक जनों के लिए भद्र भावनाओं से युक्त मंत्रों का सारांश इन शब्दों में प्रस्तुत किया हैं।

"हे गृहस्थी! तुम्हारे पारिवारिक जीवन में ऐश्वर्य, सौहार्द्र, और सद्भावना होनी चाहिए। द्वेष की गन्ध भी न हो। तुम एक दूसरे को उसी तरह प्रेम करो जैसे गौ अपने तुरंत जन्मे हुए बछड़े को प्यार करती है।

पुत्र अपने माता पिता का आज्ञानुवर्ती होकर उनके साथ एक मन होकर रहे। पत्नी अपने पति के प्रति मधुर स्नेहयुक्त वाणी का व्यवहार करे। भाई-भाई के साथ, बहिन-बहिन के साथ द्वेष न करे।"

इस प्रकार वैदिक काल में पारिवारिक जीवन सुखद एवं शांतिमय था। उस समय भारत में संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित थी। परिवार के सभी व्यक्ति एकजुट होकर खान, पान, रहन-सहन, लोक व्यवहार आदि में प्रवृत्त होते थे। संयुक्त परिवार के सदस्यों को अपनी योग्यतानुसार कर्त्तव्य का निर्वाह करना पड़ता था।

वैदिक कालीन भारत में परिवार समाज के कल्यानार्थ पूर्ण योगदान करते थे। इस हेतु तीन ऋणों की पूर्ति करने की व्यवस्था की गई जिससे समाज की परंपरा बनी रहे। प्रत्येक भारतीय आर्यजन के लिए इन तीन ऋणों का चुकाना आवश्यक माना जाता था। ये तीन ऋण इस प्रकार हैं–पितृ ऋण, ऋषि ऋण, देव ऋण।

पितृ ऋण अर्थात् संतान की परंपरा का सिद्धांत समाज की उन्नति और विकास में विशेष महत्व रखता है। धर्मशास्त्रों में बताया है कि संतानोत्पत्ति के द्वारा इस ऋण को चुकाया जा सकता है। ऋणि ऋण स्वाध्याय द्वारा चुकाया जाता है ऋषि कुलों में ऋषि अपने स्वाध्याय एवं तप का फल शिष्यों को देते थे। वे शिष्य को समाज और राष्ट्र की सम्पत्ति समझते थे। इस प्रकार गुरु शिष्य का संबंध बहुत उदात्त एवं पवित्र था। शिष्य को विद्योपार्जन के लिए कोई निश्चित द्रव्य राशि नहीं देनी पड़ती थी। अतः शिष्यों पर ऋषि ऋण हो जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो स्वाध्याय द्वारा ही चुकाया जा सकता था। इस प्रकार वह ज्ञान वृद्धि में यक बनता था। यज्ञानुष्ठान आदि के द्वारा देव ऋण चुकाया जाता है लोक र्म की संस्थापना के लिए अवतरित होने वाली महान् आत्माओं के आदेश चलकर देव ऋण चुकाया जाता था।

वैदिककीन समाज में नारी का स्थान बहुत ऊँचा था। वैदिक आर्यों ने ताओं की बड़ी मधुर कल्पना की है और उन्हीं के साथ देवियों की कल्पना है। वैदिक काल की नारी प्रबुद्ध और चेतन थी।

ऋग्वैदिक काल में नारी शिक्षा का प्रादुर्भाव हुआ। नारी शिक्षा का सबसे कसित रूप उसी काल में देखने को मिलता है। इस युग में महिलाओं को षों की भाँति मात्र यज्ञ सम्पन्न करने का अधिकार ही नहीं था अपितु ध्ययन करने की अनुमति भी प्राप्त थीं। वैदिक शिक्षा ग्रहण करने वाली ी स्त्रियां ब्रह्मवादिनी अथवा ऋषिका कही जाती थी। ऋग्वेद में ऐसी अनेक षिकाओं का उल्लेख है जिन्होंने वैदिक ऋचाओं की रचना की थी।

उत्तर वैदिक काल में नारी शिक्षा के कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखते हैं। वैदिक काल की स्त्रियों की शिक्षा का मार्ग विस्तृत था। वह इस काल में कर कुछ अंशों में असम्बद्ध हो गया। पूर्ववैदिक काल में महिलाएं जहां गुरु श्रम में जाकर पुरुषों की भाँति शिक्षोपार्जन करती थीं। वहीं अब उनका ध्ययन क्षेत्र परिवार में सीमित हो गया। उन्हें अपने माता-पिता, भ्राता तथा सगे बन्धियों के द्वारा ही शिक्षा ग्रहण करने की अनुमति दी गई। अत: शिक्षा का ं का अगुण्ठित हो गया। इस प्रकार परिवार ही इस काल में प्रारम्भिक शाला बना। किन्तु उच्चतम शिक्षा के लिए कुछ विशिष्ठ महिलाओं को गुरु श्रम में भी जाने की स्वतंत्रता दी।

जब वैदिक हिंसावादी धर्म के विरूद्ध प्रतिक्रिया हुई जिसके फलस्वरूप र्शनिक संभावनाओं को बल मिला जिसमें विदुषी स्त्रियों ने भी नए आन्दोलन दिलचस्पी लेने से कदम पीछे नहीं हटाया। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी इसी णी में आती हैं। उनकी अभिरुचि भौतिक सुख की वस्तुओं से हटकर ध्यात्मिक सुख अर्थात् अमरत्व के मार्ग का पता लगाने में थी।

वेद तथा उपनिषदों में अद्वैतवाद, द्वैतवाद और त्रैतावाद के पोषक मंत्र लब्ध होते हैं। अनेक मतों में जीव ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है। "तत्संल आत्मा तत्त्वऽसि।" सर्वं खल्विदं ब्रह्म। नेह नानास्ति किंचन।" इसके साथ ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक मंत्रों में ईश्वर, जीवन और जगत्, तीन तत्त्वों का उल्लेख किया गया है बृहद आरण्यक में कहा गया है कि यद्यपि जीवात्मा शुद्ध और अमर है किन्तु वह जन्म ग्रहण करते समय शरीर को आत्मभाव से प्राप्त होता है और देह तथा इन्द्रियों के पाप भाव से संश्लिष्ट हो जाता है और मृत्यु के समय सम्पूर्ण पापों को त्याग देता है।

यद्यपि वैदिक काल की प्राप्ति के अंतिम चरण में शिक्षा भारतीय संस्कृति का प्राण था जो आध्यात्मिक भावना से अनुप्राणित, तपस्या से पोषित था तथा तपोवन में संवर्धित भारतीय संस्कृति का रमणीय आध्यात्मिक रूप वैदिक ग्रन्थों में अपनी सुन्दर झांकी दिखलाता है। फिर भी आज हम वेदानुशीलन के महत्व को भूल गये हैं।

वैदिक कालीन शिक्षा पद्धति के अंतर्गत बालक और बालिकाओं को समान रूप से शिक्षा ग्रहण करने की स्वतंत्रता थी। आश्रम की शिक्षा व्यवस्था इसका ज्वलंत प्रमाण है। उस समय एक ओर जहां बालक-बालिकाओं को समान अवसर प्राप्त थे वहीं दूसरी ओर आचरण और अनुशासन की स्वाभाविक प्रक्रिया जागृत थी। फलतः उस काल में अनेक आचार्यवान विदुषियों का निर्माण हुआ। आज की शिक्षा पद्धतियों के अंतगर्त इस बात की रचनात्मक प्रक्रिया फलित होनी चाहिए। आज की नारी शिक्षा पूर्ण प्रतिष्ठित नहीं हो सकी है जैसी कि वैदिक युग में थी। प्राचीन भारतीयों का मत था कि चरित्र शिष्टाचार जैसे जीवन निर्माण तत्त्वों को शिक्षा और शिक्षालयों से अलग करके नहीं देखा जा सकता है और इस प्रकार इनके लिए जो नियम निर्धारित किए गए थे वे स्वाभाविक रीति से विभिन्न कार्यक्रमों में समाहित थे। फलतः ऐसे नियमों का छात्राओं के चरित्र पर अगोचर किन्तु कार्यसाधक प्रभाव पड़ता था।

वर्तमान काल में विभिन्न शैक्षिक आयोगों के अनुसंधान के आलोक में तथा अन्य राष्ट्रीय शैक्षिक नीतियों के संदर्भ में शिक्षा के नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों पर जो बल दिया जा रहा है उनकी आधार स्थिति में प्राचीन वैदिक शिक्षा के ऐसे समान पक्षों को देखा जा सकता है। आज जिस आत्म विश्वास कर्त्तव्य परायण और व्यक्तित्व निर्माण आदि की बातों को विभिन्न पक्षों की खोज करने में लोग चिन्तित हैं। वे सभी व्यापक तत्त्व प्राचीन वैदिक शिक्षा के महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं।

नारी परिवार की आधार इकाई होती है और इस प्रकार राष्ट्र निर्माण में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका एक महत्त्वपूर्ण योगदान होता है वह परिवार, समाज, देश के उत्थान के लिए हमेशा जागरूक रही तथा राष्ट्र परंपराओं और संस्कृति के संरक्षण में भी उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। प्राचीन भारतीय नारी की भूमिका इस दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण है कि वो आज की नारी शिक्षा के लिए प्रेरक स्त्रोत के रूप में उपयोगी सिद्ध हो। साथ ही ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय नारी ने शक्ति शासन संचालन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इस प्रकार प्राचीन नारी शिक्षा समन्वित विदुषी केवल विदुषी के रूप में ही प्राचीन भारतीय इतिहास के स्वर्ण पृष्ठों पर प्रकट नहीं हुई अपितु जीवन और समाज निर्माण में बहुविध प्रक्रियाओं में उनकी श्रेष्ठता भी प्रमाणित हुई है।

इस प्रकार प्राचीन वैदिक शिक्षा के संदर्भ में यदि वर्तमान शिक्षा और शिक्षण पद्धति को सुंसगठित करने का प्रयास किया गया तो भारतीय मानचित्र पर शिक्षा का जो दुर्बल स्वरूप आज प्रकट है वह कई दृष्टियों से सुदृढ़ता को प्राप्त होगा और शिक्षा के सांस्कृतिक आलोक से सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति आलोकित होगी, नया मानव उदित होगा और नए समाज के निर्माण का प्राचीन गौरव पर आधारित परन्तु वर्तमान वैज्ञानिक खोजों के संदर्भ में निर्मित सपना पूरा होगा।

शिक्षा की दृष्टि से वैदिक काल आधार और महत्व का काल माना जाता है। शिक्षा के विकास के इतिहास का वह आदिकाल है। शिक्षा की वर्तमान स्थिति, उसके विकास तथा विकास की विधि प्रवृत्तियों की दृष्टि से यह काल शोध की संभावनाओं का काल कहा जा सकता है। वेद के तत्वों में आधुनिक विज्ञान से भी उदात्तर वैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रतिपादन है। वर्तमान विज्ञान का मूल आधार विद्युत शक्ति है। वैदिक विज्ञान का मूल आधार प्राण शक्ति है। यह प्राण शक्ति विद्युत शक्ति की अपेक्षा बहुत व्यापक है। अब तक साईन्स ने हाइड्रोजन, ऑक्सीजन आदि को मौलिक तत्व माना था अर्थात् इनमें सम्मिश्रण नहीं और ये एक दूसरे के रूप में परिवर्तित नहीं हो सकते। ये सब भी यौगिक हैं, अनेक संयोगों से बने हैं। वैदिक विज्ञान में इन सब को ''विराट'' कहा जाता है वेदार्थ की उपेक्षा करने के कारण ये तत्त्व विस्मृत प्रायः हो गए हैं।

भारत की पुण्य भूमि प्रचूर धन-वैभव से सम्पन्न रही है। इसके ऐश्वर्य की ख्याति दूर-दूर तक फैलती रही है और उसी ने आक्रान्ताओं को इस पर आक्रमण के लिये प्रेरित किया है। चीनी यात्री फाहियान और ह्वेनत्सांग तो बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आये, पर मेगास्थनीज ईसा से पूर्व तीसरे शतक में यूनानी दूत के रूप में यहां रहा था। मेगास्थानीज की इण्डिका में उसका आंखों देखा भारत वैभव वर्णित हुआ है। उसी के शब्दों में–"भारत की उर्वरा भूमि विविध प्रकार के धन-धान्य, फल, मेवा आदि तो उत्पन्न करती ही है, इसके नीचे भी सभी प्रकार की धातुएं विद्यमान है। खानों में सोना और चांदी हैं, तांबा और लोहा है, रांगा और शीशा है। नाना प्रकार के आभरण, युद्धोपयोगी हथियार और आयुर्वेदीय रसायन बनाने के सभी उपकरण यहां विद्यमान हैं।"

मानव भोजन की सामग्री, पशुओं का चारा, जीवन निर्वाह के अपरिमित साधन, भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए सरिताओं के सिंचन-प्रवाह, शुद्ध जल और शुद्ध वायु, सब ने मिल कर इस भूमि और इसके निवासियों को स्पर्धा की वस्तु बना दिया है। ऐसी परिस्थिति में सुख तो साथी बनता ही है, चिन्तन भी निर्वाधरूप से प्रगतिगामी बनता है। सभ्यता का उत्थान इन दोनों पर ही अवलम्बित है। सभ्यता की निदर्शक कलायें है। किसी देश की सभ्यता को उसकी कलाओं द्वारा सुगमता से आंका तथा पहचाना जा सकता है। जिस देश के प्रांगण में विशुद्ध चिन्तक, सभ्य, व्यवहार-सम्पन्न, आचरणशील व्यक्ति विचरण करते हों और कार्यनिरत रहने के कारण जिन्हें किसी प्रकार के अभाव का अनुभव न होता हो, उस देश से दैन्य स्वयं पलायन कर जाता है ऐसा देश पृथ्वी पर धन्य है और उसके निवासी उन्नत ललाट की प्रदीप्त प्रभा छिटकाते हुए स्वयं को यदि गौरव से अपनी माता पृथ्वी का सच्चा सुपुत्र कहें और अपने को अमृत संतान समझें तो इसमें अत्युक्ति ही क्या है? जातकों में अंकित अनाथ पिंडक की कहानी, जैन आगमों में वर्णित आनन्द का जीवन और पुराणों में वर्णित रन्तिदेव आदि के चरित्र यदि भारत की समृद्धि के द्योतक हैं, अशोक और चन्द्रगुप्त का शासन यदि देश की सुरक्षा का सूचक है, घरों में ताले लगाना आदि न्यायप्रिय, सत्य परायण साधु जीवन का प्रतीक है तो मनु, व्यास और चाणक्य की कृतियां भी प्रकाशपूर्ण मस्तिष्क के उज्ज्वल उदाहरण हैं।

राजनैतिक चेतना के संकेत वैदिक वाङ्मय में पर्याप्त हैं। भद्र की आकांक्षा करने वाले ऋषियों ने निष्कंटक जीवन यापन के लिए राष्ट्र को जन्म दिया और इसकी रक्षा के लिए जनता को कतिपय नियमों में आबद्ध किया। दीक्षा और तप, रचना तथा रक्षण दोनों के लिए अनिवार्य हैं। बिना दीक्षित हुए और बिना परिश्रम किए न तो निर्माण ही किया जा सकता है और न उसका संरक्षण ही। जिस राष्ट्र में सत्तात्मक तथा गत्यात्मक तत्त्व तीव्र रूप में सक्रिय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते हैं, जो राष्ट्र ज्ञान प्रकाश के साथ श्रेष्ठतम कर्मों को प्रोत्साहन देता रहता है, वह चिरकाल तक अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखता है। उसका शक्ति संचय शत्रुओं का पराभव करता रहता है उसके निवासी तेजस्वी तथा कर्त्तव्य-परायण होते हैं। कदाचार और अनाचार ऐसे राष्ट्र में जड़मूल से नष्ट हो जाते हैं। जनता निर्भय तथा सुखी रहती है।

सम्पत्ति की सम्पन्नता सराहनीय है, राजनीति की कुशलता भी श्रेयस्कर है, पर यदि उनका सदुपयोग न हुआ, दुरूपयोग हुआ, तो उनसे बढ़ कर जीवन के लिए अन्य कोई अभिशाप भी नहीं है। इस दुरूपयोग से बचने के लिए आवश्यकता है कि हम धन को प्रभु का दिया हुआ समझ कर प्रभु-सेवा में ही लगा दें और राजनीति के कौशल को सामाजिक हित का साधन समझें। नर की सेवा नारायण की ही सेवा है। प्राचीन काल में हमारे पूर्वज समाजोपयोगी कार्य इसी भावना से प्रेरित होकर किया करते थे। वैसे भी एक मानव का दूसरे मानव के साथ सहकार होता ही है। जिस अवस्था में हम पैदा होते हैं, उसी स्थिति में रहना असम्भव है। प्राकृत अवस्था से निकल कर सभ्यता की अवस्था में आना ही पड़ता है। सभ्यता सभा या समाज के योग्य बनने का भाव है। इसके लिये हमें अपने व्यक्तित्व के, अपनी साधक सम्पत्ति के कुछ अंश का त्याग करना पड़ता है। यह त्याग एक ओर आत्म संयम को जन्म देता है, तो दूसरी ओर समाज के लिये हमें उपयोगी बनाता है। सामाजिकता से पृथक् रह कर जीवन-यापन करना दुष्कर है। एकान्तप्रियता सांस्कृतिक उत्थान के लिये तो अपेक्षित है, परन्तु लौकिक अभ्युदय के लिये सामाजिकता आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। सामाजिकता में श्रम-विभाजन एक उपयोगी उपादान है। हमारी सभ्यता में वर्ग-सभ्यता में वर्ण-व्यवस्था श्रम-विभाजन के रूप में ही है। परिस्थितियों के आघातों से आज वह भले ही जर्जर होकर अनुपयोगी सिद्ध हो रही हो, परन्तु अपने स्वाभाविक तरूण रूप में वह भारतीय समाज का अभ्युत्थान कर चुकी है। अभ्युत्थान के साथ उसने समाज का त्राण भी किया है। विदेशी आक्रान्ताओं के प्रबल आघातों को भारतीय समाज यदि सह गया, तो उसका प्रमुख कारण वर्ण-व्यवस्था ही थी। वर्ण-समाज के दुर्ग थे और पारस्परिक सहयोग पर आधारित विभाग सर्वत्र होते हैं। आवश्यकता है उनके अन्योन्य-अवलम्बन की।

ये विभाग स्वतंत्र रह कर यदि दूसरे पर अवलम्बित न हुए तो समाज के लिये विनाशकारक सिद्ध होते है। पारस्परिक सम्बन्धों में उच्च स्थिति आती ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती है। आचार्य और विद्यार्थी समान स्तर के भागी नहीं हैं। राजा और प्रजा का भी संबंध इसी प्रकार का है। स्वामी और सेवक में भी ऐसी ही संबंध भावना कार्य करती है। पर इसके होते हुये भी कौटुम्बिक प्रणाली के रूप में हम सब एक होकर रहते रहे हैं। यह श्रेयस्कर संबंध वर्ण व्यवस्था के भीतर निरन्तर सक्रिय रहा है हमारी सभ्यता इन्हीं मधुर सम्पर्कों पर फूली और फली है। हममें से एक पुरोहित है, सबके आगे खड़ा है, सबका नेता या पथ-प्रदर्शक है, तो दूसरा कर्म-परायणता, प्रगातिशीतलता, सबलता और पराक्रम का पुंज बना हुआ दिखाई देता है। तीसरा धनार्जन करके सम्पूर्ण समाज में सम्पदा का वितरण कर रहा है, समाज के एक-एक घटक को अन्नदान दे रहा है और चौथा अपने शरीर से कठोर परिश्रम करता हुआ अन्य तीनों की सेवा कर रहा है पर सेवा में अपनी सेवा हो ही जाती है, क्योंकि सभी अंग समाज के अंग हैं, शरीर के अवयवों की भाँति वे परस्पर ग्रथित हैं। अन्योन्याश्रय अथवा सहयोग की यह भावना हमारी सभ्यता में गंभीर रूप से प्रविष्ट है।

सहयोग के इसी आधार पर हमने प्रकृति पर विजय प्राप्त की, नदियों, निर्झरों और वनों को अपना सेवक ही नहीं, सहयोगी भी बनाया, विविध प्रकार की कार्य प्रणालियों में सामंजस्य की स्थापना की और मानव-मानव के बीच ऐसा मधुर संबंध स्थापित किया कि हम अपने अभ्युदय के विरोधी तत्त्वों पर विजय प्राप्त कर सकें। सामाजिक आधार पर हमने उच्छृंखल व्यक्तियों का नियमन किया, विषाक्त विद्वेष-जन्य उद्वेगों का निराकरण किया और सहानुभूति तथा प्रेम के आधार पर इस पृथ्वी को ही स्वर्ग में परिणत करके दिखा दिया। सबको अपनी उन्नति में ही नहीं, सबकी उन्नति में सचेष्ट रहना चाहिये। सर्वहित-चिन्तन सामाजिकता की सबसे बड़ी सिद्धि है। यहां एक को नहीं सबको चमकना है, सबको प्रदीप्त होना है, अपना-अपना भाग दान देते हुए और लेते हुए विकासपथ पर अग्रसर होना है। हम स्वतंत्र भी हैं पर सामाजिक हित में परतंत्र भी। इस स्वातंत्र्य और पारतंत्र्य में भी सामंजस्य स्थापित करते हुए हम सबकों आगे बढ़ना है। भारतीय सभ्यता इस सहयोग और सामंजस्य की भावना को निरन्तर अपनाते हुए चली हैं।

सहिष्णुता सहयोग की सहोदरा है । यदि हमें समाज में रहना है तो सहिष्णु बनना पड़ेगा। भारतीय सभ्यता में विभिन्न मत और सम्प्रदाय विभिन्न विचार प्रणालियों को अपनाते हुये साथ-साथ रहे हैं। चार्वाक जैसा नास्तिक, बुद्ध जैसा पुनर्जन्मवादी और कबीर जैसा आत्मवादी इसी भारत भूमि की उपज है। अद्वैत के साथ द्वैत रहता है, कर्मठता के साथ उपासना रही है और ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ कला रही है। हमने वैभिन्य में समत्व और अनेकत्व में एकत्व के दर्शन किये हैं। कर्त्तव्य के साथ अधिकार का भान भी हमें रहा है, अहिंसा के साथ हिंसा की उपयोगिता पर भी हमारा ध्यान गया है इस विलक्षणता ने हमें आगन्तुक परिस्थितियों के साथ जीवित रहना सिखाया है। यहां नये नये सिद्धांत, नये नये आचार, संकीर्ण से संकीर्ण और उदार से उदार, कट्टर से कट्टर और विनम्र से विनम्र विचार और व्यक्ति आये हैं। हमने सबको, सामाजिकता के लिये उपयोगी अंशों को अपनाया है। अपनी सभ्यता के मेरुदण्ड को स्थिर देखते हुए हमने सब कुछ खाकर अपने अंगों का विवर्धन किया है। संभव है, इस विवर्धन में कुछ अनुपयुक्त अंश भी आ गया हो और उसने हमें हानि भी पहुंचाई हो, पर काल का सर्वातिशायी प्रभाव इन समस्त अंशों से हमें पार करता रहा है हमारा सहयोग, हमारी सहिष्णुता, हमारी उदारता मानव में मानवत्व के दर्शन द्वारा अव्याहत धारा के समान अनवरत जागरूक रही है। पाश्व व्यामूड़ता नहीं कर सकी।

इस धराधाम पर अनेक सभ्यताओं ने अपना-अपना अभिनय किया। किसी ने कला को महत्व दिया, किसी ने शक्ति को, किसी ने सौन्दर्य को तो किसी ने चिंतन को। एकांगिता की प्रवृति के कारण वे उत्पन्न होकर विनष्ट हो गईं, उनका क्षणिक दर्शन इतिहास में अपनी स्मृति मात्र छोड़ गया है जिन स्पार्टों ने बल का प्रदर्शन किया, जिस एथेन्स ने कला को जीवन का आदर्श समझा, जिस रोम ने विधान एवं व्यवस्था का प्रकाश किया, उनकी वह विशिष्टता काल के गले में समा गई। जीवन्त रूप में आज उसके कहीं दर्शन नहीं होते। पर हमारे सहयोग ने, सामंजस्य ने और सहिष्णुता के भाव ने हमारी सभ्यता को विनष्ट होने से बचा लिया है।

धन तथा राजनीति आध्यात्मिकता से संयुक्त होकर उद्दान्त रूप धारण कर लेते हैं। सहयोग भी आध्यात्मिकता के आधार पर ही दृढ़ एवं सफल होता है क्षुद्र कामनायें, लक्ष्य, अनुदात्त उद्देश्य, हमारे समस्त पुरुषार्थ एवं साधनों को व्यर्थ कर देती है। हम चलते हैं, पर प्रगति नहीं कर पाते, बढ़ नहीं पाते। कोल्हू के बैल की भांति चक्कर काट कर जहां के तहां रह जाते हैं।

आध्यात्मिकता का आदर्श हमें बढ़ाता है, उठाता है और उदार दृष्टि कोण से प्रत्येक विषय को सम्मुख उपन्यस्त करता है। हम देश और काल की संकुचित परिधि से निकल कर, क्षणिक शारीरिक आवश्यकताओं से ऊपर उठ कर विशाल वातावरण में, व्यापक देश और काल में विचरण करने लगते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे हमारा हित-सम्पादन तो होता ही हैं, मानवता का पथ भी प्रशस्त होता है। स्थावर, वीरूच, पशु, पक्षी सभी एक नवीन परिपार्श्व में सम्मुख आते हैं। हमारी दृष्टि बदल जाती है, चिन्तन नवीन रूप धारण करता है और क्रिया अद्भुत उत्साह तथा दक्षता से ओतप्रोत हो उठती है।

आर्य पुरुषों ने इसी हेतु लोक को अलोक से मिलाया, पृथ्वी को द्यावा से संयुक्त किया और "वृति का परित्याग करके अयं निजः परोवा" वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को अपनाया। शरीर मृर्त्य है, पर इसका चिदात्मा अमृत है। अतः मर्त्य नहीं, अमृर्त्य आत्मा का नाता ही वास्तविक नाता है। इस नाते में ममत्व की व्यापकता एवं प्रगल्भता है, अपने और पराये हित की एकता है, ईर्ष्या, द्वेषादि का अभाव है और सौमनस्य की अवस्थिति में कंधे से कंधा भिड़ा कर, अन्योन्य अवलम्बन पाकर इस पथरीली, क्लेश-बहुला स्मृति-सरिता को पार कर जाना है।

मानव के सभी प्रयत्न दुख से मुक्ति पाने के लिये हैं। इस मुक्ति का मार्ग एक ही है- आत्मस्थ हो जाना। यही अध्यात्म पथ है। आध्यात्मिकता आत्मपरायणता है। शारीरिक वैभव अनित्य है। आत्मिक ऐश्वर्य ही नित्य है। उसी का सख्य प्राप्तव्य है, उसी की संगति ध्यातव्य है, उसी का स्वरूप ज्ञातव्य है। एक मात्र वही हमारा गन्तव्य है।

भारतीय सभ्यता, भारतीय चिंतन, भारतीय कला, भारतीय विज्ञान सबकी यही एक दिशा रही है। चरक या सुश्रुत को पढ़िये, वाक्यपदीय व्याकरण या दर्शनों का अध्ययन कीजिये, उपनिषद् या आरण्यक देखिये, कलाओं का अनुशीलन कीजिये, किसी भी भारतीय ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश कीजिए, सर्वत्र एक ही ध्वनि श्रवण गोचर होगी- "आत्मा या अरे दृष्टव्यः", "येनाहं नामृतास्यां किमहं तेन कुर्याम्", "इहचेदवेदीदथ सत्य मस्ति", "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति"। वैदिक, जैन, बौद्ध, सभी सन्त आर्य इस एक तत्त्व के उपासक रहे हैं। आध्यात्मिकता में सबके प्राणों का निवास है। सब अंततोगत्वा इसी में निमग्न होते हैं।

पूर्व में संस्कृति पर जो विचार प्रकट किये गये हैं, उनका अवसान आत्म तत्त्व में ही हुआ है। सभ्यता भी चतुर्दिक भ्रमण करती हुई अन्त में अध्यात्म में ही विश्राम पाती है। सभ्यता में यहां की सामाजिकता है, संस्कृति में वहां का एकत्व-समत्व। आध्यात्मिकता सभ्यता संस्कृति की जननी है। बाह्य सभ्यता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें रहन-सहन, वस्त्र, वास, भोजन-भाजन आदि की अधिकता है, संभव है संस्कृति से दूर हो, पर आंतरिक सभ्यता जो मन की निर्मलता, बुद्धि की विशालता तथा आध्यात्मिक पवित्रता का ही अपर नाम है, विशुद्ध संस्कृति है। वैयक्तिक विकास इसी पर अवलम्बित है। सामाजिक विकास सभ्यता द्वारा होता है।

भारतीय सभ्यता की आध्यात्मिकता उसे यूरोपीय समाजवाद से पृथक् कर देती है। समान रोटी और समान घर-बार का समाजवाद भौतिकतावाद पर टिका है। आध्यात्मवाद भौतिक संभारों की असमानता में भी "सहृदयं सामंनस्य" की समानता पर खड़ा है। आंतरिक सभ्यता को जब हम संस्कृति कहते हैं, तब उसका अर्थ होता है आभ्येतर समाज-मन, चित्त आदि का संस्कार। हमारी सभ्यता बाहर के दिखावे से भीतरी वास्तविकता की ओर गई है। यही उसकी आध्यात्मिकता है और इसी में उसका अन्य सभ्यताओं से पार्थक्य है।

हमारी सभ्यता के आध्यात्मिक दृष्टिकोण ने हमारे समग्र वैयक्तिक एवं सामूहिक जीवन-क्रम पर प्रभाव डाला है। हम जो कुछ करते हैं, उसमें परलोक की बात किसी न किसी रूप में आ ही जाती है। आलोचकों ने हमें जो दार्शनिक जाति की संज्ञा दी है, वह निराधार नहीं है। बाह्य क्षेत्र में भी हमने खुल कर खेल खेले हैं, यह कामन्दक, शुक्र, भरद्वाज, चाणक्य आदि के ग्रन्थों से सिद्ध है, पर इन खेलों को खेल कर भी हमने आत्मरति, आत्मक्रीड़न को ही प्रधानता दी है। परिधि में परिभ्रमण करते हुए भी हमने अपने केंद्र का परित्याग नहीं किया। हमारी सभ्यता का यही केंद्र बिन्दु हमारा सर्वस्व है। विश्व को इसी दृष्टिकोण, सभ्यता के इसी केंद्र बिन्दु की आवश्यकता है। वादों के चाहे कितने रूप उठते और गिरते रहें और उन पर आश्रित चाहे जितनी सभ्यताओं के रूप उत्पन्न होते और परिवर्तित होते रहें, पर अंत में एक ही वाद समग्र समस्याओं का समाधान करेगा। यह वाद आध्यात्मवाद है। एक ही सभ्यता विश्व को शान्ति दे सकेगी और वह है आध्यात्मिक सभ्यता, अध्यात्म पर आधारित समाजवाद। रोटी पर टिका समाजवाद वर्ग-संघर्ष को लेकर चला है। उसका मध्य भी वही रहा है और अंत भी वही रहेगा। युद्ध और कलह, तनाव और संघर्ष समाज में विक्षोभ फैलाते है, शांति का प्रसार उनके द्वारा नहीं होता। शांति उपलब्ध करनी है, तो हमें आध्यात्मवाद का आश्रय लेना ही पड़ेगा। हमारी सभ्यता इस धरायाम पर इसी पुनीत आदर्श की स्थापना के लिए जीवित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद के मन्त्रद्रष्टा ऋषि

प्रथम मण्डल

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१.	विश्वामित्र पुत्र मधुच्छंदा	९
२.	"	९
३.	"	१२
४.	"	१०
५.	"	१०
६.	"	१०
७.	"	१०
८.	"	१०
९.	"	१०
१०.	"	१२
११.	मधुच्छंदा पुत्र जेता	८
१२.	कणव पुत्र मेधातिथि	१२
१३.	"	१२
१४.	"	१२
१५.	"	१२
१६.	"	९
१७.	"	९
१८.	"	९
१९.	"	९
२०.	"	८
२१.	"	६
२२.	"	२१
२३.	"	२४
२४.	"	१५

विश्वामित्र का कृत्रिम पुत्र देवरात, अजीगर्त पुत्र शुनः शेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सूक्त	ऋषि	मंत्र
२५.	विश्वामित्र का कृत्रिम पुत्र देवरात, अजीगर्त पुत्र शुनः शेष	२१
२६.	"	१०
२७.	"	१३
२८.	"	९
२९.	"	७
३०.	"	२२
३१.	आंगिरस हिरणयस्तूप	१८
३२.	"	१५
३३.	"	१५
३४.	"	१२
३५.	"	११
३६.	घोर पुत्र कण्व	२०
३७.	"	१५
३८.	"	१५
३९.	"	१०
४०.	"	८
४१.	"	९
४२.	"	१०
४३.	"	९
४४.	कण्व पुत्र प्रस्कब्ब	१४
४५.	"	१०
४६.	"	१५
४७.	"	१०
४८.	"	१६
४९.	"	४
५०.	"	१३
५१.	आंगिरस सव्व	१५
५२.	"	१५
५३.	"	१५

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
५४.	आंगिरस सव्व	११
५५.	''	८
५६.	''	६
५७.	''	६
५८.	नोधा गौतम	९
५९.	''	७
६०.	''	५
६१.	''	१६
६२.	''	१३
६३.	''	९
६४.	''	१५
६५.	शक्ति पुत्र पराशर	१० (५)
६६.	''	१० (५)
६७.	''	१० (५)
६८.	''	१० (५)
६९.	''	१० (५)
७०.	''	११ (६)
७१.	''	१०
७२.	''	१०
७३.	''	१०
७४.	रहूगण पुत्र गौतम	९
७५.	''	५
७६.	''	५
७७.	''	५
७८.	''	५
७९.	''	१२
८०.	''	१६
८१.	''	९
८२.	''	६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ऋषि	मंत्र
रहूगण पुत्र गौतम	६
"	२०
"	१२
"	१०
"	६
"	६
"	१०
"	९
"	२३
"	१८
"	१२
आंगिरस कुत्स	१६
"	११
"	९
"	८
"	३
मारीचि पुत्र कश्यप	१
वृषागिर के पुत्रभूत ऋच्वाश्व,	१६
अम्बरीष, सहदेव भयमान सुराधस	१९
आंगिरस कुत्स	११
"	११
"	८
"	९
आंगिरस कुत्स और आप्तस्त्रित	१९
आंगिरस कुत्स	७
"	३
आंगिरस	१३
"	८
"	९
"	५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
११२.	आंगिरस	२५
११३.	"	२०
११४.	"	११
११५.	"	६
११६.	दीर्घतमा पुत्र कक्षीवान्	२५
११७.	"	२५
११८.	"	११
११९.	"	१०
१२०.	"	१८
१२१.	"	१५
१२२.	"	१५
१२३.	"	१३
१२४.	"	१३
१२५.	"	७
१२६.	"	७
१२७.	दिवोदास पुत्र परूच्छेप	११
१२८.	"	८
१२९.	"	११
१३०.	"	१०
१३१.	"	७
१३२.	"	६
१३३.	"	७
१३४.	"	७
१३५.	"	६
१३६.	दिवोदास पुत्र परूच्छेप	७
१३७.	"	३
१३८.	"	४
१३९.	"	११
१४०.	औचथ्य दीर्घतमा	१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त ऋषि	मंत्र
१. औचथ्य दीर्घतमा	१३
२. "	१३
३. "	८
४. "	७
५. "	५
६. "	५
७. "	५
८. "	५
९. "	५
१०. "	६
११. "	९
१२. "	७
१३. "	४
१४. "	६
१५. "	६
१६. "	५
१७. "	६
१८. "	६
१९. "	५
०. "	५
१. "	१४
२. "	२२
३. औचथ्य दीर्घतमा	१३
४. "	५२
५. इन्द्र, मरुत, अगस्त्य	१५
६. मित्रावरुण पुत्र अगस्त्य	१५
७. "	११
८. "	१०
९. "	८
०. इन्द्र और अगस्त	५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१७१.	अगस्त्य	६
१७२.	"	३
१७३.	"	१३
१७४.	"	१०
१७५.	"	६
१७६.	"	६
१७७.	"	५
१७८.	"	५
१७९.	"	६
१८०.	"	१०
१८१.	"	९
१८२.	"	८
१८३.	"	६
१८४.	"	६
१८५.	"	११
१८६.	"	११
१८७.	"	११
१८८.	"	११
१८९.	"	८
१९०.	"	८
१९१.	"	१६

कुल मन्त्र = २००६

द्वितीय मण्डल

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१.	आंगिरस शैनहोत्र भार्गव गृत्समद	१६
२.	गृत्समद	१३
३.	"	११
४.	भार्गव सोमाहुति	९
५.	"	८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
६.	भार्गव सोमाहुति	८
७.	"	६
८.	गुत्समद	६
९.	"	६
१०.	"	६
११.	"	२१
१२.	"	१५
१३.	"	१३
१४.	"	१२
१५.	"	१०
१६.	"	९
१७.	"	९
१८.	"	९
१९.	"	९
२०.	"	९
२१.	"	६
२२.	"	४
२३.	"	१९
२४.	"	१६
२५.	"	५
२६.	"	४
२७.	गुत्समद एवं गत्समद कूर्म	१७
२८.	गात्समद कूर्म	११
२९.	गुत्समद एवं गात्समद कूर्म	७
३०.	गुत्समद	११
३१.	"	७
३२.	"	८
३३.	"	१५
३४.	"	१५
३५.	"	१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
३६.	गुत्समद	६
३७.	"	६
३८.	"	११
३९.	"	८
४०.	"	६
४१.	"	२१
४२.	"	३
४३.	"	३
		कुल मन्त्र = ४२९

तृतीय मण्डल

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१.	गाथि पुत्र विश्वामित्र	२३
२.	"	१५
३.	"	११
४.	"	११
५.	"	११
६.	"	११
७.	"	११
८.	"	११
९.	"	९
१०.	"	९
११.	"	९
१२.	"	९
१३.	विश्वामित्र पुत्र ऋषभ	७
१४.	"	७
१५.	कात्य उत्कील	७
१६.	"	६
१७.	विश्वामित्र पुत्र कत	५
१८.	"	५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१९.	कुशिक पुत्र गाथि	५
२०.	"	५
२१.	"	५
२२.	"	५
२३.	भरतवंशी देवश्रवा, देववात	५
२४.	विश्वामित्र	५
२५.	"	५
२६.	"	९
२७.	"	१५
२८.	"	६
२९.	"	१६
३०.	"	२२
३१.	कुश्कि और विश्वामित्र	२२
३२.	विश्वामित्र	१७
३३.	"	१३
३४.	"	११
३५.	"	११
३६.	"	११
३७.	"	११
३८.	प्रजापति	१०
३९.	विश्वामित्र	९
४०.	"	९
४१.	"	९
४२.	"	९
४३.	"	८
४४.	"	५
४५.	"	५
४६.	"	५
४७.	"	५
४८.	"	५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
४९.	विश्वामित्र	५
५०.	"	५
५१.	"	१२
५२.	"	८
५३.	"	२४
५४.	प्रजापति और विश्वामित्र	२२
५५.	"	२२
५६.	"	८
५७.	विश्वामित्र	६
५८.	"	९
५९.	"	९
६०.	विश्वामित्र	७
६१.	"	७
६२.	विश्वामित्र और जमदग्नि	१८
		कुल मन्त्र = ६१७

चतुर्थ मण्डल

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१.	वामदेव	२०
२.	"	२०
३.	"	१६
४.	"	१५
५.	"	१५
६.	"	११
७.	"	११
८.	"	८
९.	"	८
१०.	"	८
११.	"	६
१२.	"	६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१३.	वामदेव	५
१४.	"	५
१५.	"	१०
१६.	"	२१
१७.	"	२१
१८.	"	१३
१९.	"	११
२०.	"	११
२१.	"	११
२२.	"	११
२३.	"	११
२४.	"	११
२५.	"	८
२६.	"	७
२७.	"	५
२८.	"	५
२९.	"	५
३०.	"	२४
३१.	"	१५
३२.	"	२४
३३.	"	११
३४.	"	११
३५.	"	९
३६.	"	९
३७.	"	८
३८.	"	१०
३९.	"	६
४०.	"	५
४१.	"	११
४२.	पुरूकुत्स पुत्र त्रसदस्यु	१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
४३.	सुहोत्र पुत्र, पुरूमील अजमील	७
४४.	"	७
४५.	वामदेव	७
४६.	"	७
४७.	"	४
४८.	"	५
४९.	"	६
५०.	"	११
५१.	"	११
५२.	"	७
५३.	"	७
५४.	"	६
५५.	"	१०
५६.	"	७
५७.	"	८
५८.	"	११
		कुल मन्त्र = ५८९

पंचम मण्डल

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१.	आत्रेय बुध, गविष्ठिर	१२
२.	आत्रेय वृग, ज़ार	१२
३.	" वसुश्रुत	१२
४.	" "	११
५.	" "	११
६.	" "	१०
७.	" इष	१०
८.	" "	७
९.	" गय	७
१०.	" "	७
११.	आत्रेय सुतम्भर	६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१२.	आत्रेय सुतम्भर	६
१३.	"	६
१४.	"	६
१५.	आंगिरस धरूण	५
१६.	आत्रेय पूरू	५
१७.	"	५
१८.	आत्रेय द्वित मृक्तवाह	५
१९.	" वव्रि	५
२०.	" प्रयस्वन्त	४
२१.	" रस	४
२२.	आत्रेय विश्वसामा	४
२३.	धुम्न विश्वचर्षीणिक	४
२४.	गौपायना या लौपायना बन्धु सुबन्धु श्रुतबन्धु, विप्रबन्धु	४
२५.	आत्रेय वसूयव	९
२६.	"	९
२७.	त्रैवृशण त्र्यरूण, पौरूकुत्स्य त्रसदस्यु भरतवंशी अश्वमेघ और अत्रि	६
२८.	आत्रेयी विश्ववारा	६
२९.	शाक्त्य गौर वीति	१५
३०.	आत्रेय वभ्रु	१५
३१.	" गातु	१३
३२.	प्रजापति मुत्र संवरण	१२
३३.	प्रजापति पुत्र संवरण	१०
३४.	"	९
३५.	आंगिरस प्रभूवसु	८
३६.	"	६
३७.	अत्रि	५
३८.	"	५
३९.	"	५
४०.	"	९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
४१.	अत्रि	२०
४२.	''	१८
४३.	''	१७
४४.	काश्यप अदत्सार आदि	१२
४५.	आत्रिय सदापृण	११
४६.	आत्रेय प्रतिक्षत्र	८
४७.	'' प्रतिरथ	७
४८.	'' प्रतिभानु	५
४९.	'' प्रतिप्रभ	५
५०.	'' स्वस्ति	५
५१.	'' ''	१५
५२.	'' श्यवाश्व	१७
५३.	'' ''	१६
५४.	'' ''	१५
५५.	'' ''	१०
५६.	'' ''	९
५७.	'' ''	८
५८.	'' ''	८
५९.	'' ''	८
६०.	'' ''	८
६१.	'' ''	१९
६२.	'' श्रुतिवित्	९
६३.	'' ''	७
६४.	'' ''	७
६५.	आत्रेय रातहव्य	६
६६.	'' ''	६
६७.	'' यजत	५
६८.	'' ''	५
६९.	आत्रेय वाडवृक्त	४
७०.	'' उरूचक्रि	४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
७१.	आत्रेय उरूचक्रि	३
७२.	" बाहुवृक्त	३
७३.	" पीर	१०
७४.	" "	१०
७५.	" अवस्यु	९
७६.	" अत्रि	५
७७.	"	५
७८.	आत्रेय सप्तवध्रि	९
७९.	आत्रेय सत्यश्रवा	१०
८०.	" "	६
८१.	" श्यावाश्व	५
८२.	" "	९
८३.	अत्रि	१०
८४.	"	३
८५.	"	८
८६.	"	६
८७.	आत्रेय एवयामरुत	९
		कुल मन्त्र =७२७

षष्ठ मण्डल

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१.	बार्हस्पत्य भरद्वाज	१३
२.	"	११
३.	"	८
४.	"	८
५.	"	७
६.	"	७
७.	"	७
८.	"	७
९.	"	७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१०.	बार्हस्पत्य भरद्वाज	७
११.	"	६
१२.	"	६
१३.	"	६
१४.	"	६
१५.	बार्हस्पत्य भरद्वाज, बीतहण	१९
१६.	बार्हस्पत्य भरद्वाज	४८
१७.	"	१५
१८.	"	१५
१९.	"	१३
२०.	"	१३
२१.	"	१२
२२.	"	११
२३.	"	१०
२४.	"	१०
२५.	"	९
२६.	"	८
२७.	"	८
२८.	"	८
२९.	"	६
३०.	बार्हस्पत्य भरद्वाज	५
३१.	सुहोत्र	५
३२.	मुहोत्र	५
३३.	शुनहोत्र	५
३४.	"	५
३५.	नर	५
३६.	"	५
३७.	बार्हस्पत्य भरद्वाज	५
३८.	"	५
३९.	"	५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्त	ऋषि	मंत्र
०.	बार्हस्पत्य भरद्वाज	५
१.	"	५
२.	"	४
३.	"	४
४.	बार्हस्पत्य शंयु	२४
५.	"	३३
६.	"	१४
७.	गर्ग	३१
८.	बार्हस्पत्य शंयु	२२
९.	ऋजिन्द	१५
०.	"	१५
१.	"	१६
२.	"	१७
३.	बार्हस्पत्य भरद्वाज	१०
४.	"	१०
५.	"	६
६.	"	६
७.	"	६
८.	"	४
९.	"	१०
०.	"	१५
१.	"	१४
२.	"	११
३.	"	११
४.	"	६
५.	"	६
६.	"	११
७.	"	११
८.	"	११
९.	"	८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
७०.	बार्हस्पत्य भरद्वाज	६
७१.	"	६
७२.	"	५
७३.	"	३
७४.	"	४
७५.	भरद्वाज पुत्रपायु	१९
		कुल मन्त्र = ७६५

सप्तम मण्डल

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१.	वशिष्ठ	२५
२.	"	११
३.	"	१०
४.	"	१०
५.	"	९
६.	"	७
७.	"	७
८.	"	७
९.	"	६
१०.	"	५
११.	"	५
१२.	"	३
१३.	"	३
१४.	"	३
१५.	"	१५
१६.	"	१२
१७.	"	७
१८.	"	२५
१९.	"	११
२०.	"	१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्त	ऋषि	मंत्र
१.	वशिष्ठ	१०
२.	”	९
३.	”	६
४.	”	६
५.	”	६
६.	”	५
७.	”	५
८.	”	५
९.	”	५
०.	”	५
१.	”	१२
२.	वशिष्ठ	२७
	शक्ति एवं वशिष्ठ २६वां मन्त्र वशिष्ठ पुत्र	१-९
३.	वशिष्ठ	१०-१४
४.	”	२५
५.	”	१५
६.	”	९
७.	”	८
८.	”	८
९.	”	७
०.	”	७
१.	”	७
२.	”	६
३.	”	५
४.	”	५
५.	”	४
६.	”	४
७.	”	४
८.	”	४
९.	”	४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
५०.	वशिष्ठ	४
५१.	"	३
५२.	"	३
५३.	"	३
५४.	"	३
५५.	"	८
५६.	"	२५
५७.	"	७
५८.	"	६
५९.	"	१२
६०.	"	१२
६१.	"	७
६२.	"	६
६३.	"	६
६४.	"	५
६५.	"	५
६६.	"	१९
६७.	"	१०
६८.	"	९
६९.	"	८
७०.	"	७
७१.	"	६
७२.	"	५
७३.	"	५
७४.	"	६
७५.	"	८
७६.	"	७
७७.	"	६
७८.	"	५
७९.	"	५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
	वशिष्ठ	३
	"	६
	"	१०
	"	१०
	"	५
	"	५
	"	८
	"	७
	"	७
	"	५
	"	७
	"	७
	"	५
	"	८
	"	१२
	"	६
	"	६
	"	१०
	"	७
	"	७
10.	"	७
११.	वशिष्ठ और अग्नि पुत्र कुमार	६
१२.	"	३
१३.	वशिष्ठ	१०
१४.	"	२५

कुल मन्त्र = ८४१

अष्टम मण्डल

(बाल खिल्य सूक्त ४९ से ५९ सूक्त तक = ११ सूक्त)

सूक्त	ऋषि	मंत्र
	घोर पुत्र प्रगाथ, काण्ड मेधातिथि, मेधातिथि, प्लायोगि	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
	आसंग, आँगिरस आसंग की पत्नी शश्वती	३४
२.	काव्य मेधातिथि आँगिरस प्रियमेघ	४२
३.	काव्य मेधातिथि	२४
४.	काव्य देवातिथि	२१
५.	काव्य ब्रह्मतिथि	३९
६.	काण्व वत्स	४८
७.	काण्व पुनर्वत्स	३६
८.	काण्व सध्वंस	२३
९.	काण्व शशकर्ण	२१
१०.	काण्व प्रगाथ	६
११.	काण्व वत्स	१०
१२.	काण्व पर्वत	३३
१३.	काण्व नारद	३३
१४.	काण्वायन गौधक्ति, अश्वसूक्ति	१५
१५.	"	१३
१६.	काण्व इरिम्बिठि	१२
१७.	" "	१५
१८.	" "	२२
१९.	" सोमरि	३७
२०.	" "	२६
२१.	" "	१८
२२.	" "	१८
२३.	वैयश्व विश्वमना	३०
२४.	" "	३०
२५.	" "	२४
२६.	वैयश्व विश्वमना और आँगिरस व्यश्व	२५
२७.	वैवस्वत मनु	२२
२८.	" "	५
२९.	वैवस्वत मनु और मारीज कश्यप	१०
३०.	वैवस्वत मनु	४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्त	ऋषि	मंत्र
१.	वैवस्वत मनु	१८
२.	काव्य मेधातिथि	३०
३.	काण्व मेधातिथि	१९
४.	काण्व नीपातिथि	१८
५.	आत्रेय श्यावाश्व	२४
६.	"	७
७.	"	७
८.	"	१०
९.	काण्व नाभाक	१०
०.	"	१२
१.	"	१०
२.	काव्य नाभाक और अर्चनाना	६
३.	आंगिरस विरूप	३३
४.	"	३०
५.	काण्व त्रिलोक	४२
६.	अश्व्य वश	३३
७.	आप्त्य त्रित	१८
८.	काण्व प्रगाथ	१५
९.	(बालखिल्य सूक्त) काव्य प्रस्कण्व	१०
०.	" पुष्टिगु	१०
१.	" ऋष्टिगु	१०
२.	" आयु	१०
३.	(बालखिल्य सूक्त) काण्व मेध्य	८
४.	" मातरिश्वा	८
५.	" कृश	५
६.	" पृथध्र	५
७.	" मेध्य	४
८.	" "	३
९.	" सुपर्ण	७
०.	प्रागाव मर्ग	२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
६१.	प्रागाव मर्ग	१८
६२.	काव्य प्रगाथ	१२
६३.	"	१२
६४.	"	१२
६५.	"	१२
६६.	प्रागाव कलि	१५
६७.	सामद मत्स्य, मैत्रावरुणि मान्य और जानबद्व मत्स्य	२१
६८.	प्रियमेध	१९
६९.	"	१८
७०.	पुरूहन्मा	१५
७१.	सुदीति, पुरूमाल	१५
७२.	प्रागाथ हर्यन	१८
७३.	आत्रेय गोपपन सप्तवध्रि	१८
७४.	आत्रेय गोपपन	१५
७५.	आंगिरस विरूप	१६
७६.	काण्व कुरूमुति	१२
७७.	"	११
७८.	"	१०
७९.	भार्गव कुत्नु	९
८०.	औधस एकधून	१०
८१.	काण्व कुसीदी	९
८२.	"	९
८३.	"	९
८४.	काव्य उगना	९
८५.	आंगिरस कृष्ण	९
८६.	आंगिरस कृष्ण और कृष्ण पुत्र विश्वक	५
८७.	आंगिरस कृष्ण, वसिष्ठ पुत्र धयुम्नी और प्रियमेध	६
८८.	नोधा	६
८९.	नूमेध, पुरूमेध	७
९०.	"	६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
९१.	आत्रेयी अपाला	७
९२.	श्रुतकक्ष और सुकक्ष	३३
९३.	सुकक्ष	३४
९४.	बिन्दु और पूतदक्ष	१२
९५.	आंगिरस तिरश्ची	९
९६.	आंगिरस तिरश्चौर्द्यतान और मरुत	२१
९७.	कश्यप रेभ	१५
९८.	नूमेध	१२
९९.	"	८
१००.	भार्गव नेम और इन्द्र	१२
१०१.	भार्गव जमदग्नि	१६
१०२.	भार्गव प्रयोग, अग्नि बार्हस्पत्य पावक	२२
१०३.	काण्व सोभरि	१४

कुल मन्त्र = १७१६

(बालखिल्य सूक्त मन्त्र = ८०)

नवम मण्डल

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१.	विश्वामित्र-पुत्र मधुच्छंदा	१०
२.	काण्व मेधातिथि	१०
३.	अजीगर्त पुत्र शुनः शेष	१०
४.	हिरण्यस्तूप	१०
५.	काश्यप असित, देवल	११
६.	"	९
७.	"	९
८.	"	९
९.	"	९
१०.	"	९
११.	"	९
१२.	"	९
१३.	"	९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१४.	काश्यप असित, देवल	८
१५.	"	८
१६.	"	८
१७.	"	८
१८.	"	७
१९.	"	७
२०.	"	७
२१.	"	७
२२.	"	७
२३.	"	७
२४.	"	७
२५.	आगस्त्य हलहच्युत	६
२६.	दार्डच्युत इष्मबाह	६
२७.	मूमेध	६
२८.	प्रियमेध	६
२९.	नृमेध	६
३०.	बिन्दु	६
३१.	गौतम	६
३२.	श्यावाश्व	६
३३.	त्रित	६
३४.	"	६
३५.	प्रभूवसु	६
३६.	"	६
३७.	रहूगण	६
३८.	"	६
३९.	वृहन्मति	६
४०.	"	६
४१.	मेधातिथि	६
४२.	"	६
४३.	"	६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
४४.	अयास्य	६
४५.	,,	६
४६.	,,	६
४७.	भार्गव कवि	५
४८.	,,	५
४९.	,,	५
५०.	उचथ्य	५
५१.	,,	५
५२.	,,	५
५३.	अवत्सार	४
५४.	,,	४
५५.	,,	४
५६.	,,	४
५७.	,,	४
५८.	,,	४
५९.	,,	४
६०.	,,	८४
६१.	अहीमयु	३०
६२.	जमदग्नि	३०
६३.	काश्यप निध्रुवि	३०
६४.	मारीच कश्यप	३०
६५.	वारुणि भृगु, जमदग्नि	३०
६६.	शत वैखानस	३०
६७.	भरद्वाज, कश्यप, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ, पवित्र	३२
६८.	भालन्दन, वत्सप्रि	१०
६९.	आंगिरस हिरणयस्तूप	१०
७०.	विश्वामित्र-पुत्र रेणु	१०
७१.	विश्वामित्र-पुत्र ऋषभ	९
७२.	आंगिरस हरिमन्त	९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
७३.	पवित्र	९
७४.	कक्षीवान	९
७५.	कवि	५
७६.	"	५
७७.	"	५
७८.	"	५
७९.	"	५
८०.	भारद्वाज वसु	५
८१.	"	५
८२.	"	५
८३.	पवित्र	५
८४.	वाच्य प्रजापति	५
८५.	भार्गव वेन	१२
८६.	आकृष्टामाषा, अत्रि आदि	४८
८७.	उशना	९
८८.	"	८
८९.	"	७
९०.	वशिष्ठ	६
९१.	कश्यप	६
९२.	"	६
९३.	नोधा	५
९४.	कण्व	५
९५.	प्रस्कण्व	५
९६.	दिवोदास-पुत्र प्रतदर्न	२४
९७.	वशिष्ठ, वशिष्ठ-पुत्र, इन्द्रप्रमति वृषगण, मन्यु, उपमन्यु, वयाध्रपाद शक्ति, कर्णश्रुत, मुलीक, वसुक, पराशर, कुत्स	५
९८.	अम्बरीष, शृजिप्वा	८
९९.	काययरेम, सूनु	८
१००.	"	९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१०१.	श्यावाश्वि अन्धीगु, मानव नहुष सांवरण मनु, नहुष पुत्र यायाति प्रजापति	१६
१०२.	त्रित	८
१०३.	आप्त्य द्वित	६
१०४.	शिखंडी पर्वत, नारद, काश्यप अवप्सरस	६
१०५.	पर्वत नारद	६
१०६.	चाक्षुषु अग्नि	१४
१०७.	सप्तर्षि	२६
१०८.	गौर वीति, शक्ति ऋषिप्वा, उर्द्वसधा उरू, कृतयशा, ऋर्णचय	१६
१०९.	ऐश्वर अग्निधिष्ठया	२२
११०.	त्रयरूण, त्रसदस्यु	१२
१११.	पारूच्छेपि अनानत	३
११२.	आंगिरस शिशु	४
११३.	कश्यप	११
११४.	"	४
	कुल मन्त्र =	११०८

दशम मण्डल

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१.	त्रित	७
२.	"	७
३.	"	७
४.	"	७
५.	"	७
६.	"	७
७.	"	७
८.	त्वाष्ट्र त्रिशिरा	९
९.	त्वाष्ट्र त्रिशिरा, अम्बरीष, सिन्धुद्वीप	९
१०.	विवस्वान-पुत्र एवं पुत्री यम-यमी	१४
११.	आंगि हविर्धान	९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१२.	आंगि हविर्धान	९
१३.	आदित्य विवस्वान्	५
१४.	यम	१६
१५.	यामायन शंख	१४
१६.	यामायन दमन	१४
१७.	यामायन देवश्रवा	१४
१८.	यामायन संकुसुक	१४
१९.	यामायन मथित, वारुणि, भृग, भार्गव च्यवन	८
२०.	ऐन्द्र, विभद, प्राजापत्य वसुकृत् वासुक	१०
२१.	,,	८
२२.	,,	१५
२३.	,,	७
२४.	,,	६
२५.	,,	११
२६.	,,	९
२७.	ऐन्द्र वसुक्र	२४
२८.	ऐन्द्र वसुक, इन्द्र और इन्द्रवधू, वसुक्र पत्नी वसुक्र	८
२९.	वसुक्र	८
३०.	कवष ऐलूष	१५
३१.	,,	११
३२.	,,	९
३३.	,,	९
३४.	कवष ऐलूष, मौजवानअक्ष	१४
३५.	धानाक लुश	१४
३६.	,,	१४
३७.	सूर्य पुत्र अभितप	१२
३८.	मुष्कवान् इन्द्र	५
३९.	काक्षीवती घोषा	१४
४०.	,,	१४
४१.	घोषा पुत्र सुहस्त्य	३
४२.	आंगिरस कृष्ण	११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
४३.	आंगिरस कृष्ण	११
४४.	"	११
४५.	वत्सप्रि	१२
४६.	"	८
४७.	सप्तगु	८
४८.	बैकुण्ठ इन्द्र	११
४९.	"	११
५०.	"	७
५१.	देव और सौचीक अग्नि	९
५२.	सौचकी अग्नि	६
५३.	देव और सौचीक अग्नि	११
५४.	वामदेव्य वृहदुक्य	६
५५.	"	८
५६.	"	७
५७.	गोपायन बन्धु, सुबन्धु, श्रुतबन्धु, विप्रबन्धु	६
५८.	"	१२
५९.	"	१०
६०.	गोपायन बन्धु सुबन्धु आदि, अगस्त्य की बहन तथा उसकी माता	१२
६१.	मनु पुत्र नाभानेदिष्ठ	२७
६२.	"	११
६३.	प्लात गय	१७
६४.	"	१७
६५.	वासुक्र वसुकर्ण	१५
६६.	"	१५
६७.	अयास्य	१२
६८.	"	१२
६९.	वाध्रत्रश्व सुमित्र	१२
७०.	"	११
७२.	बृहस्पति लौक्य, बृहस्पति, दाक्षायणी और अदिति	९
७३.	गौर वीति	११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
७३.	बृहस्पति	११
७४.	"	६
७५.	प्रियमेध पुत्र सिन्धुक्षित	९
७६.	ऐरावत जरत्कर्ण सर्प	८
७७.	भार्गव स्यूमरश्मि	८
७८.	"	८
७९.	सौचीक अग्नि, वैश्वानर सप्ति वाजम्भर	७
८०.	"	७
८१.	भुवन पुत्र विश्वकर्मा	७
८२.	"	७
८३.	तापस मन्यु	७
८४.	"	७
८५.	सूर्या सावित्री	४७
८६.	इन्द्र, इन्द्र पुत्र वृषाकपि, इन्द्राणी	२३
८७.	पायु	२५
८८.	आंगिरस मूर्धन्वान् वामदेव्य	१९
८९.	रेणु	१८
९०.	नारायण	१६
९१.	बीतहव्य पुत्र अरूण	१५
९२.	मनु पुत्र शार्यात	१५
९३.	पार्थ्य तान्व	१५
९४.	कद्रू पुत्र अबुर्द सर्प	१४
९५.	इलापुत्र पुरूरवा और उर्वशी	१८
९६.	ऐन्द्र वरू, सर्वहरि	१३
९७.	भिषगार्थवण	२३
९८.	आष्टिषेण देवापि	१२
९९.	वैखनस वम्र	१२
१००.	दुवस्युर्वान्दन	१२
१०३.	ऐन्द्र अप्रतिरथ	१३
१०४.	विश्वामित्र पुत्र अष्टक	११
१०५.	कोत्स सुमित्र, दुर्मित्र	११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१०१.	सोमपुत्र बुध	१२
१०२.	भार्म्यश्व मुद्गल	१२
१०६.	काश्यप भूतांश	११
१०७.	दिव्य और प्राजापत्य दक्षिणा	११
१०८.	सरमा देवशुनी और असुर पणि	११
१०९.	ब्रह्मजाया जुहू और ब्राह्म ऊर्ध्वनाम	७
११०.	जमदग्नि और उनका पुत्र राम (परशुराम)	११
१११.	वैरूप अष्ट्रादष्ट्र	१०
११२.	वैरूप नम, प्रभेदन	१०
११३.	वैरूप शत प्रभेदन	१०
११४.	वैरूप सध्रि तापस, धर्म	१०
११५.	वार्ष्टिहव्य उपस्तुत	९
११६.	अग्नियुत स्थौर, अग्नियूप	९
११७.	भिक्षु	९
११८.	आमहीयव उरूक्षय	९
११९.	ऐन्द्र लव	१३
१२०.	आथवर्ण बृहद्दिव	९
१२१.	प्रजापति पुत्र हिरण्यगर्भ	१०
१२२.	वशिष्ठ पुत्र चित्रमहा	८
१२३.	वेन	८
१२४.	अग्नि, वरुण, सोम	६
१२५.	वागाभ्मृणी	८
१२६.	शैलूषि कुल्मल, वहर्हिषवाम देव्य अहोमुग्वा	८
१२७.	सौभर कुश्कि, भारद्वाजी रात्रि	८
१२८.	विहव्य	९
१२९.	प्रजापति परमेष्ठी	७
१३०.	प्रजापति पुत्र यज्ञ	७
१३१.	काक्षीवत सुकीर्ति	७
१३२.	नामेध शकपूत	७
१३३.	पिजवन पुत्र सुदास	७
१३४.	युवनाश्व पुत्र मान्धाता	७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१३५.	यामायन कुमार	७
१३६.	वातभक्षी मुनि जूति, वातजूति, विप्रजूति, वृषाणक, करिक्रत, एतश्च, शृष्यशृंग	७
१३७.	सप्तर्षि	७
१३८.	उत्पुत्र अंग	६
१३९.	देवगन्धर्व विश्वासु	६
१४०.	पावक अग्नि	६
१४१.	तापस अग्नि	६
१४२.	शार्ग जरिता, द्रोण, सारिमुक्व, स्तम्बमित्र	८
१४३.	सांख्य अत्रि	६
१४४.	तार्क्ष्यं पुत्र सुपार्ण यामायन उप्वंकृशन	६
१४५.	इन्द्राणी	६
१४६.	इरम्मद पुत्र देवमुनि	६
१४७.	शैरीषि सुवेद	५
१४८.	वेनपुत्र पृथु	५
१४९.	हिरण्यस्तूप पुत्र अर्चन	५
१५०.	वशिष्ठ पुत्र मृलीक	५
१५१.	कामायनी श्रद्धा	५
१५२.	भरद्वाज पुत्र शास	५
१५३.	इन्द्रमाता देवजामय	५
१५४.	यमी	५
१५५.	भरद्वाज पुत्र शिरिमिबष्ठ	५
१५६.	आग्नेय केतु	५
१५७.	आप्त्य भुवन, भौवन, साधन	५
१५८.	सूर्य पुत्र चक्षु	५
१५९.	पुलोमजा इची	६
१६०.	विश्वामित्र पुत्र पूरण	५
१६१.	प्राजापत्य यक्ष्मनाशन	५
१६२.	ब्राह्म रक्षोहा	६
१६३.	काश्यप विवृहा	६
१६४.	प्रचेता	५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्त	ऋषि	मंत्र
६५.	नैऋतं कपोत	५
६६.	विराज पुत्र व्यूषम शाक्वर	५
६७.	विश्वामित्र और जमदग्नि	४
६८.	वातायन अनिल	४
६९.	काक्षीवत प्रवर	४
७०.	सूर्य पुत्र विभ्रट्	४
७१.	भृगपुत्र इट	४
७२.	संवर्त	४
७३.	ध्रूव	६
७४.	उभीवर्त	५
७५.	अर्बुद पुत्र उष्वप्रभाव	४
७६.	ऋभुपुत्र सूनु	४
७७.	प्रजापति पुत्र पतंग	३
७८.	ताक्ष्यं अरिष्टनेमि	३
७९.	उशीनर पुत्र शिवि आदि	३
८०.	इन्द्र पुत्र जय	३
८१.	वशिष्ठ पुत्र प्रथ	३
८२.	बृहस्पति पुत्र तपुमूर्धा	३
८३.	प्रजापति पुत्र प्रजावान	३
८४.	गर्भकर्त्ता त्वष्टा प्राजापत्य विष्णु	३
८५.	वरुण पुत्र सत्यबुति	३
८६.	वातायन उल	३
८७.	अग्नि पुत्र वत्स	५
८८.	अग्नि पुत्र श्येन	३
८९.	सार्षराज्ञी	३
९०.	माधुच्छन्दस अधर्षण	३
९१.	संवनन	४

कुल मन्त्र = १७५४

ऋग्वेद के सम्पूर्ण सूक्त = १०२८

ऋग्वेद के सम्पूर्ण उपलब्ध मन्त्र = १०५५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायक ग्रन्थों की संक्षिप्त सूची

संस्कृत, पालि और प्राकृत के प्राचीन मूल ग्रन्थ

वेद

ऋग्वेद सुबोध भाष्य – ब्रह्मर्षि म० म० पं०, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर स्वाध्याय मण्डल मारडी।

यजुर्वेद ,, ,, ,,

सामवेद ,, ,, ,,

अथर्ववेद ,, ,, ,,

ऋग्वेद, भाषा भाष्य – दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली।

यजुर्वेद ,, ,, ,, ,,

सामवेद ,, ,, ,, ,,

अर्थववेद ,, ,, ,, ,,

ऋग्वेद – सायण भाष्य सहित, सम्पादक एफ० मैक्समूलर १८९०-९२ ५ भाग, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना।

संहिता ग्रन्थ :

काठक संहिता – स्वाध्याय मण्डल औन्ध, सन् १९४३

तैत्तिरीय संहिता – आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना।

मैत्रायणी संहिता – स्वाध्याय मण्डल औन्ध, सन् १९४१

ब्राह्मण ग्रन्थ :

ऐतरेय ब्राह्मण – अनन्तशयन सुन्दर विलास मुद्रणालय, सन् १९५२

जैमिनीय ब्राह्मण – सरस्वती बिहार सीरीज, नागपुर, सन् १९५४

तैत्तिरीय ब्राह्मण – आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना।

सामवेद मंत्र ब्राह्मण – सम्पादक ए० सी० बर्नेल लन्दन, पूना

शतपथ ब्राह्मण – अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, सन् १९४०

आरण्यक ग्रन्थ :

ऐतरेय आरण्यक – सम्पादक : ए० बी० कीथ (ऑक्सफोर्ड) सन् १९०९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरीय आरण्यक – आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना सन् १९२६

खायण आरण्यक – सम्पादक ए०बी० कीथ, (ऑक्सफोर्ड) सन् १९०९

निषद् :

ठ उपनिषद्, तैत्तिरीय उपनिषद्, मुण्डक उपनिषद्

रेय उपनिषद् – उपनिषद् निर्णय सागर प्रेस, गोरखपुर।

ोपनिषद् – ,, ,,

नोपनिषद् – एकदशोपनिक्षत्संग्रह (भाषा टिका सहित)

न्दोग्योपनिषद् – स्वामी सत्यानन्द द्वारा सम्पादित सन् १९५७

नोपनिषद्

ताश्वर उपनिषद्

दारण्यक उपनिषद्

त सूत्र :

वलायन श्रौतसूत्र – आर० विद्यारत्न द्वारा सम्पादित कलकत्ता, सन् १८७४

सूत्र :

स्तम्ब ग्रह्यसूत्र – हरदत्त अनाकुला टीका।

वलायन – आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली।

ठक – पूना १९३६

शितकी

भेल – मैट्रोपोलीटन प्रिटिंग एण्ड पब्लिशिंग।

भनी – श्री निवासकृत सुबोधिनी स्वंहित।

स्कर – गुजराती प्रिटिंग प्रेस।

यन – चौखम्भा सीरीज, बनारस सन् १९३४

व

यण ग्रह्यसूत्र

त गृह्यसूत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म सूत्र :

आपस्तम्ब धर्मसूत्र – चौखम्भा संस्कृत सीरीज बनारस सन् १९३२
गौतम – अड्यार लाइब्रेरी सीरीज मद्रास, सन् १९४८
बौधायण – चौखम्भा संस्कृत सीरीज, बनारस, सन् १९३५
मानव
वशिष्ठ – सम्पादक ए०ए० पयूहर बम्बई, सन् १९१६
विश्व –
विष्णु – सम्पादक : जौली, कलकत्ता, सन् १८८१
हारीत –

स्मृति ग्रन्थ :

पराशर स्मृति – सायण और माध्व की टीकाओं सहित
मनुस्मृति – निर्णय सागर बम्बई सन् १९४६
यमस्मृति
याज्ञवल्क्य स्मृति – निर्णय सागर बम्बई, सन् १९४६
शौनक स्मृति –
नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति, विष्णु स्मृति, व्यास स्मृति, शंख स्मृति।

पुराण ग्रन्थ :

अग्नि पुराण – संपा०, राजेन्द्र पालमित्र, कलकत्ता १८७३-७९
कूर्म पुराण – संपा०, नीलमणि मुखोपाध्याय, कलकत्ता, १८७०
गरुड़ पुराण – खेमराज श्री कृष्ण दास, बम्बई १९०६
पद्म पुराण – सम्पादक, बी० एन० मांडलिक ४ मार्ग आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज १८९१-९४, पूना
ब्रह्म पुराण – गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरीज, बड़ौदा, १९४१
ब्रह्माण्ड पुराण – कलकत्ता, सं० २००९
भविष्य पुराण – वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९१२
भागवत पुराण – श्रीधर टीका संहिता, कलकत्ता।
मत्स्य पुराण – आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना १९०७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्कण्डेय पुराण – विबिलयोथिका इंडिया, कलकत्ता।
लिंग पुराण – कलकत्ता १८८५
वराह पुराण – सम्पादक मृषिकेष शास्त्री, बिब्लियोथिका इंडिया, कलकत्ता १९९३
वामन पुराण – वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
वायु पुराण – पूना, १९०५
विष्णु पुराण – बम्बई, १८८९, विल्सन ५ भाग, लन्दन १८६४–७०, गीता प्रेस।
शिव पुराण – सम्पादक, पंचानन तर्करत्न, बगवासी प्रेस।
स्कन्द पुराण – वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

रामायण :

वाल्मिकी रामायण – मद्रास, १९३३, गीता प्रेस, गोरखपुर।
अध्यात्म रामायण – ,, ,, ,,
रामचरित मानस – तुलसीदास ,, ,,
महाभारत – नीलकंठ की टीका सहित, पूना १९२९–३३
भगवत गीता – गोरखपुर, गीता प्रेस।

अन्य ग्रन्थ :

निरुक्ति
निघण्टु
कौटिल्य अर्थशास्त्र – सम्पादक, आर० शाम शास्त्री, मैसूर १९०९, १९२९
संस्कार रत्नमाला – गोपीनाथ, आनन्दाश्रम प्रेस।
पतञ्जलि – महाभाष्य, संपा० एफ० कीलहार्न, बम्बई।
संस्कार प्रकाश – चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।
अष्टाध्यायी – पाणिनि, निर्णय, सागर प्रेस, १९२९
अंगुत्तर निकाय – संपा० आर० मेडिस और ई० हार्डी लन्दन १८८३, १९००
आचरोंग सूत्र – अनुवाद, जैको बी–२२, आक्सफोर्ड १८८४
जातक – सम्पादक, फाल्सबोल १८७७–९७, कैम्ब्रिज।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीर्घ निकाय –	सम्पादक, रीज डेविड्स और ई० कारपेन्टर, लन्दन १८९०-१९११, हिन्दी अनुवाद राहुल सांकृत्यायन सारनाथ वाराणसी १९३६
धम्मपद –	संपा० राहुल सांस्कृत्यायन, रंगून १९३७
मिलिन्द पञ्हो –	बम्बई १९४०
संयुक्त निपात –	संपा० लियोजन फियर और मिसेज रीज डेविड्स लंदन १८८४
सूत्रनिपात –	संपा०, ऐडरसन और स्मिथ, लन्दन १९४८, राहुल सांकृत्यायन, रंगून, १९३७
विनय पिटक –	अनु०, रीज डेविड्स आक्सफोर्ड, १८८१-८५, हिन्दी अनु० राहुल सांकृत्यायन, सारनाथ, १९३५
शंकराचार्य –	शंकर दिग्विजय।
मित्र मिश्र –	वीर मित्रोदय, वाराणसी १९०६
काणे, पाण्डुरंगवामन –	धर्मशास्त्र का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, चार भागों में, १९७३

सहायक ग्रन्थ :

शर्मा : मुंशीराम –	वेदार्थ चन्द्रिका, चौखम्भा, वाराणसी, १९६७
,, ,, –	वादिकी, कानपुर, ग्रन्थाम्, १९७२
,, ,, –	वैदिक संस्कृति और सभ्यता, १९६८
व्यास शिष्य - कुंवर लाल –	वैदिक दर्शन १९८१
,, ,, –	वेदाचार्य परम्परा, इतिहास विद्या प्रकाशन दिल्ली, १९८१
आर्थर एप्टनी मैक्डोनेल (अनु० रामकुमार राय) –	वैदिक माइथोलौजी, चौखम्भा, १९६१
,, ,, (अनु० चारूदत्तशास्त्री)–	संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रथम भाग वैदिक युग, चौखम्भा, १९८८
कीथ, बार्थर बेरीडल –	वैदिक धर्म एवं दर्शन दो भाग, अनु० सूर्य कान्त।
कुजूर स्कालस्तिक –	वैदिक एवं धर्म शास्त्रीय साहित्य में नारी १९८२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्र, रामेश्वर प्रसाद	–	वैदिक एवं वेदांग साहित्य की रूपरेखा।
मिश्र : गंगाधर	–	वैदिक एवं वेदोसार भारतीय संस्कृति १९८१
सूर्यकान्त	–	वैदिक देवशास्त्र १९६१
रामेश्वर दयाल गुप्त	–	वैदिक राजदर्शन और उसका भारतीय राजनीति में उपयोग एवं प्रयोग १९७९
वर्मा : विश्वनाथ प्रसाद	–	वैदिक राजनीति शास्त्र, १९७५
ठाकुर : आद्यादत्त	–	वेदों में भारतीय संस्कृति, १९६७
उपाध्याय : भागवत शरण	–	भारतीय व्यक्ति कोष (वैदिक, पौराणिक रामायण और महाभारत साहित्य से समन्ति १९८८
आर्ष प्रियरत्न	–	वैदिक ज्योतिष शास्त्र।
बन्धु : रघुनाथ दत्त	–	पुराण कथा कौमुदी, नेशनल पब्लिशिंग दिल्ली, १९७२
उपाध्याय : बलदेव	–	वैदिक साहित्य और संस्कृति।
गैरोला : वाचस्पति	–	वैदिक साहित्य और संस्कृति।
अग्रवाल : हंसराज	–	वैदिक साहित्य की रूपरेखा १९६५
वेदालंकार : प्रशान्त कुमार	–	वैदिक साहित्य में नारी, १९६४
युधिष्ठिर	–	वैदिक सिद्धान्त मीमांसा, प्रथम भाग।
अवस्थी : विश्वम्भर दयाल	–	वैदिक संस्कृति और दर्शन १९६६
भगवदत्त	–	वैदिक वाङ्मय का इतिहास, दो भाग वेदों के भाष्यकार (संपा० सत्यश्रवा) १९७६
चतुरसेन	–	वैदिक संस्कृति पर आसुरी प्रभाव, १९८४
भारत पब्लिकेशन डिवीजन सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय	–	वैदिक साहित्य।
भार्गव निर्मला	–	वैदिक साहित्य और संस्कृति १९७२
वेदालंकार, जयदेव	–	वैदिक दर्शन १९९१
सरस्वती : प्रत्यगात्मानन्द	–	वेद व विज्ञान १९९२
शुक्ल : सिंहनाथ	–	वेद और अवस्ता १९८१
दीक्षित, लक्ष्मीदत्त	–	वेद मीमांसा १९८०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्ल, वैद्यनाथ प्रसाद	-	भारतीय संस्कृति एवं नैतिक शिक्षा १९६६
आत्रेय, मीखन लाल	-	भारतीय नीति शास्त्र का इतिहास, १९६४
मिश्र, रामदेव	-	वैदिक साहित्य का संक्षिप्त परिचय भारतीय चतुर्धाम वेद भवन न्यास, इलाहाबाद, १९९१
त्रिवेदी, पं० रामगोविंद	-	ऋग्वेद संहिता चौखम्भा, १९९२
दयाल, प्रभु	-	वैदिक देवता दर्शन, दो भाग, इस्र्टन बुक लिंकर्स भारत, १९९२
मैक्डोनल एवं कीथ (अनु० रामकुमार राम)	-	वैदिक इण्डेक्स, दो भाग, १८६२
गौड़, रामदास	-	हिन्दुत्व (हिन्दु धर्म कोश) ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, १९९३
उपाध्याय, रमेश कुमार	-	वैष्णव पुराणों में सृष्टि वर्णन।
अग्रवाल, वासुदेव शरण	-	भारतीय धर्म मीमांसा।
सिंह, चन्द्रदेव	-	प्राचीन भारतीय समाज और चिन्तन। विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९८७
सिंह, अवधेश कुमार	-	प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, रीवा (म० प्र०)
ठाकुर, रविन्द्र नाथ	-	विश्व मानवता की ओर अनु० अग्रवाल, वासुदेव शरण।
मुखर्जी, राधाकुमद	-	हिन्दू सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, पटना
सम्पूर्णानन्द	-	वेद मंत्रों के प्रकाश मं०, १९६६
विश्वामित्र	-	वेदों का स्वरूप।
डबराल, पार्थ सारथी	-	वैदिको : वेद ऋग्वेद, १९६९
दर्शनानन्द	-	उपनिषद प्रकाश, पुस्तक मन्दिर, मथुरा, १९४९
राधाकृष्णन	-	उपनिषदों की भूमिका, राजपाल एण्ड सन्स १९६८
राधाकृष्णन	-	भारतीय दर्शन : वैदिक युग से बौद्धकाल तक, भाग-१, १९८६
भास्कर, भागचन्द्र जैन	-	बौद्ध संस्कृति का विकास १९७२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसाद, पाण्डेय राम नरेश (साधुजी) – सचित्र ऋषि अणुवाद : आगम अनुसन्धान संस्थान, वैदिक केन्द्र वाराणसी, १९७१

दिनकर, रामधारी सिंह – संस्कृति के चार अध्याय, १९९६

पाण्डेय, कपिलदेव – मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद, चौखम्भा, १९६९

सक्सेना, श्रीकृष्ण – भारतीय दर्शन में चेतना का स्वरूप चौखम्भा, १९६९

शेरवात्सकी, अनु० रामकुमार राम – बौद्ध न्याय परिचय, चौखम्भा।

झा, किशोर नाथ – न्याय परिचय, चौखम्भा, १९६८

आचार्य, श्रीराम शर्मा – न्यायदर्शन, १९६४

मिश्र, देवनारायण – शब्दार्थ विमर्श, साहित्य भण्डार, मेरठ, १९८०

दूबे, जगत नारायण – भारतीय संस्कृति में ऋषियों का योगदान दुर्गा पब्लिकेशन, दिल्ली, १९८३

चतुर्वेदी, गिरिधर शर्मा – वेद विज्ञान और भारतीय संस्कृति बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, १९७२

भट्टाचार्य, रामशंकर – पुराणगत वेद विषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग १८८७

प्रभु, पंठरीनाथ – भारत में शास्त्रों का उद्गम और विकास, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १९८८

डा० फतह सिंह – वैदिक दर्शन, भारती भण्डार, इलाहाबाद, २०१९

अल्टेकर, अनन्त सदाशिव – प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, १९६८

उपाध्याय, बलदेव – बौद्ध दर्शन मीमांसा, चौखम्भा, १९८७

शास्त्री, पं० मोतीलाल – वेद विज्ञान एवं अन्य निबन्ध, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन जयपुर

कुमारी, डॉ० किरण – वैदिक कालीन शिक्षा एक विश्लेषणात्मक अनुचिन्तन, सद्भावना प्रकाशन, पटना १७९५

दूबे, डॉ० राधेश्याम – सन्त साहित्य, चौखम्भा, १९७८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्री डॉ० नेमिचन्द्र – आदि पुराण में प्रतिपादित भारत गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९६८

डॉ० शिवशंकर अवस्थी – वाक्यपदीयम् (ब्रह्मकाण्ड) चौखम्भा, वाराणसी, १९९०

प्रो० राममूर्ति शर्मा – अद्वैत वेदान्त, इतिहास तथा दर्शन, इस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, १९८७

मसीह, डॉ० याकुब – धर्म दशर्न, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना।

" " – निरोश्वरवाद : भारतीय एवं पाश्चात्य।

दशोरा, नन्दलाला – आत्मज्ञान की साधना, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार।

" " – मृत्यु और परलोक यात्रा "

" " – अध्यात्म, विज्ञान और धर्म "

" " – तीन उपनिषद् प्रकाशन "

" " – धर्म का मर्म (श्रेष्ठ जीवन की कला) रणधीर प्रकाशन।

" " – ब्रह्मसूत्र : वेदान्त दर्शन रणधीर प्रकाशन हरिद्वार।

" " – मन की अद्भूत शक्तियाँ " "

" " – ब्रह्माण्ड और ज्योतिष " "

प्रेती, डॉ० जयदत्त – वेद में इन्द्र, भारतीय विद्या प्रकाशन।

डॉ० कृष्ण लाल – वैदिक चिन्तन (वशिष्ठ बसु, रूद्र अदिति) आदित्य, परिमल प्रकाशन, दिल्ली –१९९०

शर्मा, डॉ० राममूर्ति – वैदिक साहित्य का इतिहास, इस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।

अग्रवाल, वासुदेवशरण – पाणिनिकालीन भारत, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सं० २०१२

उपाध्याय, बलदेव – भारतीय दर्शन, वाराणसी, १९४५

उपाध्याय, वासुदेव – प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, पटना, १९७२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौबे और श्रीवास्तव – मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, लखनऊ १९७९

पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र – बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, १९६३

पाण्डेय, राजवली – हिन्दू संस्कार, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

पाण्डेय, विमलचंद्र – भारतवर्ष का समाजिक इतिहास।

मिश्र, जयशंकर – ग्यारहवीं सदी का भारत, वाराणसी, १९६८

मोतीचन्द्र – सार्थवाह, पटना १९५३

शर्मा, रामशरण – पूर्वकालीन भारतीय समाज तथा अर्थ-व्यवस्था पर प्रकाश, दिल्ली, १९७७

,, ,, – पूर्वमध्यकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, दिल्ली १९७५.

अंग्रेजी ग्रन्थ

Aiyangar, K.V.R. : Aspects of Ancient Indian Economic Thought, Banaras, 1934.

Altekar, A.S. : The Position of Women in Hindu Civilization, Banaras, 1956.

,, ,, : Education in Ancient India.

Bahadur, K.P. : Caste, Tribe and Culture of Ancient India, 1978.

Bandopadhyaya, N.C. : Economic Life and Progress in Ancient India, Calcutta, 1945.

Banerjee, J.N. : Development of Hindu Iconography, Calcutta, 1941.

Barth, A. : Religion of India, New Delhi, 1969.

Basham. A.L. : The Wonder that was India, London, 1951.

,, ,, : Cultural History of India, 1975.

Beal, S. : Buddhist Records of the Western World, Translation from Chinese-Hiuen Tsang.

Bhandarkar : Vaisnavism, Saivism and Minor Religious Systems, 1913 (Hindi trans-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

lation, Dr. Maheshwari Prasad, Banaras, 1967.

Blertedt, R. : The Social Order, New York, 1957.

Blunt, E.A.H. : Caste System of Northern India, 1931.

,, ,, : Social Service in India, 1946.

Bose, A.N. : Social and Rural Economy of Northern India, 2 Vols., Calcutta, 1945.

Bose, N.S. : History of the Chandellas of Jejakabhukti, Calcutta, 1956.

Brown, P. : India Architecture.

Chakladhar, H.C. : Social Life in Ancient India, Calcutta, 1929.

Chaudhari, M. : Tribes of Ancient India, 1977.

Coomaraswamy, A.K. : History of Indian and Indonesian Art, London, 1927.

,, ,, : The Indian Craftsmen, London, 1909.

Daftari, K.L. : The Social Institutions in Ancient India, Nagpur, 1947.

Dasgupta, S.N. : History of Indian Philosophy, Calcutta, 1932.

Das, S.K. : Economic History of Ancient India, Calcutta, 1925.

Dube, S.C. : Indian Village, 1950.

,, ,, : Manava Aur Sanskriti, Delhi, 1960.

Dubois, A. : Hindu Manners and Customs.

Dumont, L. And Pocock, D. : Contribution to Indian Sociology, Paris, 1958.

Dutta, B.B. : Town Planning in Ancient India, Calcutta, 1925.

Dutta, B.N. : Studies in Indian Social Polity, Calcutta, 1944.

,, ,, : Hindu Law of Inheritence, Calcutta, 1957.

Dutta, N.K. : Origin and Growth of Caste in India, Calcutta, 1931.

Eliot, C. : Hinduism and Buddhism, 3 Vols. London.

Farquhar, J.N. : An Outline of the Religious Literature of India, Oxford, 1920.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Fick, R.	:	Social Organisation in North-East India in Buddhas Time, Calcutta, 1920.
Gangopadhyaya	:	Agriculture and Agricultureist in Ancient India, 1932.
Ganguli, D.C.	:	Contributions to the History of the the Hindu Revenue System, Calcutta, 1929.
,, ,,	:	Histroy of the Paramar Dynasty, Dacca, 1933.
Ghoshal, U.N.	:	A History of Indian Politicial Ideas, Oxford, 1959.
,, ,,	:	Studies in Indian History and Culture, Calcutta, 1917.
,, ,,	:	A History of Indian Public Life, Bombay, 1966.
,, ,,	:	The Agrarian System in Ancient India, Calcutta, 1930.
Gopal, L.	:	The Economic Life of Northern India, Varanasi, 1965.
,, ,,	:	History of Agriculture in Ancient India, Varanasi, 1980.
,, ,,	:	The Sukraniti -- A Ninteenth Century Text, Varanasi, 1978.
Ghurye, G.S.	:	Cast and Class in India, New York, 1950.
,, ,,	:	Social Tensions in India, Bombay, 1968.
,, ,,	:	Vedic India, Bombay, 1979.
,, ,,	:	Caste, Class and Occupation, Bomay, 1961.
,, ,,	:	Two Brahmanical Institutions (Gotra and Charana), Bomay, 1972.
Griffiths	:	Paintings in the Buddhist Cave Temple.
Gupta, K.M.	:	The Land System in South India between 800 A.D. and 1200 A.D., Lahore, 1933.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Hazra, R.C. : Studies in the Puranic Recores of Hindu Rites and Customs, Dacca, 1940.

Hill, S.C. : Origin of Caste-system in India, Bombay, 1939.

Hopkins E.W. : The Religious of India, New Delhi, 1972.

Jain, U.K. : Jain Sects and Schools, Delhi, 1975.

Jauhari, Manorama : Olities and Ethics in Ancient India, Varanasi, 1968.

Jayasawal, K.P. : Hindu Polity, Calcutta, 1924.

Jolly, J. : Hindu Law and Custom, Calcutta, 1928.

Kapadia, K.M. : Marriage and Family in India Oxford 1958.

Kane, P.V. : History of Dharmasastra, 5 Vols, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, 1938.

Ketkar, S.V. : History of Caste in India, New York, 1909, 1979.

Kosambi, D.D. : An Introduction to the Study of Indian History Bombay, 1956.

Kumar, Puspendra : Sakti Cult in Ancient India, 1974.

Law, N.N. : Studies in Indian History and Culture, London, 1925.

Loomis, Charles : Socio-Economic Change and the Religious.

P and Loomisd, Zona K. . Factor in India, New York, 1929

P and Loomis, Zona K. : Modern Social Theories, 1965.

Macdonell. A.A. : History of Sanskrit Literature, London, 1928.

,, ,, : Vedic Index, London, 1912.

Mac Iver and : Society, London, 1950.

Dandekar R.N. : Some Aspects of the History of Hindusim.

Radhakrishana : The Philosophy of Upnishads, London 1935.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Radhakrishana : Principal Upanishad, London, 1950.
Majumdar and Madan : An Introduction to Social Anthropology, Bombay, 1957.
Majumdar, N.M. : A History of Education in Ancient India, Calcutta, 1916.
Majumdar, R.C. : Corporate Life in Ancient India, Calcutta, 1922.
Majumdar, R.C. and Pusalkar, A.D. : The History and Culture of the Indian People, Vol I to VI, Bombay.
Max Weber : The Religion of India
,, ,, : The Theory of Social and Economic Organization, New York, 1967.
Mehta, R.N. : Pre-Buddhist India, Bombay, 1939.
McCrindle : Ancient India as Described by Megasthenes.
,, ,, : Invasion of India by Alexander the Great as Described by Arrian, Westminsher, 1893.
Misra, Yogendra : Early History of Vaisali, Delhi, 1962.
Mitra, R.C. : The Decline of Buddhism in India, Visvabharati, 1958.
,, ,, : A Histrory of Indian Shipping and Meritime Activity London, 1912.
Munshi, K.M. : The Glory that was Gurjardesa, Bombay, 1951.
Nainar, S.M.H. : Arab Geographer's Knwoledge of Southern India, Madras, 1942.
Nath, Pran : A Study in the Economic Condition of Ancient India, London, 1924.
Pandey, G.C. : The Meaning and Process of Culture, Agra, 1972.
Pandey, L.P. : Sun Worship in Ancient India, 1971.
Pannikar, K.M. : A Survey of Indian History, Bombay, 1947.
Parson, Talcooti : The Structure of Social Action, New York, 1933.
Patil, D.R. : Cultural History from the Vayu Purana, Poona, 1942.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Pathak, V.S.	:	History of Saiva Cults in Northern India, Varanasi, 1948.
Prabhu, P.N.	:	Hindu Social Organisation, Bombay, 1958.
Radhakrishanan, S.	:	Indian Philosophy, 2 Vols. 1923-60.
Rai, Jaimal	:	The Rural-urban Economy and Social Change Ancient India, Varanasi, 1974.
Ram Gopal	:	Indian of Vedic Kalpasutras, Delhi, 1963.
Rawlinson, H.G.	:	Intercourse between India and Western World, London, 1916.
Renaudot, E.	:	Ancient Accounts of India and China by two Mohanmedan Travellers, London, 1733.
Risley, H.H.	:	The People of India, London, 1915.
Rhys David	:	Buddhist India, London, 1903.
,, ,,	:	The Dialogues of the Buddha.
Sharma, R.S.	:	Indian Feudalism, Calcutta, 1965.
,, ,,	:	Sudras in Ancient India, Varanasi, 1958, 2nd Edition, 1980.
Sharma, R.N.	:	Brahmin through the Ages, Delhi, 1977.
Shinha, K.K.	:	Excavations at Sravasti, 1967.
Sircar, D.C.	:	Some-Aspects of Earliest Social History of India, Calcutta
,, ,,	:	Select Inscriptions, Calcutta, 1942.
,, ,,	:	The Sakta pithas, JRASB, XIV. No.1 1948.
Srivastava, K.L.	:	The Postions of Hindus under the Delhi Sultanate, Delhi, 1980.
Subba Rao, N.S.	:	Economic and Political Condition in Ancient India, Mysore, 1911.
Thakur, Upendra	:	Some Aspects of Indian History and Culture, 1974.
Thaper Romesh	:	Tribes, Castes and Religion in India, 1977.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Thaper, Romila	:	Ancient Indian Social History, Delhi, 1978.
,, ,,	:	The Past and Prejudice, 1972.
Elliot. H.M. and Dowaon, J.	:	History of India as Told by Its Own Historians London, 1966-67.
Legge. J.H.	:	Record of the Buddhist Kingdoms being an Account of Chinese Monk Falen's Travel, London, 1896.
McCrindle, J.W.	:	Ancient India as Described in Classical Literature, Westminster, 1901.
,, ,,	:	Ancient India as Described by Ptolemy, Calcutta, 1825.
Renaudot, E	:	Ancient Accounts of India and China by two Mohammedan Travellers, London, 1733.
Sri Nava Kumar	:	The Voice of the Ved, Ved Publishing House Trust, Jamshedpur, 1988.
Takakusu, J.A.	:	Record of the Buddhist Religion as Practised in India and the Malaya Archipelago Issing, London, 1896.
Vinecent, W.D.D.	:	The Commerce and Navigation of the Ancient in the Indian Ocean, London, 1807.
Vatters, T.	:	On Yuan Chwangs Travels in India, 2 Vols., London, 1904-5.
Wheeler Sir R.E.M.	:	The Indus Civilisation, London, 1953.

JOURNALS AND PERIODICALS :

Annuals of the Bhandarkar Oriental Research Institute.
Annual Reports of the Archaeological Survey of India.
Annual Reports of the Rajasthan Museum.
Epigraphia India.
Indian Antiquary.
Indian Historical Quarterly.
Journal of the Asiatic Society of Bengal

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Journal of Banaras Hindu University.
Journal of the Bihar and Orissa Research Society.
Journal of the Ganganath Jha Research Insitute, Allahabad.
Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland.
Journal of Bombay University, Bombay.
Journal of Patna University, Patna.
Journal of U.P. Historical Society, Lucknow.
Progress Report of the Archeaological Survey of India, Western Circle.

122088

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY		
	Signature	Date
Access on	Q	7-12-2001
Class on	RE	5.1.2002
Cards	RE	11
Tag etc	[illegible]	11
Filing	[illegible]	16
E.A.R.	Q	19-1-2002
Any other	RE	5.1.2002
Checked	[illegible]	[illegible]

Compiled 2002-2003

Recommended By— अध्यक्ष वेदविभाग

R14,KIR-V:2

121086

STOCK VERIFY 2020 G.K.V. Library

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar